RNI Number : MPHIN/2016/70609
ISSN NUMBER : 2455-9814
वर्ष : 6, अंक : 24
जनवरी-मार्च 2022
मूल्य 50 रुपये

Dhingra Family Foundation
USA

विभोम-स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

स्वागत
नव वर्ष
2022

शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित नई पुस्तकें

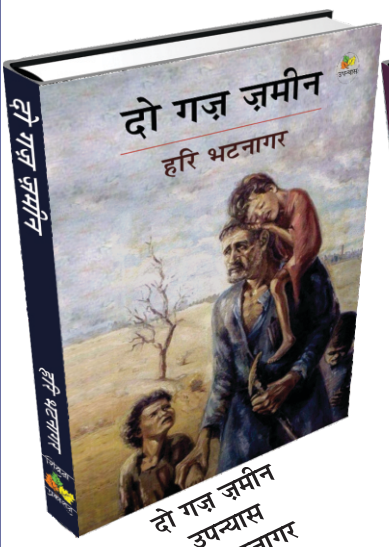

दो गज़ ज़मीन
उपन्यास
हरि भटनागर

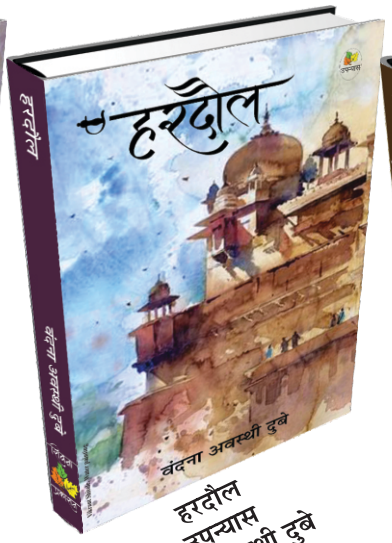

हरदौल
उपन्यास
वंदना अवस्थी दुबे

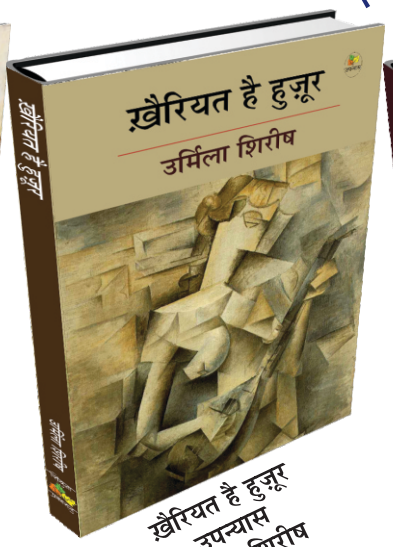

ख़ैरियत है हुज़ूर
उपन्यास
उर्मिला शिरीष

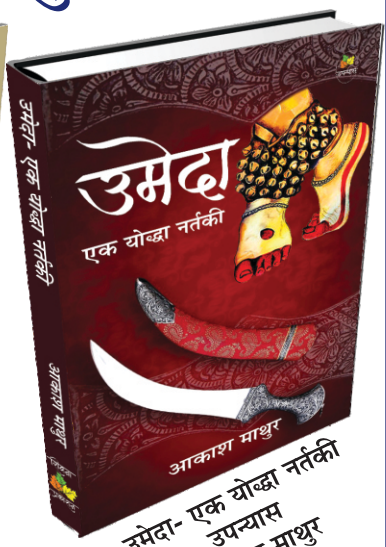

उमेदा- एक योद्धा नर्तकी
उपन्यास
आकाश माथुर

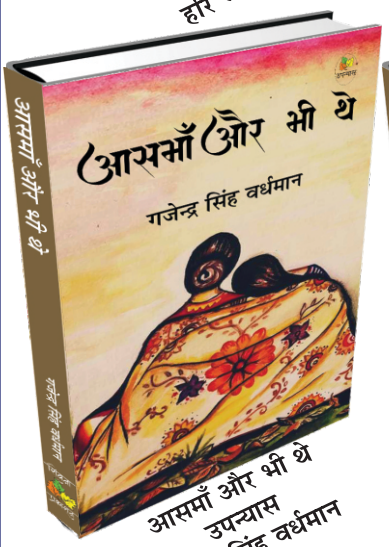

आसमाँ और भी थे
उपन्यास
गजेन्द्र सिंह वर्धमान

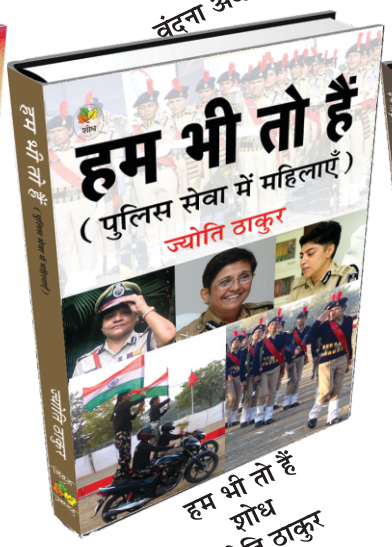

हम भी तो हैं
शोध
ज्योति ठाकुर

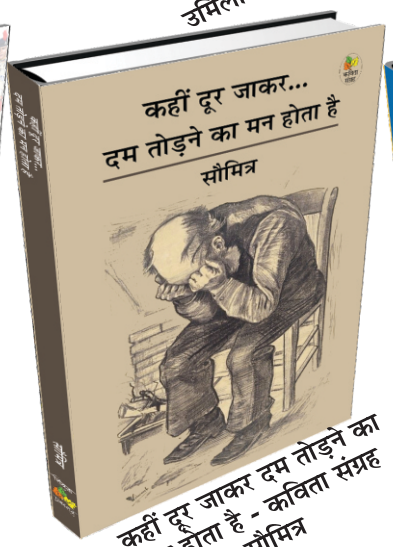

कहीं दूर जाकर दम तोड़ने का मन होता है - कविता संग्रह
सौमित्र

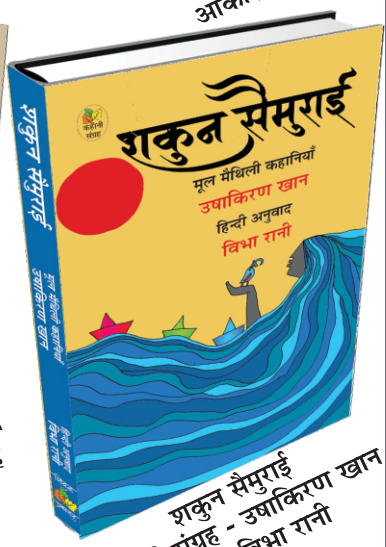

शकुन सैमुराई
कहानी संग्रह - उषाकिरण खान
अनु - विभा रानी

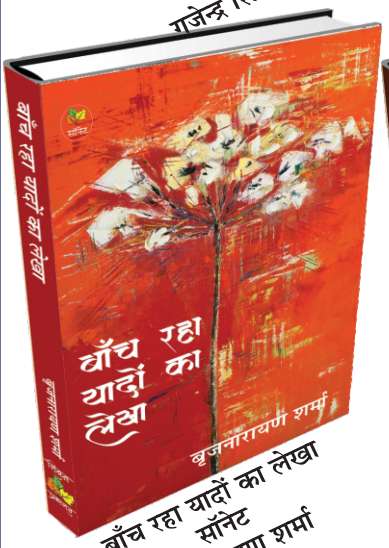

बाँच रहा यादों का लेखा
सॉनेट
बृजनारायण शर्मा

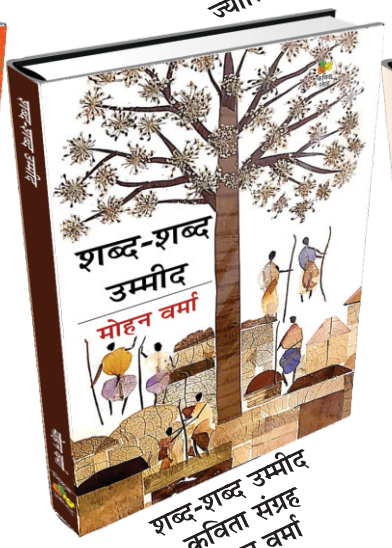

शब्द-शब्द उम्मीद
कविता संग्रह
मोहन वर्मा

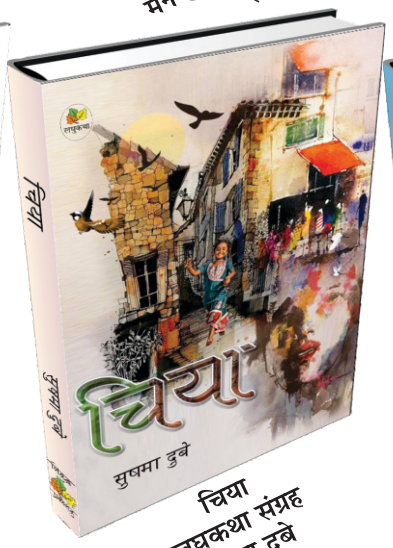

चिया
लघुकथा संग्रह
सुषमा दुबे

आत्मा की पुकार
कविता संग्रह
अर्चना अग्रवाल

शिवना प्रकाशन
शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in

amazon
http://www.amazon.in

flipkart.com
http://www.flipkart.com

Mobile - +91-9806162184, +91-6265665580
+91-8819806162
https://twitter.com/shivnac
https://www.facebook.com/shivna.prakashan
https://www.youtube.com/c/ShivnaCreations
Email- shivna.prakashan@gmail.com

संरक्षक एवं
प्रमुख संपादक
सुधा ओम ढींगरा

संपादक
पंकज सुबीर

क़ानूनी सलाहकार
शहरयार अमजद ख़ान (एडवोकेट)

तकनीकी सहयोग
पारुल सिंह, सनी गोस्वामी
डिज़ायनिंग
सुनील सूर्यवंशी, शिवम गोस्वामी

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय
पी. सी. लैब, शॉप नं. 2-7
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001
दूरभाष : +91-7562405545
मोबाइल : +91-9806162184
ईमेल : vibhomswar@gmail.com

ऑनलाइन 'विभोम-स्वर'
http://www.vibhom.com/vibhomswar.html
फेसबुक पर 'विभोम स्वर'
https://www.facebook.com/vibhomswar

एक प्रति : 50 रुपये (विदेशों हेतु 5 डॉलर $5)
सदस्यता शुल्क
3000 रुपये (पाँच वर्ष), 6000 रुपये (दस वर्ष)
11000 रुपये (आजीवन सदस्यता)
बैंक खाते का विवरण-
Name: Vibhom Swar
Bank Name: Bank Of Baroda,
Branch: Sehore (M.P.)
Account Number: 30010200000312
IFSC Code: BARB0SEHORE

संपादन, प्रकाशन एवं संचालन पूर्णत: अवैतनिक, अव्यवसायिक। पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा। पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर माह में प्रकाशित होगी। समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र सीहोर (मध्यप्रदेश) रहेगा।

विभोम-स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 6, अंक : 24, त्रैमासिक : जनवरी-मार्च 2022
RNI NUMBER : MPHIN/2016/70609
ISSN NUMBER : 2455-9814

आवरण चित्र
शहरयार

रेखाचित्र
रोहित कुमार

Dhingra Family Foundation
101 Guymon Court, Morrisville
NC-27560, USA
Ph. +1-919-801-0672
Email: sudhadrishti@gmail.com

इस अंक में

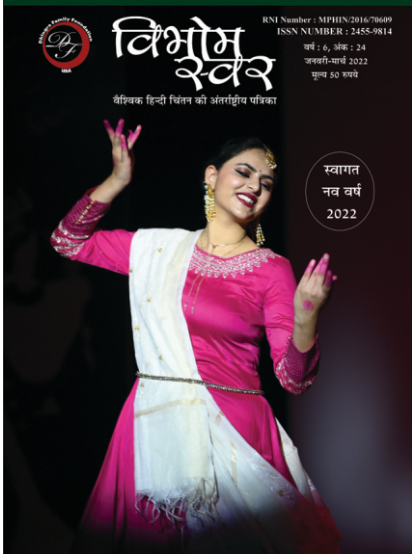

विभोम स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 6, अंक : 24,

त्रैमासिक : जनवरी-मार्च 2022

संपादकीय 3

अंतर्राष्ट्रीय कथा सम्मान 5

तेजेंद्र शर्मा, रणेंद्र, उमेश पंत, लक्ष्मी शर्मा, इरशाद ख़ान सिकंदर, मोतीलाल आलमचंद्र को सम्मान

मित्रनामा 6

विस्मृति के द्वार

हमारे समाज में विधवाएँ...

उषा प्रियम्वदा 11

कथा कहानी

डुबोया मुझको होने ने...

प्रमोद त्रिवेदी 17

गुनगुनी धूप

रमेश खत्री 22

ज़रूरतों के खंभे देह पर ही टिके दिखते हैं....

मीता दास 27

नन्ही आस

सपना शिवाले सोलंकी 32

मैं बोर हो रही हूँ यार

डॉ. नीहार गीते 36

हाथ तो हैं न!

आशा शैली 40

खेल

प्रगति गुप्ता 43

नन्हें दरख़्त

ज्योत्स्ना 'कपिल' 46

खिड़की

डॉ. संध्या तिवारी 49

देवदार के आँसू

डॉ. रामकठिन सिंह 54

भाषांतर

सुश्री फ़ोर्ब्स की सुखद गर्मियाँ

लातिन अमेरिकी कहानी

मूल लेखक : गैब्रिएल गार्सिया मार्खेज़

अनुवाद : सुशांत सुप्रिय 61

ग्रेस नोल क्रोवैल, एंजेला मॉर्गन, माया एंजेलो

मैक्स एरमन की कविताओं का अनुवाद

अनुवाद- भूपेंद्र त्यागी 76

व्यंग्य

तस्वीर का तिलिस्म

डॉ. दलजीत कौर 67

लघुकथा

तर्क

डॉ.अनामिका अनु 68

लिप्यंतरण

टिकट का चुनाव / मूल रचना – इब्ने इंशा

लिप्यंतरण – अखतर अली 69

कविताएँ

महेश कुमार केशरी 71

नमिता गुप्ता "मनसी" 72

ममता त्यागी 73

अनिल प्रभा कुमार 74

मलिक राजकुमार 75

गीत

दीपक शर्मा दीप 60

डॉ. अरुण तिवारी गोपाल 79

ग़ज़ल

अनिरुद्ध सिन्हा 78

डॉ. भावना 78

आख़िरी पन्ना 80

विभोम-स्वर सदस्यता प्रपत्र

यदि आप विभोम-स्वर की सदस्यता लेना चाहते हैं, तो सदस्यता शुल्क इस प्रकार है : 3000 रुपये (पाँच वर्ष), 6000 रुपये (दस वर्ष) 11000 रुपये (आजीवन सदस्यता)। सदस्यता शुल्क आप चैक / ड्राफ़्ट द्वारा विभोम स्वर (VIBHOM SWAR) के नाम से भेज सकते हैं। आप सदस्यता शुल्क को विभोम-स्वर के बैंक खाते में भी जमा कर सकते हैं, बैंक खाते का विवरण-

Name of Account : Vibhom Swar, Account Number : 30010200000312, Type : Current Account, Bank : Bank Of Baroda, Branch : Sehore (M.P.), IFSC Code : BARB0SEHORE (Fifth Character is "Zero")

(विशेष रूप से ध्यान दें कि आई. एफ. एस. सी. कोड में पाँचवा कैरेक्टर अंग्रेज़ी का अक्षर 'ओ' नहीं है बल्कि अंक 'ज़ीरो' है।)

सदस्यता शुल्क के साथ नीचे दिये गए विवरण अनुसार जानकारी ईमेल अथवा डाक से हमें भेजें जिससे आपको पत्रिका भेजी जा सके:

1- नाम, 2- डाक का पता, 3- सदस्यता शुल्क, 4- चैक/ड्राफ़्ट नंबर, 5- ट्रांज़ेक्शन कोड (यदि ऑनलाइन ट्रांस्फ़र है), 6-दिनांक

(यदि सदस्यता शुल्क बैंक खाते में नकद जमा किया है तो बैंक की जमा रसीद डाक से अथवा स्कैन करके ईमेल द्वारा प्रेषित करें।)

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय : पी. सी. लैब, शॉप नंबर. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001, दूरभाष : 07562405545, मोबाइल : 09806162184, ईमेल : vibhomswar@gmail.com

संपादकीय

प्रकृति अपना प्रचंड रूप दिखला रही है

सुधा ओम ढींगरा
101, गाईमन कोर्ट, मोर्रिस्विल
नॉर्थ कैरोलाइना-27560, यू.एस. ए.
मोबाइल- +1-919-801-0672
ईमेल- sudhadrishti@gmail.com

नहीं सोचा था, नए वर्ष में भी हमें कोरोना की बात करनी पड़ेगी। मानव जाति का यह अदृश्य शत्रु उसे पस्त करने पर तुला है। बार-बार रूप बदल कर अटैक करता है, कभी कोविड-19, कभी डेल्टा और अब ओमीक्रॉन। शायद यह शत्रु पूरे विश्व की मानव जाति को यह शिक्षा देना चाहता है कि अब समय आ गया है, अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखें। मानवी प्रवृत्ति है, अपनी बेपरवाहियों का दोष दूसरों पर मढ़कर समस्या से हाथ झाड़ना। पर यह समय है अपने प्रति सचेत रहने का। ओमीक्रॉन को हलके में मत लें। यदि अधिकतर मरीज़ों को अस्पताल में भर्ती नहीं होना पड़ता है, तो भी यह है बहुत नया, इसे कम नहीं आँकना चाहिए, पूरी सावधानियाँ बरतनी चाहिए।

अमेरिका में कोविड-19 के बाद यहाँ की सरकार ने कम वेतन वालों, बेरोज़गारों, दिहाड़ी मज़दूरों को सरकारी भत्ता दिया था, उसका परिणाम यह हुआ कि जब लॉक डाउन खुला तो हर क्षेत्र में नौकरियों के स्थान रिक्त हो गए। लोगों को सरकार की तरफ़ से इतना मिल जाता है, जिससे वे घर बैठे, बच्चों की देखभाल करके गुज़ारा कर लेते हैं। अब ओमीक्रॉन के आने पर उन्हें फिर से बेकारी भत्ता, कोरोना की आर्थिक सहायता मिलने लगेगी। रोटी-रोज़ी आसानी से मिल रही है तो लोग काम नहीं करना चाहते। यूरोप और भारत में लोगों के पास नौकरियाँ नहीं, बेरोज़गारी है और अमेरिका के हर क्षेत्र में नौकरियों के पद अधिक हैं, आवेदनकर्ता कम।

ओमीक्रॉन अमेरिका में बहुत फ़ैल रहा है...समय ही बताएगा, यहाँ की सरकार आर्थिक और स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं को कैसे सँभालती है!

विश्व इस समय कोरोना के साथ-साथ पर्यावरण से भी जूझ रहा है। प्रकृति अपना प्रकोप

संपादकीय

दिखा रही है। कहीं बाढ़ आ रही है, कहीं सूखा और कहीं बेहद बर्फ गिर रही है। अमेरिका के कॉलोराडो प्रदेश में सूखे से आग लग गई और हज़ारों घर जल गए। भारत, फ़िलीपीन और यूरोप में बाढ़ ने लोगों के जीवन और व्यवस्था को अस्त-व्यस्त कर दिया।

दिक्कत यह है कि मानव अभी भी सचेत नहीं हो रहा, अदृश्य शत्रु मानव के भीतर आक्रमण कर रहा है, प्रकृति बाहर अपना प्रचंड रूप दिखला रही है। भीतर और बाहर दोनों मोर्चों पर लोग कष्ट भोग रहे हैं। पर प्रदूषित हवा को कम करने के कोई कदम नहीं उठाए जा रहे, देश में किसानों द्वारा फसलें जलाने से प्रदूषित हुई हवा गर्भ में बच्चे और जन्म लेते बच्चे को कितना नुक़सान पहुँचा सकती है, शायद इस तरफ कोई सोचना ही नहीं चाहता।

विश्व में बिजली की कारों का प्रचलन बढ़ रहा है। कारें खरीदने के इंतज़ार की लंबी सूची में लोग लगे हुए हैं। कोरोना ने गैस और पैट्रोल की खपत कम कर दी है, जिससे प्रदूषण कम होने से पर्यावरण पर भी प्रभाव पड़ रहा है। हालाँकि 2021 में ग्लास्गो, यूके में 197 देशों ने 'ग्लास्गो क्लाइमेट पैक्ट' पर हस्ताक्षर किये हैं। 2050 तक चीन और भारत कोयले से पैदा हुए प्रदूषण को कम करेंगे। सारे देश पर्यावरण की रक्षा हेतु कार्य करेंगे। भविष्य में पानी की कमी होगी इसकी चेतावनी वैज्ञानिकों ने बहुत पहले दे दी थी, उस तरफ विश्व को मिल कर कार्य करना चाहिए। पर ऐसा लगता है कि यह समय से पहले दिए जा रहे संकेत हैं, जिसे हर देश की जनता नज़रअंदाज़ कर रही है। यह बहुत गंभीर समस्या है, जो भविष्य में भयंकर रूप धारण कर सकती है पर मानव का स्वभाव है उस समय तक बेफिक्री से जीता है, जब तक समस्या उसे आकर झंझोड़ती नहीं। पर्यावरण की चुनौतियाँ मानव सभ्यता की शत्रु भी साबित हो सकती हैं, अगर हम सँभले नहीं। पर्यावरण के प्रति असावधानियों का परिणाम भी हमें भुगतना होगा।

अमेरिका में कोविड के साथ-साथ और भी कई घटनाएँ हो रही हैं। कोविड-19 के दौरान यात्रा और रेस्टोरेंट संबंधित लोगों की नौकरियाँ चली गई थीं। अब साढ़े चार मिलियन लोगों ने अपनी नौकरियों से त्याग पत्र दे दिए हैं। कोविड की नई लहर आने से अस्पतालों में तनाव बढ़ गया है। फिर से तनाव झेलने की बजाय कर्मचारियों ने अन्यत्र अधिक वेतन में नौकरियाँ ले ली हैं। जिससे अस्पतालों के पास नर्सों और अन्य कर्मचारियों की कमी हो गई है।

अमेरिका में इस समय बारह मिलियन नौकरियाँ उपलब्ध हैं। 'Supply and demand' की बात है। जहाँ लोगों को अधिक वेतन मिल रहा है, वे वहाँ जा रहे है। अमेरिका कैसे इन परिस्थितियों का सामना करेगा! नए वर्ष में पता चलेगा। कई सेक्टरों में लोगों की इतनी कमी हो गई है कि वहाँ काम की गति धीमी हो रही है।

नव वर्ष विश्व में सकारात्मकता लाने में सहायक हो, विभोम-स्वर और शिवना साहित्यिकी की टीम की हार्दिक शुभकामनाएँ हैं!!!

पाठको, जब तक यह पत्रिका आपके हाथ में आएगी, आप नए वर्ष में प्रवेश कर चुके होंगे। विभोम-स्वर और शिवना साहित्यिकी की टीम की ओर से आप सबको मंगलकामनाएँ!!!! गत वर्षों की तरह नए वर्ष में भी अपना स्नेह बनाएँ रखें!!

आपकी,

सुधा ओम ढींगरा

आग... इसका महत्त्व हमें पता चलता है जब जाड़ों का मौसम आता है। तब ज्ञात होता है कि जीवन के लिए ऊष्मा की आवश्यकता कितनी ज़्यादा है। उसी तरह विचारों की ऊष्मा भी जीवन के लिए ज़रूरी है, साहित्य के पास विचारों की ऊष्मा होती है। मन के लिए ज़रूरी होती है यह विचारों की ऊष्मा।

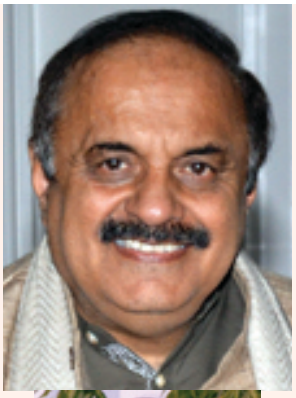

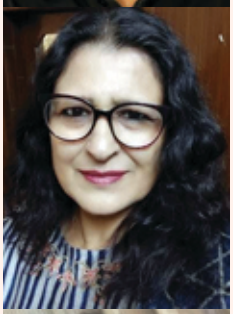

ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन, अमेरिका द्वारा अंतर्राष्ट्रीय कथा सम्मान तथा शिवना प्रकाशन द्वारा अंतर्राष्ट्रीय कथा-कविता सम्मान घोषित

तेजेंद्र शर्मा, रणेंद्र, उमेश पंत, लक्ष्मी शर्मा, इरशाद ख़ान सिकंदर तथा मोतीलाल आलमचंद्र को सम्मान

ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन अमेरिका ने अपने प्रतिष्ठित अंतर्राष्ट्रीय कथा सम्मान तथा शिवना प्रकाशन ने अपने कथा-कविता सम्मान घोषित कर दिए हैं। ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन सम्मानों की चयन समिति के संयोजक पंकज सुबीर ने बताया कि 'ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन लाइफ़ टाइम एचीवमेंट सम्मान' हिन्दी के वरिष्ठ साहित्यकार इंग्लैंड में रहने वाले श्री तेजेन्द्र शर्मा को प्रदान किए जाने का निर्णय लिया गया है, सम्मान के तहत इक्यावन हज़ार रुपये सम्मान राशि तथा सम्मान पत्र प्रदान किया जाएगा। वहीं 'ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन अंतर्राष्ट्रीय कथा सम्मान' उपन्यास विधा में वरिष्ठ साहित्यकार श्री रणेंद्र को राजकमल प्रकाशन से प्रकाशित उनके उपन्यास 'गूँगी रुलाई का कोरस' हेतु तथा कथेतर विधा में श्री उमेश पंत को सार्थक प्रकाशन से प्रकाशित उनके यात्रा संस्मरण 'दूर, दुर्गम, दुरुस्त' हेतु प्रदान किए जाएँगे, दोनों सम्मानित रचनाकारों को इकतीस हज़ार रुपये की सम्मान राशि तथा सम्मान पत्र प्रदान किया जाएगा।

शिवना प्रकाशन के सम्मानों की चयन समिति के संयोजक श्री नीरज गोस्वामी ने बताया कि 'अंतर्राष्ट्रीय शिवना कथा सम्मान' हिन्दी की चर्चित लेखिका लक्ष्मी शर्मा को शिवना प्रकाशन से प्रकाशित उनके उपन्यास 'स्वर्ग का अंतिम उतार' के लिए, 'अंतर्राष्ट्रीय शिवना कविता सम्मान' महत्त्वपूर्ण शायर इरशाद ख़ान सिकंदर को राजपाल एण्ड संस से प्रकाशित उनके ग़ज़ल संग्रह 'आँसुओं का तर्जुमा' के लिए प्रदान किया जाएगा दोनों सम्मानित रचनाकारों को इकतीस हज़ार रुपये की सम्मान राशि तथा सम्मान पत्र प्रदान किया जाएगा। 'शिवना अंतर्राष्ट्रीय कृति सम्मान' शिवना प्रकाशन से प्रकाशित पुस्तक 'साँची दानं' के लिए श्री मोतीलाल आलमचन्द्र को प्रदान किया जाएगा, सम्मान के तहत ग्यारह हज़ार रुपये सम्मान राशि तथा सम्मान पत्र प्रदान किया जाएगा।

ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन अमेरिका तथा शिवना प्रकाशन द्वारा हर वर्ष साहित्य सम्मान प्रदान किए जाते हैं। ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन अमेरिका का यह पाँचवा सम्मान है। हिन्दी की वरिष्ठ कथाकार, कवयित्री, संपादक डॉ. सुधा ओम ढींगरा तथा उनके पति डॉ. ओम ढींगरा द्वारा स्थापित इस फ़ाउण्डेशन के यह सम्मान इससे पूर्व उषा प्रियम्वदा, चित्रा मुद्गल, ममता कालिया, उषाकिरण खान, महेश कटारे, डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी, सुदर्शन प्रियदर्शिनी, डॉ. कमल किशोर गोयनका, मुकेश वर्मा, मनीषा कुलश्रेष्ठ, अनिल प्रभा कुमार तथा प्रो. हरिशंकर आदेश को प्रदान किया जा चुका है। जबकि शिवना सम्मान का यह दूसरा वर्ष है, इससे पूर्व गीताश्री, वसंत सकरगाए, प्रज्ञा, रश्मि भारद्वाज, गरिमा संजय दुबे तथा ज्योति जैन को प्रदान किया जा चुका है।

आकाश माथुर, मीडिया प्रभारी

मित्रनामा

उच्च स्तरीय रचनाएँ

अक्टूबर-दिसम्बर 2021 अंक में सर्वप्रथम तो सुधा ओम ढींगरा जी के संपादकीय में हिन्दी को लोकप्रिय व समृद्ध बनाने का आग्रह तथा आख़िरी पन्ने पर पंकज सुबीर द्वारा सरकारी संस्थाओं में हिन्दी के श्राद्ध तथा उससे कमाई किये जाने पर तीक्ष्ण व्यंग्य-लेख सराहनीय लगे। अन्य व्यंग्य रचनाओं में नागर जी के 'बाहुबली' में महाकवि की पद्म विभूषण तथा अपार ख्याति की लालसा तथा सपाटू जी की 'कुटाई, पिटाई, ठुकाई' ने बचपन की यादें ताज़ा कर दी जब स्कूलों व घरों में बच्चे ऐसे ही पिटा-ठुका करते थे। डॉ. तिवारी का लिखा कुँवर बेचैन पर संस्मरण तो मन को भीतर तक छू गया। दिवंगत कवि के विविध काव्य में अद्भुत बिम्ब विधान, नवगीतों की अभिनव बानगी, एवं लोक को सहज संप्रेषण की कामना उन्हें सदा जीवन्त बनाए रखेंगे।

कविताओं में कानूनगो जी का दृश्यान्तर, मुनीष यादव की 'मैं लाशें फूँकता हूँ ' जावेद आलम खान की 'आत्म मुग्ध पीढ़ी 'ने विशिष्ट कथ्य के कारण प्रभावित किया। ग़ज़लों में विज्ञान व्रत की छोटी बहर की किन्तु मारक असर किया ग़ज़लों ने। अरे हाँ, शिवकुमार अर्चन के पानी पर लिखे दोहे अनूठे लगे। लघु कथाओं में 'मल भेद' में कुत्ते व मनुष्य के मल में भेद की बात आर्थिक परिस्थितियों के कारण कमाल का प्रभाव छोड़ गई, 'आबरू' भी इन्हीं मजबूरियों के चलते किशोर वय की लड़की की परेशानी उजागर करती है। कहानियों में 'मैं लौट रही हूँ' मृत्यु बोध व अकेलेपन से घबराई प्रौढ़ा की मानसिकता तथा बाद में जीवन्त उल्लास की ओर उसका उन्मुख होना - ये विरेधाभासी स्थितियाँ ख़ूब चित्रित की हैं उर्मिला जी ने।

सैली बलजीत ने 'उसे तलाशने मत आना' में 82 वर्षीय आवारागर्द मियाँ ज़हूर का चरित्र इतना प्यारा दिया है, उसके कार्य कलाप इतने असामान्य (यथा क़ब्रगाह में पड़े मृतक मित्रों को गालियाँ दे दे पुकारना) कि उसकी अचानक मौत आँखें नम कर गई। कहानी '99 रोज़िज़' में ज्योत्सना ने ईसाई फ़िलिप और हिन्दुत्ववादी भाई की बहन इंदिरा की पुरानी प्रेमकथा उकेर कर अंत में एक रहस्य भी खोला है, जो पुलकित कर जाता है। भाषांतर में उपादेय ने जान हे की कविताओं का सटीक अनुवाद किया है।

कुल मिला कर पूरा अंक न केवल पठनीय बन पड़ा है अपितु संग्रहणीय भी, उच्च स्तरीय रचनाओं तथा कुशल संपादन के कारण।

-अमृतलाल मदान, सारशब्द कुंज, 1150/11, प्रोफ़ेसर कालोनी, कैथल - 136027 (हरियाणा)

मोबाइल : 9466239164

000

अक्टूबर -दिसंबर २०२१ के अंक में छपी उर्मिला शिरीष की कहानी 'मैं लौट रही हूँ' पर खंडवा में साहित्य संवाद तथा वीणा संवाद ने चर्चा की।

संयोजक- गोविन्द शर्मा

समन्वयक -शैलेन्द्र शरण

आज की कहानी के केंद्र में सेवानिवृत जीवन जीती एक ऐसी महिला हैं, जो आज के भौतिक युग में, अपने जीवन के दर्शन को तलाश रही हैं। विगत समय से आज के नीरस समय की तुलना करते हुए, वे अपनी अवसादग्रस्त होती जा रही ज़िंदगी के अर्थ, एक नए सिरे से खोज रही है। हमारे आसपास के परिदृश्य पर हमारी मानसिक स्थिति का कैसा प्रभाव पड़ता है, यह इस कहानी में बहुत सफलतापूर्वक प्रदर्शित किया गया है। यथा आसमान में धूप, हल्के बादलों और हवा के चित्रण को भिन्न-भिन्न मानसिक स्थितियों में बिम्बों के रूप में सफलता से प्रदर्शित किया गया है। अर्थात् कोई भी बाह्य दृश्य पूर्ण रूप से हमारी भीतरी मानसिक स्थिति पर निर्भर करता है।

कहते हैं मन के हारे हार है, मन के जीते जीत। यही इस कहानी का सार भी है। "असली घर तो मन होता है, और मैं अपने मन को अब और नहीं भरमाना चाहती", नायिका की यह स्वीकारोक्ति ही इस शीर्षक की सार्थकता है।

नायिका के ही शब्दों में 'अर्थपूर्ण जीवन ही उमंग और उल्लास पैदा करता है, वरना तो हम घिसटते रहते हैं मृत्यु की तरफ।' कभी न कभी हर इंसान को अपने आप की तरफ लौट ही आना चाहिए, और अपने जीवन को एक नए सिरे से अर्थ प्रदान करना चाहिए।

एक सार्थक, कहानी के लिए उर्मिला शिरीष जी को हार्दिक बधाई।

-गरिमा चौरे (रतलाम)

000

यह कहानी उन सभी कहानियों में से एक है, जो मेरी पसन्द की हैं। इसे एकाकीपन के अनुभव की कहानी कह सकते हैं। मनुष्य सामाजिक प्राणी है। समाज और परिवार उसकी आवश्यकता है। अकेले रह सकने की भी एक सीमा होती है। सीमा के बाद यही अकेलापन निगलने को दौड़ता है। कहा भी गया है कि यदि किसी को कड़ी सज़ा देना हो तो उसे अकेला कर दो।

बच्चों को अपना भविष्य मोहक लगता है वहीं बुज़ुर्गों को अपना अतीत। इस कहानी की प्रमुख पात्र अपनी व्यस्त नौकरीपेशा ज़िंदगी में परिवार को समय नहीं दे सकीं। योजनाएँ-भविष्य-नौकरी के चक्कर में परिवार का सुख पीछे छूट गया। किन्तु, अब आयु के उस पड़ाव पर आकर ये अकेलापन किसी सर्प की भाँति डँसता है। कहानी की इन पँक्तियों को देखिये- "घर का कोना-कोना किसी को पाना चाहता है।"

कहानी में एक पात्र और हैं.....यशवंत। यशवंत के बच्चे बाहर हैं। पत्नी को भी वहीं भेज दिया है.....बच्चों के पास। स्वयं नहीं जा सकते। माँ को अकेला तो नहीं छोड़ सकते।

इन दोनों ही पात्रों के जीवन में एक समानता है कि दोनों अकेले हैं।

कहानी के अन्त में, प्रमुख पात्र घर-परिवार में लौट जाने का निश्चय कर लेती है। और ऐसा निश्चय करते ही "धूप में चाँदी की चमक" दिखाई देने लगती है। मौसम और प्रकृति के जिन बदलावों में डाह दिखाई देती

थी अब उन्हीं में परिवर्तनों में चाह दिखाई दे रही है।

मात्र दो पात्रों को लेकर लिखी गई यह कहानी बहुत रोचक है। सूक्ष्म-संवेदनशील साहित्यकार की लेखन शैली अद्‌भुत है। ऐसा लगता है जैसे लिखने से पहले पात्र काया प्रवेश किया हो। गंभीर-अनुभवजन्य कहानी।

कहानीकार को बधाई और साधुवाद।

-वैभव कोठारी

000

जीवन का उत्तरार्ध सचमुच मन को खाली पन से भर देता है। बच्चों का अपना परिवार हो जाता हैं, और स्थान परिवर्तन भी। घर का खालीपन, मन में भी जगह बना ही लेता हैं। मन उचाट होकर भागने को करने लगता हैं। तब आवश्यक है आत्मिक प्रेम की। जो बिन बोले ही सब समझ सके। मन को भी वही समझेगा जो आपको समझता होगा। अनुजा की अंतर्वेदना घर का खाली होने से ज़्यादा मन का खिन्नता से भरना है। नियति के किसी चक्र से अधूरा अप्राप्त प्रेम सतह से नीचे बहता झरना होता है, जो गाहे बगाहे याद आ ही जाता है। और जीवन जीने की चाह जागती है। लेखिका ने अंतर्द्वंद्व की वेदना, अकेला पन के कचोटते दंश को शिल्प की कसावट से संजोया है। ये आम जीवन की वेदना है आज के युग में। एकल परिवार से बढ़ती मानसिक निबर्लता,नकारात्मकता को जन्म दे रही है। उस नकारात्मकता से निकल कर मन को मज़बूत बना लेने से असाध्य रोग भी साध्य हो जाता है। मनोबल जिसका सशक्त है वही जीवन का अच्छा लाभ ले पाता है। लेखिका बधाई की पात्र है जिन्होंने, कोरोना जैसी महामारी काल में आई नकारात्मकता से निकालने का मनोबल को मज़बूत बनाने पर बल दिया।

-डॉ. विद्यावती पाराशर

000

प्रस्तुत कहानी में कहानीकार ने परिवार, मित्र आदि का महत्त्व एक पात्र के द्वारा बहुत सुंदर ढंग से बताया है। कहानी में बहाव है, निरंतरता बनी हुई है पाठक को अंत तक बाँधे रखती है। कहानीकार अपनी पात्र के द्वारा बताना चाहती हैं कि जब हमारे पास सब कुछ होता है, तब हम केवल नाम और धन दौलत के पीछे भागते हैं। हमें और किसी की कोई परवाह नहीं बस पैसा और पैसा और पैसे के मायाजाल में फँस जाते हैं।

किन्तु उम्र का एक पड़ाव ऐसा आता है जब किसी के साथ की आवश्यकता होती है, वह परिवार हो, मित्र हो या और कोई बस कोई हँसने बोलने वाला होना और तब अवसाद की स्थिति बनने लगती है। कहीं कुछ अच्छा नहीं लगता बैचेनी होती है। कहानी में ऐसी स्थिति जब कहानी के पात्र की होती है तब कहानीकार ने उसी पात्र के जरिये उसका हल भी निकालना बता दिया। पात्र का अपने अतीत की यादों में जाना, अपने मित्र की स्मृति हो आना। उस समय का एक अच्छा दोस्त यशवंत जो कहीं न कहीं उसके दिल में छुपा बैठा था उसे याद कर फ़ोन पर बातें करना और कहानीकार ने यशवंत के जरिये यह भी बताने की कोशिश की है कि माँ-पिता को इस उम्र में बच्चों की आवश्यकता होती है; इसलिए वह परिवार के साथ न रह कर अपनी माँ के साथ रहता है। और जब कहानी की पात्र यशवंत से बात करती है तब वह अकेलेपन से उबरती है, उसे लगता है कोई है जिससे बात कर सकती है। और वह फिर उस माया जाल से निकल अपनों के बीच लौटती है शायद।

-मंजुला शर्मा, सेंधवा

000

कहानी का शीर्षक ही मन को आश्वस्ति और उमंग से भर देता है। एक बड़ा और सकारात्मक संदेश देती सारगर्भित संक्षिप्त सी कहानी है- मैं लौट रही हूँ। अद्‌भुत बुनावट,मन को छू जाने वाली शैली, और प्यार की श्वास्वत सत्ता का विजय परचम लहराती मृदुल एहसास की कहानी। ज़ाहिर है खाने दौड़ती भयावह तन्हाई में आशा का संचार पैदा करने का माद्‌दा सिर्फ़ प्यार और प्यार में होता है। इस नेह के कई सुंदर रूप होते हैं। जिनमें वृद्ध माता-पिता की सेवा का पवित्र भाव भी है। यशवंत शर्मा जैसे सौम्य व्यक्तित्व ही समाज के आदर्श नागरिक हैं। नायिका अनुजा ने अपने किरदार से भी अपने नाम को सार्थक किया है। एक निर्मल सी अपनी रौ में लहर की तरह बहती सच्ची और अच्छी कहानी के लिए।

पत्रिका विभोम-स्वर, लेखिका उर्मिला शिरीष जी, समन्वयक आदरणीय शैलेन्द्र शरण जी व संयोजक आदरणीय गोविंद शर्मा जी को साधुवाद।

-हरीश दुबे (महेश्वर)

000

उर्मिला शिरीष एक नामचीन कहानीकार हैं। विभोम-स्वर में प्रकाशित उनकी कहानी, आज की आपाधापी और दौड़भाग की ज़िंदगी में अपने भीतरी सच को जानने, अपने अन्तर्मन को टटोलकर देखने का संकेत करती, सोद्‌देश्य कहानी है। आदिकाल से मनुष्य अपने नियत स्थल पर, अपने कार्य स्थल और अपनों के बीच, रहकर उसे जो आत्मिक खुशी मिलती है, वह अन्यत्र नहीं मिलती।

शनै:-शनै: मनुष्य की जिजीविषा ने उसे कई तरह के कार्यों के लिए अपने निवास स्थल से दूर रहकर जीवन जीना भी सिखाया। अपने कॅरियर और स्व की प्रगति के साथ-साथ और संपन्न जीवन शैली बिताने की इच्छा के वशीभूत, मनुष्य अपने परिवार अर्थात् बच्चों को भी अपने समान ही सेटल करने में मशगूल रहता है। ख़ुद के कॅरियर की और अपने बच्चों का भविष्य बनाने की अतिव्यस्तताओं के बीच वह अपने आत्मीय सगे संबंधियों के साथ ही मित्रों से भी उसका जीवंत संपर्क नहीं हो पाता। साथ ही वह अपने स्व के प्रति भी सोच नहीं पाता। इस प्रकार वह जीवन की यात्रा के अग्रगामी पथ को ही जीवन का सच समझने लगता है।

जब उम्र के उत्तरार्ध में वह सभी ज़िम्मेदारियों से मुक्त हो चुका होता, तब उसे अपने मित्र, सगे संबंधी याद आते हैं, क्योंकि उसकी अग्रगामी यात्रा की सोच ने उसे पीछे मुड़कर देखना नहीं सिखाया फलत: ऐसी

स्थिति में वह अपने को सबसे कटा होने के कारण अकेले होने के संत्रास से बेचैन होने लगता है। ऐसे एकाकीपन से छुटकारा पाने के लिए वह फिर अपनी जड़ों की ओर देखता है, जहाँ उसका आत्मीय घर हो, मित्र हो, प्रकृति हो और हो अपनों से मिलता अपनत्व का भाव... ताकि उसे भी यह महसूस हो कि मेरे लिए अभी भी मेरे आत्मीय जनों के दिलों में जगह है। जीवन जीने के लिए हर व्यक्ति को एक उद्देश्य की ज़रूरत होती है। एकाकीपन उसे निरुद्देश्य भटकन का त्रास ही देता है। ऐसी स्थिति में मनुष्य पुन: अपने जीवन के बीत चुके समय को देखता है, जब उसका मन भरा-भरा रहता था और उसे अपना जीवन, प्रकृति और अपने लोग बहुत अच्छे लगते थे। उसी स्थिति को पाने के लिए वह अपने पार्श्व में देखता है, ताकि वह भी सुकून पा सके। यह अपने लौटने की यात्रा है, जो हमें अपनी जड़ों से जोड़ती है। कुल मिलाकर मन:स्थितियों में अपनों के बीच सकारात्मक होकर, जीवन जीने के प्रति उत्सुकता और सोद्देश्य जीवन जीने की आकांक्षा ही, इस कहानी का असल हेतु है।

पात्र अनुजा का आत्मालाप और फिर उसके अपने पुराने मित्र यशवंत से दूरभाष पर संवाद करते हुए, अपने एकाकीपन से निजात पाने के लिए, अपनी जड़ों की ओर लौटने की यात्रा का संकल्प लेती है। आज की दौड़ भाग की जीवनशैली में दो पल ठहर कर अपने स्व के बारे सोचकर जीना भी बहुत ज़रूरी है।

उर्मिला शिरीष जी की कहानी पढ़कर जीवन के प्रति सकारात्मक सोच के साथ आस्थावान रहकर जीना ही जीवन है। समझा जा सकता है।

-अरुण सातले (खण्डवा)

000

"मैं लौट रही हूँ" कहानी में लेखिका ने अकेलेपन से पैदा हुए अवसाद का बखूबी चित्रण किया है, सब कुछ होते हुए भी व्यक्ति के पास यदि कोई अपना नहीं होता है तो, व्यक्ति कितना परेशान हो जाता है, यह इस कहानी में देखते ही बनता है। मानव जीवन भावनात्मक होता है, मित्रता व प्रेम ही प्रमुख सहारा बन गया था, नायिका का मित्र, यशवंत से संवाद करने के बाद अपने को बहुत हल्का महसूस करने लगी थी। कहानी यथार्थ बयान कर रही है, कहानी समसामयिक है,आज अधिकांश घरों की समस्या है यह, बच्चों की दूरी भी अकेलेपन में धकेल देती है। इंसान शरीर के साथ मन से भी थक जाता है, तब उसे ऐसा कोई चाहिए जो उसके मन मानस को समझ सके, उसकी भावनाओं को समझ सके, और लेखिका ने इसे कहानी में बहुत सुंदरता से उभारा है, केवल धन दौलत ही सब कुछ नहीं होता है, मन का सुकून व चैन की भी, प्रमुख भूमिका होती है, मन की खुशियाँ देने वाला व अन्तरंग समझने वाला भी कोई चाहिए। बहुत अच्छी कहानी, दिल को छू गई। उर्मिला शिरीष जी को साधुवाद....

-सुषमा शर्मा (इन्दौर)

000

"मैं लौट रही हूँ" आज के परिवेश का जीता जागता उदाहरण प्रस्तुत करती नज़र आती है। समय की माँग के आगे व्यक्ति ता उम्र आपाधापी मे व्यथित कर देता है। जीवन के एक पड़ाव पर आकर उसे महसूस होता है, कोई तो हो जो उसके मन को जाने, समझे, जब किसी के साथ से या बात करने से वह एकाकीपन से बाहर आ पाता है तो, पुन: जीने की लालसा जाग उठती है।

-अदिति अत्रे (चंडीगढ़)

000

कहानी का शीर्षक ही जैसे सार बयाँ कर देता है। पहले भाग में जी हुई व्यस्त दिनचर्या के बाद जैसे काटने को दौड़ता खालीपन, और उसे मिटाने की हर संभव कोशिश का बेहद सजीव चित्रण किया है। कहानी के अंतिम भाग में अपने अतीत में झाँकती नायिका एकाकी पन को दूर करने का उपाय अपने पुराने मित्र से की हुई बातचीत में आख़िर ढूँढ़ ही लेती है।

-साधना शर्मा (पुणे)

000

आदरणीय उर्मिला जी की कहानी मन को छू गई, जो व्यक्ति के अकेलेपन को दर्शाती है जो कही न कही संयुक्त परिवार की महत्ता को दर्शाती है, जो आज हम खो चुके है, परिवार में आपसी समझ और साथ हो तो इंसान किसी भी परिस्थिति से निपट सकता है। लेकिन समयानुसार आए बदलाव और प्रतिस्पर्धा में इंसान इतना डूब चुका है कि अपने करीबी रिश्तों के लिए भी समय नहीं है, जो व्यक्ति चाह कर भी नहीं कर सकता, आज का इंसान मशीन की तरह बन चुका है।

उसमें किसी को हम दोष नहीं दे सकते, यदि व्यक्ति कार्य नहीं करेगा, तो बाहर कर दिया जाएगा। अत्याधुनिक जीवन शैली में सब कुछ आवश्यक भी है, पति-पत्नी बच्चे सभी व्यस्त हैं, लेकिन जैसे-जैसे हम वृद्धावस्था की ओर बढ़ते है तब हमें कुछ कमी सी महसूस होने लगती है, अकेलेपन का डर महसूस होता है इसलिए अपने कुछ शौक या दिनचर्या ऐसे बनानी चाहिए, कि हमें अकेलापन महसूस न हो और हम परिवार को भी परेशानी में न डाले। परिवार का साथ और सामंजस्य ऐसा रखे कि किसी भी परिस्थिति से आसानी से निपट सके।

-उमा चौरे (इंदौर)

000

"मैं लौट रही हूँ" शीर्षक को चरितार्थ करती आज के सामाजिक दौर पर पूर्ण रूप से खरी उतरती हुई कहानी। यह कहानी नायिका के पुन: जीवंतता में, दूर कहीं छूटते पुराने रिश्तों में, मित्रता में, सामाजिक परिवेश में लौटने की कहानी है। अपनी महत्त्वाकांक्षाओं और क्रियाकलापों में निर्लिप्त नायिका जब सेवानिवृत हो जाती है, तो समय, घर और संवादों का खालीपन उसे दंश मारने लगता है। किंतु वह घर के, रिश्तों के सूनेपन व स्वयं के अकेलेपन से निडर होकर साक्षात्कार करती है, और इससे बाहर निकलने का सकारात्मक तरीका ढूँढ़ती है। पुन: ज़िंदगी को नए सिरे से जीने का सफल प्रयास करती है। मित्र यशवंत इस कार्य में उसका सच्चा साथी सिद्ध होता है, क्योंकि वह भी ज़िंदगी के खालीपन

एकाकीपन के इसी दौर से गुज़र रहा होता है। उसके पास विकल्प था लेकिन माँ के प्रति अपना दायित्व निभाने को वह ज़्यादा अहमियत देता है। कहानी रिश्तों की महत्ता, सच्ची दोस्ती, प्रेम संबंध सभी को एक सूत्र में पिरोकर पाठकों को जीवन में उत्साहित रहने का संदेश देती है।

-अनुराधा पारे (जबलपुर)

000

लौटना तो है ही क्योंकि मन का खालीपन एक गुबार भर देता है और इस रिक्तता में कहीं कुछ छूटता हुआ सा प्रतीत होने लगता है; जिसकी अकुलाहट व्यक्ति की जिजीविषा को एक तरह से मृत करने लगती है और असमय मृत्यु को कौन वरण करना चाहता? पूरे जीवनकाल में आई इस रिक्तता का आभास तब होता है जब समय मुँह फेरने लगता है,जब समय अपना सब कुछ करवा लेता है तब याद आती है इस समय के साथ दौड़ने में हमारा अपना कितना कुछ छूट गया कोई लौट पाता कोई नहीं।

मन से मन का मिलना जिजीविषा को उत्पन्न करता है लेखिका बड़ी आसानी से इसे महसूस कर लेती है एवं जाग्रत भी। एक सकारात्मक सोच को दर्शाती सादगीपूर्ण कहानी हेतु साधुवाद।

-आरती डोंगरे

000

उर्मिला शिरीष जी की कहानी "मैं लौट रही हूँ" जीवन के आधुनिक दृश्य को प्रदर्शित करती है। नायिका जीवन की प्रगतिशील राह को चुनकर अपने सामाजिक जीवन के महत्त्वपूर्ण लम्हें खो देती है। अंत में नायिका के एकाकी जीवन में एक छोटी सी चमक आ जाती है।

कहानी हमें जीवन की एक महत्त्वपूर्ण बात सिखाती है, कि आगे बढ़ना जितना ज़रूरी है उतना ही समाजिक जीवन भी ज़रूरी है।

-स्वाति जोशी

000

"मैं लौट रही हूँ।" कहानी के शुरू में तो ऐसा लगता है, जैसे कॅरियर और परिवार में से किसी एक को चुनने से पात्र अवसाद ग्रस्त हैं। धीरे-धीरे फिर परतें खुलती हैं तो पता चलता है की, नायिका अवसाद से नहीं, अकेलेपन और रिश्तों की अहमियत नहीं समझ पाने से दुखी हैं। जीवन में केवल पैसा, शोहरत ही सब कुछ नहीं होता। एक हमसफ़र जो पैसे शोहरत से भी कहीं ऊपर होता है। साथ ही लेखक ने यह भी समझाया है यशवंत शर्मा के रूप में कि परिवार की महत्ता क्या है, बुज़ुर्गों की सेवा नायक की कर्त्तव्य निष्ठा है, साथ ही बीमारी के पास होते हुए भी उम्मीद बनाए रखना और प्रयासरत रहना सफल जीवन का फलसफा हैं। कहानी पढ़ने पर मन में बहुत से प्रश्न को भी जन्म देता है। बहुत ही बढ़िया कहानी है।

-कविता पगारे

000

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, उसे हमेशा साथ चाहिए। ओहदा, पैसा, इज़्ज़त तो बढ़ा सकती है, पर मन के अंतर्द्वंद्व को मिटाने के लिए कोई अपना चाहिए, चाहे रिश्ते दार हो या सच्चा मित्र, स्त्री हो या पुरुष। इस मनोव्यथा को लेखिका ने सुंदर शब्दों में पिरोया है।

जब मन खाली रहता है तब हर बात में निराशा झलकती है। "टिफिन में खाना रखना..." एकाकीपन को दर्शाता सटीक वर्णन है। सच्ची मित्रता हमेशा बनी रहती है। उसमें आकर्षक नहीं विश्वास समाया होता है। यशवंत के प्रति विश्वास से ही सुजाता को दुनिया सकारात्मक लगने लगती है। शुरू से अंत तक लेखिका ने बाँध के रखा। सभी संयोजकों का भी आभार, इतनी अच्छी रचना उपलब्ध कराने हेतु।

-सुनीता परसाई (जबलपुर)

000

नायिका के मन के मर्म को लेखिका ने इस तरह प्रस्तुत किया है कि कहानी जीवंत हो उठी है। सच है फुरसत के क्षण काटे नहीं कटते। यह वही समय है जब व्यक्ति अतीत का घटनाक्रम, किसी चलचित्र की भाँति हर पल, हर क्षण देखता रहता है। एक के बाद एक घटनाएँ उसे दृष्टिगोचर होती रहती है।

कहानी की नायिका भी इसी का शिकार है। सेवानिवृत्त के बाद का अकेलापन, खालीपन उसे यह सब सोचने पर मजबूर करता है। यहाँ सीख भी है कि जीवन में परिवार का क्या महत्त्व है। परिवार में अपनों के साथ समय कब बीत जाता है पता ही नहीं चलता। पर अकेलेपन का दंश झेलना बहुत टेढ़ी खीर है। रात के सन्नाटे में स्मृतियाँ पुन: रोशन होने लगती है। और जीवन की अच्छाई, बुराई, उचित -अनुचित के विश्लेषण, चक्र की भाँति निरंतर चलता रहता है।

कहानी का शीर्षक ही,समय के साथ पश्चाताप करते हुए सार्थक होने का प्रयास कर रहा है। दौड़-धूप की ज़िंदगी के बाद फुरसत के क्षण, और भी बोझिल से जान पड़ते हैं नायिका को। और उनसे निज़ात पाने के लिए उसे वे सब याद आ रहे हैं। जिन्हें अपनी महत्त्वाकांक्षा के चलते कभी समय नहीं दे पाई। अब मन बना रही है। वापस उन्हीं लम्हों को जिया जाए। जो असंभव से जान पड़ रहे हैं। सबकी अपनी-अपनी मजबूरी, अपने अपने दायित्व है। अपने परिवार है। अपनी ज़िम्मेदारियाँ है। फिर भी सकारात्मक सोच उसे नई ऊर्जा दे रही है।

कहानी हर मोड़ पर एक शिक्षा दे रही है।

-चन्द्रमणी दफ्तरी

000

लेखिका ने जीवन के संपूर्ण परिदृश्य को कथा में पिरोया है। समय की माँग पर महत्त्वाकांक्षा बलवती रही। और जब समय ने करवट बदली तो महत्त्वाकांक्षा से सारे रिश्ते, नाते, वादे, सभी मुट्ठी की रेत की तरह फिसलते चले गए। शेष रहा एकाकी जीवन नायिका को चुभन देता है। उसकी मनोदशा का बेहतरीन चित्रण कथा का सार तत्व है। कथा की लेखिका श्रेष्ठ कहानीकार है। कथा उद्देश्य में सफल हुई है।

-विजय जोशी शीतांशु

000

उर्मिला शिरीष की कहानी "मैं लौट रही हूँ" एक बेहद सकारात्मक कहानी है। उम्र के चौथे दौर में पहुँच रही नायिका, भावनात्मक उद्रेक को अनेकानेक भावों की दुरूह वीथिकाओं से होकर गुज़रती है। जीवन के कठिन संघर्ष के ३० साल, बच्चों और अन्य कर्त्तव्यों से मुक्त हो कर भी नारी मन संत्रास से भरा हुआ है। सब कुछ पा लेने के उपरांत भी अकेलेपन का अधूरापन नायिका को बचपन, गाँव की सैर करवा रिश्तों की अहमियत भी समझाती है। अनेकानेक बिम्ब विधानों से चमत्कृत करती यह कहानी स्वयं से साक्षात्कार का एहसास लगातार करवाती है। और इसी क्रम में बचपन के प्यार यशवंत की शिद्दत से की गई याद पाठक को भी विचलित कर जाती है। तमाम उम्र के सहेजे गए रिश्ते ही उम्र के तीसरे चौथे पन को उल्लसित ही नहीं सार्थक भी बनाए रखते हैं। इन तमाम रिश्तों के होते हुए भी अवसाद, अकेलेपन का दंश झेलती नायिका को एक रिश्ते का सम्बल जीने की राह दिखा उसकी जिजीविषा को पुन: जगा जाता है। और मैं लौट रही हूँ और कहीं नहीं स्वयं से साक्षात्कार करने मन की अन्तर्यात्रा हेतु निकल पड़ती है एक नई भोर में।

-राजश्री शर्मा, खण्डवा

000

उर्मिला शिरीष वर्तमान के साहित्यिक परिदृश्य में अपना स्थान तय कर कहानी लेखन में बहुत परिचित नाम है। "मैं लौट रही हूँ" कहानी एक औसत लंबाई की कहानी है बल्कि छोटी ही है। ज़रूरी नहीं होता कि अपनी बात कहने, कहानी कहने के उद्देश्य को पूर्ण करने तथा अपनी विद्वता को सिद्ध करने के लिए अधिक लिखा जाए। यह कहानी इस बात का उदाहरण है कि कम लिखकर भी भरपूर प्रभाव उत्पन्न किया जा सकता है। पाठकों की पठन तृष्णा को शांत किया जा सकता है। कहानी का केंद्रीय भाव एकाकी जीवन है। इस आपाधापी भरी ज़िंदगी में उम्र का अंतिम चरण एकाकी पाया जाने लगा है।

जब व्याततताओं को विराम मिलता है, जब परिवार के साथ जीने का पर्याप्त वक्त हाथ में आता है तब कोई साथ नहीं होता। बच्चों का साथ छूट जाता है, घर के बुज़ुर्ग छोड़ कर चले गए होते हैं। उन्मुक्तता से जीने की सोच जो जीवन भर साथ रहती है ऐसे समय पर किसी काम की नहीं रह जाती। थोड़े ही दिनों में स्वतंत्रता, उन्मुक्तता अपनों का साथ तलाशने लगती है। उर्मिला जी ने आरम्भ भी इस एकाकीपन की पीड़ा से ही किया है। उनके शब्द पाठक को भी सफलतापूर्वक इस पीड़ा का भागी बना ले जाते हैं। गरिमा जी ने लिखा है कि लेखिका ने धूप, हल्के बादल, हवा आदि बिम्बों से विभिन्न मानसिक स्थितयों का चित्रण कहानी की विशेषता है। कहानी की एक पंक्ति उधृत की है आपने "असली घर टी मन होता है और मैं अपने मन को अब और नहीं भरमाना चाहती" आपने इसे नायिका के अपने तक लौट आने की कहानी कहा है।

इस कहानी में दो मुख्य पात्र हैं। अनुजा का एकाकीपन अलग तरह का है। यशवंत शर्मा का अलग। उसे चरित्र को आदर्श के साथ निर्मित किया गया है। वहीं अनुजा का चरित्र स्त्रियोचित है। वैभव कोठारी जी ने भी एक पंक्ति कहानी से ली है "घर का कोना-कोना किसी को पाना चाहता है। "यह पंक्ति भी अनुजा के लौट आने और स्त्रियोचित चित्त की ओर ही संकेत करती है। वैभव लिखते हैं ऐसा लगता है जैसे लेखिका ने पात्र काया में प्रवेश कर कहानी लिखी है। वे इसे गंभीर अनुभवजन्य कहानी कहते हैं। वैभव के सूक्ष्म अवलोकन कहानी के बिल्कुल नज़दीक हैं। प्रेम मानव को मिला एक ऐसा तत्व है जो जीवन को जीजिविषा के साथ जीवन में उत्साह, उल्लाहस और सुख प्रदान करता है।

डॉ. विद्यावती पाराशर का मन्तव्य भी उनकी प्रतिक्रिया में ऐसा ही है। हरीश दुबे जी ने इस कहानी को अद्भुत बुनावट वाली, संक्षिप्त सारगर्भित, मन को छू जाने वाली शैली तथा प्रेम की शाश्वत सत्ता पर विजय परचम फहराने वाली कहानी कहा है। प्रेम के कई सुन्दर रूप होते हैं और ऐसा ही निश्छल प्रेम इस कहानी में मिलता है। आज की आपाधापी में ज़िंदगी में अपने भीतरी सच को जानने, अंतर्मन को टटोलने को संकेत करती यह एक सोउद्देश्य कहानी है। अरुण सातले जी की टिप्पणी इस कहानी के आकलन के लिए पर्याप्त है। इस टिप्पणी के बाद समन्वयक को कुछ कहने की आवश्यकता ही नहीं रहती। निश्चित ही आज की आम समस्या एकाकी जीवन है। हर दूसरे घर की यही पीड़ा है। सुषमा शर्मा जी ने भी यही कहा है कि कहानी समसामयिक है। यही बात अदिति अत्रे जी ने भी कही है। साधना शर्मा जी ने इसे सजीव चित्रण निरूपित किया। उमा चौरे जी, अनुराधा पारे जी, आरती डोंगरे जी, तथा स्वाति जोशी जी ने इसे सकारात्मक सोच की कहानी कहा है। कविता पगारे जी लिखती हैं कि आरम्भ में यह कहानी नायिका के अवसाद की लगती है, जबकि ऐसा नहीं है। उनकी इस बात से इत्तेफाक रखा जा सकता है।

सुनीता परसाई जी, विजय जोशी जी, चंद्रमणि दफ्तरी जी की टिप्पणियाँ महत्त्वपूर्ण हैं। राजश्री शर्मा जी का गहन अध्ययन और विरल पाठकीय दृष्टिकोण उनकी टिप्पणी में दृष्टिगत है। वे लिखती हैं कि नायिका का भावनात्मक उद्रेक अनेक भावों की दुरूह वीथिकाओं से होकर गुज़रता है। कहानी के बिम्ब विधान चमत्कृत करते हैं। अंत में नायिका नई भोर में स्वयं से साक्षात्कार के लिए अंतर्मन की यात्रा के लिये चल पड़ती है। जब कहानीकार स्पष्ट नहीं कहकर पाठकों के लिए स्पेस छोड़ देता है तब उसके कई अर्थ प्रस्फुटित होने लगते हैं। इस तरह की सुविधा का लाभ लेखक उठाते हैं, इस कहानी में भी लेखिका ने यह लाभ लिया है। क्योंकि यहाँ यह कहानी की ज़रूरत भी है। ऐसे वक्त पाठक को ही विचारों से जूझना होता है। यह लेखिका की सफलता भी है। निश्चित ही कहानी अपनी भाषा में समृद्ध है, शैली में सम्पन्न, उद्देश्य में सफल, पात्रों के चित्रण में सटीक तथा पाठक को बाँधने और अंत में उन्हें विचारों में उलझा लेने में सक्षम है।

-शैलेन्द्र शरण

000

हमारे समाज में विधवाएँ...

उषा प्रियम्वदा

उषा प्रियम्वदा
1219 शोर वुड बुलेवार्ड,
मैडिसन , विस्कॉन्सिन, 53705, यू एस ए
मोबाइल-608-238-3681
ईमेल- unilsson@facstaff.wisc.edu

हमारा हिन्दू समाज स्त्रियों के प्रति कितना निर्दय और कठोर है, यह मुझे कानपुर जाते ही समझ में आ गया था, जब एक अधेड़ आयु का व्यक्ति, जो तीन बेटियों और एक बेटे का पिता है, तेरह चौदह वर्ष की अपने शरीर और उसकी क्रियाओं से नादान ख़ूबसूरत लड़की से ब्याह कर लेता है, अगर तेरह चौदह वर्ष की वैधव्य ग्रस्त लड़कियाँ, जानकी बुआ और मुन्नी बुआ जीवन पर्यन्त अवहेलना, तिरस्कार झेलती हुई दर-दर भटकती हैं, अपमान और अवहेलना सहती हुई किसी पुरुष संबंधी का आश्रय लेती है। उनके परिवार को पालती पोसती हैं, बिना वेतन के नौकरानी बनी रहती हैं। हमारे परिवार के अधिकांश पुरुषों ने विधुर हो जाने के बाद कम उम्र की लड़कियों से विवाह किए थे- उनकी कम वयस्क की पहली पत्नी या संतान जन्म या सास-ननद जेठानी की प्रचण्ड नीति में बलि हो जाती थीं- उनका नाम या उल्लेख भी नहीं होता था।

कानपुर में बड़ी कोठी, जिसमें मेरा खटोला पड़ा रहता था, दीवार पर बड़ी सी फ़ोटो टँगी रहती थी, उसमें रोबदाब वाले सँझले बाबा, उनकी पहली पत्नी, चार बच्चों के साथ बैठी हुई थीं। पत्नी की मृत्यु के बाद उन्होंने एक अत्यन्त गोरी, सुन्दर, परन्तु जैसा उस समय की चलन था, निरक्षर कन्या से विवाह कर लिया था, वह थी हमारी सँझली दादी, जिनका नाम, रूप के अनुसार गुलाब देवी था। वह बहुत सीधे-सीधे स्वभाव की महिला थीं, जिन्हें विवाहोपरान्त शरीर के साथ क्या व्यवहार हो रहा है, इसकी बिल्कुल चेतना नहीं थी- उन्होंने चार बेटों को जन्म दिया और हर बार घर की कोई नौकरानी ही उन्हें अवगत कराती थीं कि वह गर्भवती है, अरे, यह कैसे? वह हमेशा अचरज में पड़ जाती थीं, और काफ़ी उम्र होने तक वह समझ नहीं पाईं थी कि उनके शरीर का क्या उपयोग होता है।

पहली पत्नी के देहांत के बाद दूसरा विवाह करना आम बात थी, मेरे परिवार की एक निकट की महिला की मृत्यु के बाद जब उनके पति के दूसरे विवाह की ख़बर मुझे मिली तो मुझे धक्का सा लगा, जैसे उस दूसरी पत्नी का कर्त्तव्य केवल पहली के बच्चों को पालना-पोसना ही था, वह इसीलिए विवाह करके लाई गई थीं। उसकी अपनी इच्छाएँ, कामनाएँ क्या होंगी ? क्या वह केवल घर चलाने के लिए गृहिणी मात्र थीं- बेटियों के सिर पर एक स्त्री- वह केवल एक साधन थीं- मगर यह सब कहना मेरे लिए उचित नहीं था, इसलिए मैंने अपना मुँह बंद ही रखा था।

हमारे घर में कम उम्र की विधवाओं की क़तार थी, सँझली और छोटी दादी, मेरे पिता के चाचाओं की पत्नियाँ, दोनों ही दूसरी पत्नियाँ थीं। दूसरी ओर बुआ थीं, मेरी दादी की भानजी, भतीजियाँ-और उस क़तार में मेरी माँ भी जुड़ गई थीं, पति हीन, पुत्र हीन, सामने तीन-तीन बेटियाँ।

जब हमने परेड के मकान में शरण ली, तब तक सँझली दादी और छोटी दादी अपने-अपने जीवन में रम चुकी थीं- उनके पति व्यावहारिक थे, मकान ख़रीदकर छोड़ गए थे। सँझले बाबा दिल्ली में और छोटे बाबा कानपुर में, जिनके किराए से पत्नी और बच्चों का निर्वाह होता था। कानपुर में परेड का मकान मेरे बाबा के छोटे भाई नवाब राय ने ख़रीदा था जो स्वयं संतान हीन थे, और जो उनकी मृत्यु के बाद पूरे परिवार का आवास हुआ। उस घर के आगे भी तीन-चार दुकान थीं, जिनके किराए पर घर वालों की दाल रोटी चलती- हमारे बाबा का भी एक घर था जो आगरा में था, और जिसे बेचकर मेरी माँ ने मेरी सबसे बड़ी बहन कमला का विवाह धूमधाम से किया था, वैसे ही यदि मेरे पिता होते तो होता।

मुन्नी बुआ, मेरी अपनी दादी की बहन की बेटी थीं, उनका कब विवाह हुआ और कब वह विधवा हो गईं, इसकी उन्हें याद भी नहीं थीं, न उन्हें अपने पति का चेहरा याद था न कि कैसे उनकी मृत्यु हुई। मैंने हमेशा उन्हें शृंगार हीन, सफ़ेद धोती और वैधव्य वेश में ही देखा-

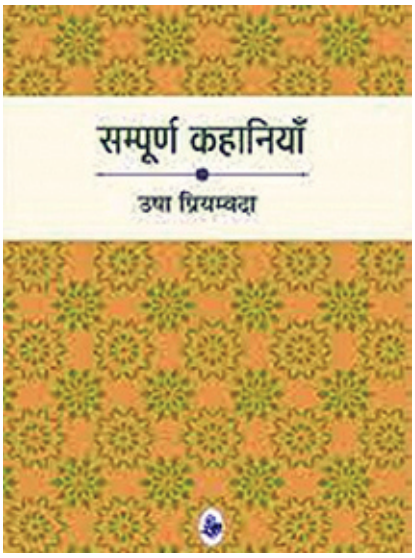

वह अपने छोटे भाई हरिहर या छोटी बहन चुन्नी के परिवार के साथ रहती थीं।

गोरा रंग, सुरूप चेहरा, बातचीत में मिलनसार, एक दम तापसी जीवन, एकादशी और पूर्णिमा के व्रत, वह कभी पति की बात नहीं करती थीं, उन्होंने वैधव्य जीवन, हिन्दू पद्धति के अनुसार, भगवद् भजन में अर्पण कर दिया था। गंगा स्नान का लोभ उन्हें लखनऊ से हमारे घर कानपुर खींच लाता था, सरसैया घाट से स्नान कर, गीली धोती कंधे पर रख, वह पैदल परेड पर घर लौटती थीं, तब उनका चेहरा एक सन्तोष और अपूर्व आभा से दीप्त रहता था- उन्होंने जीवन का सुख गंगा स्नान, भजन, पूजन में पा लिया था, न उनका अपना घर था, न सर पर छत। शाम के समय वह हम बच्चों को धर्म संबंधी मौखिक कहानियाँ सुनाती थीं, जिन्हें मैं बहुत चाव से सुनती थी- और जो बरसों बाद, अमेरिका में लोक कथाएँ पढ़ाने में बहुत काम आईं-जैसे पार्वती जी का धोबिन को अखंड सुहाग बाँटना, संकट देवता का लालची जेठानी को दंड देना, अपने ससुराल की धन दौलत के मद में बहन का भाई के प्रति तिरस्कार, जो भाई-दूज की कहानी थी। उनकी कहानियाँ घरेलू होती थीं, उनमें देवी-देवता आम संसार में बेधड़क आया जाया करते थे, और वह अभी तक मेरी स्मृति में अंकित है। उनकी छोटी बहन चुन्नी बुआ और भाई हरिहर चाचा उनका सम्मान करते थे, और शायद उन्हीं का प्रभाव था कि मेरी माँ की रुचि भी धर्म की ओर प्रवृत्त हो गई, माँ ने भी एकादशी और पूर्णमासी का व्रत करना, माघ के महीने में तारों की छाँह तले ठंडे पानी से नहाना, रोज़ चौकी पर बैठकर विष्णु सहस्त्र का पाठ करना और चैत्र में नौ दिनों रामचरित मानस का पारायण करना- कानपुर लौटने पर ही प्रारंभ किया था। हमारी दूसरी बुआ थीं जानकी, वह जैसे दुर्भाग्य अपने जीवन में बाँधकर लाई थीं। चौदह वर्ष की आयु में उनके पति का घोड़े से गिरकर देहान्त हो गया था। उनके ससुर किसी रियासत में दीवान थे और रियासत ने बुआ के नाम दो रुपये महीने की पेंशन बाँध दी थी। ससुराल में वह अपने जेठ और उनके बच्चों के साथ रहती थीं, जो उनके साथ बहुत दुर्व्यवहार करते थे।

जब वह भर्त्सना पूर्ण दुर्व्यवहार असहाय हो जाता था तो वह कुछ समय के लिए किसी दूसरे संबंधी के यहाँ चली जाती थीं, जहाँ भी जातीं, सुबह से शाम तक काम में जुटी रहतीं, वह कहीं भी तीन चार दिन से अधिक नहीं रहती थीं- उनकी सारी चल-अचल सम्पत्ति दो झोलों में सीमित रहती थी, एक महा फटी तौलिया, बिना किनारी की, धुल-धुल कर मटमैली हो आईं दो सूती मर्दानी धोतियाँ और एक पुड़िया में लिपटे पान सुपारी। उनके जीवन में केवल एक शौक था, पान खाने का और उनकी दो रुपये की पेंशन पान सुपारी में ही ख़र्च होती थीं। जब उन्हें पता चलता कि मैं भारत आई हुई हूँ तो वह मुझसे मिलने अवश्य आतीं। न जाने क्यों वह मेरी जैसी अव्यवहारिक भतीजी से इतना स्नेह क्यों करती थीं। शायद मेरा अमेरिका में रहना और 'धर्मयुग' में छपना उनके सुख विहीन जीवन में सारे संबंधियों के बीच गर्व का कारण था। वह जब आतीं मुझे कभी बाज़ार की टिकियाँ, दही बड़े, कढ़ी और तरह-तरह के पकौड़े पकौड़ियाँ ज़रूर बनाकर खिलातीं। मेरे दोनों भाई शिब्बनलाल और होरी लाल उनका बहुत आदर करते थे और घर में उनके काम करने की कोई आवश्यकता नहीं होती। उन्हें मेरी भतीजियों, सविता और छाया के लिए आया 'चन्दामामा' पढ़ना बहुत पसंद था। दोपहर में खाट पर लेट कर वह 'चन्दामामा' पढ़तीं तब

उनके मुख पर संतुष्टि और संतोष दिखाई देती मगर तीन चार दिन बाद वह फिर अपने दोनों झोले सँभालकर कहीं और चल देतीं-

***

जैसे जानकी बुआ का जीवन अवहेलना, तिरस्कार झेलते हुए और दूसरों की गृहस्थी में बड़ियाँ, मंगौड़ियाँ तोड़ते बीता, वैसे ही मेरी माँ अपनी सिलाई मशीन से जुड़ गई थी, और वह मुफ्त का काम था, 'बड़े मकान' बिरादरी वालों के घर के लोगों के कपड़े सीने का। बड़े मकान वाले हमारे संबंधी नहीं थे, केवल बिरादरी वाले थे और उस समय उस बिरादरी का जीवन में बहुत महत्त्व था। कनछेदन, तीज त्यौहार, ब्याह, शादी, मुंडन पर हम सबको बड़े मकान जाना अनिवार्य था- वह मकान नहीं, पूरा मोहल्ला था। हमारे घर के बीच दो दुकानें छोड़कर श्यामलाल का हाता आता था। उसके बाद ख़ूब ऊँची-ऊँची सीढ़ियाँ, वह बड़े मकान का एक भाग था, जहाँ उस परिवार के बट्टन बाबू, छुट्टन बाबू और महरज्जू अपने-अपने परिवारों के साथ रहते थे, बट्टन बाबू की चार बेटियाँ थीं, कृष्णा और सरोज जो मेरी बड़ी बहन कमला की समवयस्क और सहेलियाँ थीं, तीसरी थीं बड़ी मुनिया और चौथी छोटी मुनिया, जो मेरे स्कूल में ही पढ़ती थीं और कभी-कभी मैं उनके घर चली जाती थी पर उनका रहन-सहन और जीवन पद्धति हमारे घर से बिलकुल अलग थी। घर के उस पार रहते थे शहज़ादे बाबू, जिनकी बेटी बेबी सजती अधिक थी, पढ़ती कम, उनकी बड़ी बहन इन्दो बुआ का हमारे घर काफ़ी आना जाना था और मेरा परिवार उनसे बड़ा प्रभावित रहता था। जब मेरे पिता जीवित थे तो हमारे घर की स्त्रियाँ पान खाने और ताश खेलने में समय बिताती थीं, इन्दो बुआ का हमारे घर से तभी से आना-जाना था और यह संबंध बहुत बाद तक भी चलता रहा। इन्दो बुआ के घर की सारी सिलाई माँ करती थीं। उनकी भतीजी विजय की शारी के सारे कपड़े माँ ने ही सिले थे। साटन के पेटीकोट, ब्लाउज़, रज़ाइयाँ, और बाद में बैठकर रजाइयों में डोरे डालना। वह सारे दिन व्यस्त रहती थीं और उनकी मशीन की अनवरत खट् खट् मेरे दिनों और शामों की साथी थी। यह सब काम मुफ्त में होते थे। मुझे याद नहीं है कि कभी माँ को एक साड़ी या मुझे एक फ्रॉक इस मुफ्ती काम के बदले उपहार में मिली हो। संझली दादी को मेरे स्कूल जाने और पढ़ाई करने से बहुत चिढ़ लगती थीं।

'तुम्हारी अम्माँ तो' वह अक्सर कहा करतीं ''पढ़ा-पढ़ा कर तुम्हारी आँखें ही फोड़ देंगी। देखो, छठे दर्ज़े से ही चश्मा लग गया है'' मैं उन दिनों बहुत बीमार रहती थी, मेरे पेट में दर्द, बुख़ार, पेचिश- डॉक्टर के पास जाना था दवा दारू, इसका तो प्रश्न ही नहीं था। दर्द झेलते, मुझे स्कूल जाना और वहाँ मुझे प्यासे सारा दिन काटना, यह सब मैंने बिना किसी प्रतिवाद के स्वीकार कर लिया था। मेरा प्रयत्न यही रहता था कि मेरी किसी बात या माँग से माँ को तकलीफ़ न हो।

पिता शाह ख़र्च थे, माँ की भतीजियों के विवाह में शराब पानी का सारा ख़र्च वही उठाते थे और अपने मायके में माँ ऊपर से लेकर गहनों से सजी बहुत ठसक से रहती थीं। पर अब समय बदल चुका था, माँ अब नितान्त पराश्रित होकर मेरे साथ सम्मिलित परिवार में रह रही थी। एक निराश्रय विधवा- ज़ाहिर था हमारा आना संझली दादी को बिलकुल अच्छा नहीं लगा था। मगर उनकी बड़ी बहन रामदेवी के आगे जिन्होंने मुझे और माँ को प्रश्रय दिया था, वह कुछ बोल नहीं सकती थीं। बस मौक़ा मिलने पर बुरा भला, उल्टा सीधा कहने से नहीं चूकती थीं, तब माँ के आँसू टप-टप गिरते थे अकेले में। मैं पढ़ने में तेज़ थी, इसलिए मेरी फ़ीस माफ़ थी, पर ठेले से आने-जाने के तो पैसे लगते ही थे, वह जुगाड़ माँ कहाँ से और कैसे करती थी। यह मुझे कभी पता नहीं चला, और जानकर करती भी क्या। हमारा ठेला चलाने वाला एक आँख से अन्धा था और विपन्न-भरी ठंड में भी वह एक बेहद फटी हुई और जर्जर कमीज़ पहन कर हम लड़कियों का ठेला खींचता रहता था। एक बार माँ को कमीज़ें सीते देखकर मैंने कहा- 'माँ, एक कमीज़ हमारे ठेले वाले को भी सीदो।'

उस समय माँ ने कुछ नहीं कहा- मगर होली आते-आते उन्होंने न जाने कहाँ से जुगाड़ करके, सिलाई के कपड़ों में से जोड़ तोड़ करके एक कमीज़ सिल दी- और मुझे देकर कहा- 'ठेलेवाले को दे देना' मैं कमीज़ स्कूल ले गई और जब घर की छुट्टी हुई तो मैंने ठेले पर चढ़ने से पहले उसे कमीज़ पकड़ा दी 'मेरी माँ ने तुम्हारे लिए सिली है'। ठेले वाले ने कमीज़ खोलकर देखी, अविश्वास से देखता रह गया, फिर उसका चेहरा एक अपूर्ण हँसी से खिल उठा, साथ ही दोनों आँखों से आँसू टपकने लगे।

मैंने घर आकर माँ से कहा 'ठेले वाला रोने लगा' माँ ने लम्बी साँस ली- ''बेचारा'' आगे बोलीं 'हम भी तो...' बात अधूरी रह गई। हम भी तो पराश्रित, एक दम निर्धन थे, नया कपड़ा क्या होता है, यह मैंने तब जाना ही नहीं था। और तो और सहेलियों को देखती थी, नई-नई साड़ियों और सलवार कमीज़ों में मगर वह मेरे लिए नहीं है, यह मैं बारह-तेरह साल की उम्र में जान गई थी, और इच्छा करने का भी सवाल नहीं था। किसी चीज़ की इच्छा करना या कुछ भी पाने की उम्मीद करना, यह मेरे लिए नहीं है, मैं समझ गई थी और हो गई थी विरक्त, निस्पृह-निर्लिप्त।मेरी सहेलियाँ समृद्ध परिवार की थीं, पर यदि उन्होंने मेरे कपड़े या मेरा क्षुधित रहना देखा भी मगर कुछ कहा नहीं। बस पढ़ती थी, कोर्स की किताबें और कभी कभार चाची से मिल गई 'माया' या 'मनोहर कहानियाँ' जो वह नियमित रूप से मँगाती थी। 'दुखवा मैं कासे कहूँ सजनी'- जैसी कहानियाँ मेरे सिर के ऊपर से निकल जाती थीं, पर पढ़ती ज़रूर थी।

तो मेरे बचपन में घर में विधवाएँ थी, उनकी बेबस और आशाहीन ज़िंदगी थी जिसमें आने वाले कल में कोई भी सुख या कोई भी आशा नहीं थी। माँ की मशीन थी, जो बरसों मुफ्त में पड़ोसियों के कपड़े सीती रही, मुझे भी क्रोशिया करना सिखा दिया गया था, और खाली समय में मैं इन्दो बुआ के परिवार की स्त्रियों के लिए बेलें बुनती रहती थी। मामा जी के घर जाती तो भाभी कुछ न कुछ काम पकड़ा देती, तुरपाई या उनकी बेटियों की फ्राकों में बटन टाँकना, जो मुझे ज़हर सा

लगता था, पर यह उस समय की स्त्रियों की प्रवृत्ति थी, माँ निराश्रय थीं, विधवा और मैं उनकी बारह साल की बेटी थी- फालतू कामों के लिए। मेरे लिए उनके मन में अवज्ञा क्यों थी, मैं उनकी अन्य ननदों की तरह मूल्यवान क्यों नहीं थी, मैं तब नहीं समझ पाई थी, अक्सर मेरी ममेरी बहनें सजधज कर भाभी और भाई के साथ सिविल लाइन्स घूमने, पिक्चर देखने या किसी रेस्ताराँ में समोसे और आइसक्रीम खाने जातीं, तो कोई भी मुझे साथ चलने को नहीं कहता, मैं माँ और नानी की चारपाई पर बैठी सबको जाते देखती रहती- पर मेरे मन में न कोई चाहना थी, न गिला शिकवा। हाँ माँ अकेले में कहती "प्रकाश हमारे घर में रहकर पढ़े मगर इन्हें यह ख़याल नहीं आया कि उषा को भी साथ ले चलें।"

मैं क्या कहती, चुप रहती, रेस्तराँ में जाकर समोसे और आइसक्रीम खाना, या पिक्चर देखना, मेरे सपनों में तो कहीं नहीं था। मेरे आसपास सम्पन्न जीवन जीती हुई सहेलियाँ थीं, जिनके घरों में बैठकें थीं, डाइनिंग रूम था, अलग रसोइया था, सामने बड़ा सा फूलों से भरा लान था, उनके पास नए-नए कपड़े थे, वह गाड़ियों में स्कूल आती थीं और सबसे बड़ी बात थी, वह सब मुझसे प्यार करती थीं। अध्यापिकाएँ मेरी कुशाग्र बुद्धि पर शाबाशी देती थीं। वह सब मुझे वैसे ही छूकर अधूरा छोड़ जाता था जैसे कि बड़े मकान की लड़कियाँ उत्तम, डौली, बेबी और आशा की उपेक्षा। यह बात नहीं थी कि मैं बदसूरत थी या मंदबुद्धि, बात यह थी कि मेरे बाप मर चुके थे, दादा जेल में थे और हमारे घर की छत पराई थी। हमारा, मेरा या माँ का कोई जीवन मूल्य नहीं था, हम उपेक्षित थे, पराश्रयी, और मैंने जीवन के उतार-चढ़ाव से निर्लिप्त और निर्विकार रहना सीख लिया। ममेरी बहनें प्रभा और सुधा स्नेह देती भीं तो वह उसी तरह से स्वीकार कर लेती थी, वैसे ही जैसे किसी पुरुष का डाँटकर कहना- यहाँ से हटो- तो हटजाती थी।

***

कानपुर के उस घुटे, अवसाद पूर्ण वातावरण में एक किरण थी, माँ के चचेरे भाई ब्रजभूवन हजेला के विशाल परिसर में कभी-कभी गर्मी की छुट्टियाँ बिताना, वहाँ मामाजी और उनकी पत्नी अवसाद पूर्ण वातावरण में एक किरण थी, माँ के चचेरे भाई ब्रजभूवन हजेला के विशाल परिसर में कभी-कभी गर्मी की छुट्टियाँ बिताना, वहाँ मामाजी और उनकी पत्नी क्षेम कुमारी द्वारा माँ का बहुत आदर, सम्मान किया जाता था, और उनकी दोनों बेटियाँ प्रभा और सुधा, गोरी, सुन्दर सम्पन्न, मुझे अनाभास ही बहुत स्नेह और ममता देती थीं। वहाँ छोटे मामाजी की भी चार बेटियाँ थीं, मनोरमा, बिम्मो, निम्मो और उमा और सौभाग्यवती मौसी की सुभाषिनी। हम लोग हँसते, गाते, समय बिताते थे। मेरे एकाकी जीवन में यह सब हँसी खुशी, ममत्व और सौहार्द, ममेरी बहनों का प्यार और साथ बहुत रंग भर देता था। माँ और मैं, छत पर बने बड़े से कमरे में ठहराए जाते थे, और जब पहली बार मैंने अलमारी खोली तो उसके कई खानों में 'चाँद' 'माधुरी' और 'सरस्वती' की प्रतियाँ क़ायदे से चुनी रखी हुई पाई। चींटी को मिल गया शहद का समुद्र, मैं उन पत्रिकाओं को पढ़ने में लीन हो गई, गर्मी की लम्बी-लम्बी दोपहरें वह पत्रिकाएँ पढ़ते हुए बीततीं। शाम को हम सब आँगन में इकट्ठे होते जहाँ पूर्ण आर्य समाजी रीति से संध्या और हवन होता।

वह प्रारम्भ था मेरे जीवन पर्यन्त पुस्तकों से प्रेम और लगन से पढ़ने की, पहले वर्ष के उन कुछ महीनों ने मेरी जीवन धारा मोड़ दी, मैं पढ़ते समय एकदम लीन हो जाती थी, आत्मसात् हो जाती थी उन पात्रों के जीवन से- उन्हीं के साथ मुस्कराती थी, उदास होती थी। प्रेमचंद का 'प्रेमा' उपन्यास भी मैंने पहली बार धारावाहिक रूप से वहीं पढ़ा।

जब सारी पत्रिकाएँ पढ़ चुकी तो मेरी दृष्टि गई मामी के कमरे की अलमारी पर, जहाँ हिन्दी और बंगाली उपन्यासों के अनुवाद क़रीने से चुने रखे थे, बस, दुनिया डूब गई, पिछड़ गई और मैं उन उपन्यासों में लीन हो गई। मुझे आसपास की दुनिया की कोई सुध न रही।

न खाने की न पहनने की। यदि माँ ने कोई पुस्तक पढ़कर मुझे रोते देखा तो भी वह मौन रही। वह भाभी की अलमारी मेरे लिए अमूल्य निधियाँ समेटे हुए थी, और शायद उस समय ने ही मेरे भावी जीवन की दिशा निर्धारित कर दी। पर मुझे उस समय यह कहाँ पता था कि मेरा यह पुस्तक प्रेम मुझे किस सागर के तट पर लाकर खड़ा कर देगा।

परंतु समय, परिस्थितियाँ और परिवेश तो वही रहे, भले ही मैंने अपने जीवन की लालसाएँ उन उपन्यासों में भुला दीं, या उस समय मेरी लालसाएँ थी भी क्या?

एक विवाह के अवसर पर सुधा जिज्जी ने मुझे अपना लाल बनारसी लहँगा और दुपट्टा पहना दिया। माँ की घिसी पिटी, बरसों पहनी, पुरानी पीली सिल्क की साड़ी की जगह यह सुन्दर लहँगा मैं अभिभूत थी, मैं उस शाम के नशे में कई दिन प्रसन्न रहती यदि मैंने अगली सुबह छोटी भाभी की बातचीत न सुन ली होती। "ऐ, जिज्जी," उन्होंने माँ से कहा, लालरंग का लहँगा उषा पर कुछ फबा नहीं, यह तो गोरे रंग पर ही खिलता है। मेरे सामने उनकी पुत्री उमा थीं, जो काफ़ी गोरी थीं। माँ चुप रह गईं, उनका चेहरा उतर गया और मैं अन्दर ही अन्दर जैसे कुम्हला गई।

अनुक्रम में बड़ी भाभी सर्वोपरि थीं, घर की स्वामिनी, जिनके पति परिवार के सर्वेसर्वा थे, फिर थीं छोटी भाभी, चार बेटियाँ और दो बेटों की माँ, जिनके पुश्तैनी पति ज़मींदारी सँभाल रहे थे। अब माँ विधवा थीं, पराश्रिता, कोई उनकी बेटी को ठोकर मार सकता था। उनकी आँखें सजल हो आईं, पर वह चुप रहीं। बरसों बाद, मेरे अमेरिका से भारत आने पर माँ ने कहा- उमा ने अपनी माँ से कहा कि उषा जिज्जी अमेरिका के पैमाने पर सुंदर मानी जाती हैं, तो छोटी ने कहा, "ऐ लो, उषा में रूप कहाँ से आ गया," तो मैं हँस दी, कहा "माँ- उमा सच कह रही थीं, अमेरिका के अनुसार मैं सुंदर मानी जाती हूँ।"

तो, हमारे घर में बेटियाँ और बहुएँ बहुत कम उम्र में मर जाती थीं। परिपाटी के अनुसार बारह तेरह वर्ष तक पहुँचते-पहुँचते विवाह, शीघ्र ही संतान जन्म, ससुराल में परंपरागत सास, ननद, जेठानियाँ तथा अन्य स्त्रियों का

कठोर भार और निर्दयी व्यवहार, पहले तो एकदम कच्ची उम्र में, घर की कोठरी में मैली कुचैली दाई द्वारा प्रसव में ही किशोरी माँ और संतान के जीवित बचने की आशा कम होती थी, और बच गईं तो जल्दी ही घर गृहस्थी के कामों में झोंक दी जाती थी। पर्दा प्रथा के अनुसार लंबा घूँघट-प्राय: तपेदिक़ का शिकार हो जाती थीं और एक दिन मायके में पत्र आ जाता था कि बेटी नहीं रही। संझले बाबा की पुत्री और छोटे बाबा की पुत्री का ऐसे ही अंत हुआ, उनके नवयुवक पति विद्यार्थी थे और पत्नी के पक्ष में बोलना एकदम नागवार होता था।

बड़े होते हुए अपनी बुआओं, ममेरी बहनों और अन्य संबंधी स्त्रियों की कहानियाँ कभी-कभी सुनने में आती थीं, कौन कैसे मरा, इसकी चर्चा कभी नहीं होती थी। कभी कभार कोई मुँहफट संबंधी कह देती थीं, सास बड़ी निर्दयी थी, तपेदिक़ होने पर भी न दवा-दारू, ठंडे पानी से नहाना, सारे घर की रसोई और बड़ी मंगौड़ी के लिए सेरों दाल पीसना, बेचारी प्रेमलता।"

राजबहादुर, सबसे छोटे बाबा की बेटी मुन्नी की भी तेरह वर्ष की आयु में संतान जन्म में मृत्यु हो गई थी। यह सब पुरुष ज़माने के अनुसार शिक्षित थे, संझले बाबा फ़ारसी और अंग्रेज़ी पढ़े थे और दिल्ली के अंग्रेज़ी होटल 'झेसिल' में मैनेजर थे, राजबहादुर स्वयं एक अंग्रेज़ी फ़र्म में चार्टर अकाउन्टेन्ट थे, पर स्त्रियों के प्रति उनके विचार एकदम परंपरागत रहे। मेरी अपनी बुआ, मेरे पिता की एकमात्र बहन थी। प्रसव में ही मरी और उनके पति ने दूसरा विवाह भी किया, उनकी दूसरी पत्नी, पति की मृत्यु के बाद, हमारे घर मृत्युपर्यन्त तक रहीं और मेरे पिता ने उन्हें अपनी बहन की तरह सम्मान दिया, उस समय सम्मिलित परिवार में असहाय या निर्धन संबंधियों का समावेश एक साधारण बात थी।

दूसरी प्रथा जो मुझे बचपन से ही बहुत विचित्र लगती थी वह थी बड़ी बहन की मृत्यु के बाद छोटी बहन से दूसरा विवाह। मैंने ननिहाल में देखा था, छोटी थी इसलिए समझ नहीं पाई पर बहनोई से विवाह और बहन के बच्चों को पालती हुई एक बहन के चेहरे पर मैंने हमेशा दुख की छाया ही देखी।

घर में आई पुत्रवधू का तिरस्कार, अवमानना और दुर्व्यवहार उस समाज के ताने-बाने में बुना हुआ था। स्त्री की मानसिकता को न समझना, उसके आचरण पर बंधन, विवाह संबंधी आशाओं का पूरा न होने पर निर्दयी व्यवहार, पुत्र के विवाह पर अपने अपदस्थ हो जाने का फ्रस्ट्रेशन, उससे उत्पन्न तिलमिलाहट, या फिर परिवार में किसी विधवा का तिरस्कार, और दुर्व्यवहार, उसकी नींव हमारे समाज में बहुत गहरी थीं। अपने अन्दर विभिन्न परिस्थितियों से उत्पन्न भावनाओं को समझना, अन्य स्त्रियों की स्थिति का आदर करना प्रयत्न करने पर अपने अन्दर की कटुता का दमन करना; यह सब अपने को चिह्नने का प्रयास शिक्षित समुदाय में आ रहा है, पर अधिकांश परिवार अभी भी परंपरावादी हैं। इसका उदाहरण मैंने दो वर्ष पहले वाराणसी के एक पाँच सितारा होटल के लाउन्ज में देखा था,पर्याप्त दहेज न मिलने पर सास गरज रही थी, नवविवाहिता पुत्रवधू सिर झुकाए खड़ी थी, उसका पति जो शिक्षित लगता था, चुप था। आसपास के सारे लोग कौतुक से तमाशा देख रहे थे। मैं उठी कि वर से पूछूँ कितने में बिके? और रीता ने मेरा हाथ पकड़ कर रोक लिया, यह दृश्य बहुत दिनों तक मेरी आँखों के आगे घूमता रहा। मैं दूसरे दृश्य याद करती रही, जब कि सुन्दर, कलात्मक, पढ़ी लिखी पुत्रवधू पाने पर भी सास को दहेज में थैली न पाने का मलाल था और उनको सही राह पर लाने के प्रयत्न से मुझे पुत्रवधू के परिवार की भर्त्सना सहनी पड़ी थी। परिवार में शायद पुत्री, मुन्नी और बहुओं की मृत्यु से ही अगली पीढ़ी की बेटियों को कम वयस्क में विवाह न होने और शिक्षा पाने की सुविधा मिली-दूसरा एक कारण देश और समाज में आती-नई चेतना ही थी।

कानपुर में तब गाँधी जी कई बार आए और हमारे घर की स्त्रियों और लड़कियों ने उनके संदेश पर ध्यान दिया। दूसरा कारण था, भाई शिब्बन लाल का स्वतंत्रता संग्राम में सम्मिलित होना। वह घर के बड़े थे, उनका आदर था और उनकी बात ध्यान से सुनी जाती थी। यद्यपि उन दिनों वह जेल में आजन्म क़ैद भुगत रहे थे, पर घर में लड़कियों की शिक्षा का चलन हो गया था। सुशीला बुआ ने बी.ए. किया 1935 में। बड़ी बहन ने एम.ए. 1947 में, फिर तो राह खुल ही गई मेरे लिए। माँ की आकांक्षाएँ अब अपनी छोटी बेटी पर केंद्रित हो गई थीं, मेरी उपलब्धि तब क्या थी, हर क्लास में फ़र्स्ट आना और उनसे कोई भी इच्छा न प्रकट करना, पर मैं तो अपने में ही संपुटित, अपनी ऊहापोह में उलझी। क्लास का काम करती थी और स्कूल की लाइब्रेरी से कथा कहानी, उपन्यास लाकर स्वयं पढ़ना, माँ भी वही पढ़ती थीं। मैं उनकी परिस्थिति समझती थी इसलिए मैंने अपनी इच्छाओं और आकांक्षाओं को पल्लवित ही नहीं होने दिया, वह सब जो मेरी अन्य सहेलियों के जीवन में है मेरे लिए नहीं है, यह मैंने सातवें- आठवें दर्जे से ही समझ लिया था। न मेरे परेड के घर में ड्राइंग रूम था, न डाइनिंग रूम- न कभी फ्रिज होगा न गाड़ी। ताँगे के किराए का एक रुपया भी माँ के पास नहीं होगा इसलिए सहेलियों के घर के निमंत्रण मैं चुपचाप अस्वीकार कर देती थी। जब मेरी प्रिय और निकटतम सहेली चुनमुन ने मुझे अपने जन्मदिन पर बुलाया तो मैंने उसे वहीं, खड़े-खड़े मना कर दिया। यद्यपि उसका पूरा परिवार, जिसमें सभी ऊपर थे, नाना, नानी, माता-पिता, मामा, मामियाँ सभी मुझे बहुत मानते और स्नेह करते थे। चुनमुन शायद समझ गई कि मेरे पास उस ऊँची पार्टी में आने के लिए साधन नहीं है, इसलिए उसने फरमाइश की कि उपहार में मैं उसके लिए एक कहानी लिख दूँ। उसे बसन्ता नाम के पड़ोस के एक लड़के से प्यार हो गया था, तेरह साल की उम्र का प्यार। जब हमारे बालिका विद्यालय की छुट्टी होती तो वह गेट के बाहर साइकिल लिए खड़ा रहता। चुनमुन और बसन्ता एक दूसरे को देखते, वह मुस्कराता और चुनमुन आँखें नीची किए अपने नाना की गाड़ी में बैठकर घर चलती जाती, और मैं, अपनी मोटी खद्दर की धोती में अपने ठेले पर बैठकर घर चली आती, इस किशोर वय के, मीठे प्रेम की एकमात्र साक्षी।

मैं ही उसके उद्गारों की भागीदार थी। चुनमुन की इच्छा थी कि मैं उसके और बसन्ता के इस अटूट प्रेम और अटल प्रेम पर कहानी लिखूँ- पर मेरे पास न काग़ज़ था, न स्याही, वह सब चुनमुन ने उपलब्ध करा दी।

तेरह वर्ष की आयु में वह मेरे लेखन का श्रीगणेश था, मेरी पहली प्रेम कहानी, उच्छ्वसित, आलोड़ित, मधुर मिलन के क्षणों की प्रतीक्षा में और उसका सुखद अन्त- प्रेम करना क्या होता है, यह मैं कहाँ जानती थी और न मेरी दुनिया में प्रेम या किसी लड़के का प्रवेश ही था। मेरी छोटी दादी, रामदेवी, घर के हर प्राणी पर अपनी, तीव्र, पैनी और जासूसी नज़र रखती थीं, एक बार उन्होंने मुझे गाते सुन लिया था- "अंखियाँ मिला के, जिया भरमा के चले नहीं जाना-ओ चले नहीं" तो मुझ पर इतनी सख़्त डाँट पड़ी थी कि सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई थीं।

"ऐसे गाने ?" दादी ने कहा था 'लड़कियाँ बिगड़ जाती हैं"।

मेरी कहानी 'माया' में पढ़ी हुई कहानियों के मॉडल पर थी, जिससे प्रेमी ठंडी रात में सड़क पर खड़ा-खड़ा प्रेमिका के कमरे की जगती हुई बत्ती को देखता रहता था। यही रोमांटिक मॉडल मेरे सामने था। चुनमुन और बसन्ता की प्रेम कहानी का भी माया स्टाइल में अन्त हुआ, प्रेमी ठंड खाकर बीमार हो कर मरा नहीं, पर सुना गया कि एक शाम के धुँधलके में गंगा तट पर पड़े एक तख़्त पर चुनमुन और बसन्ता आलिंगन बद्ध पाए गए, और बसन्ता की बहुत पिटाई हुई, और चुनमुन को पुलिसवाले उसके नाना के घर पहुँचा गए। उसके बाद, आँखें फाड़-फाड़कर देखने पर भी, स्कूल की छुट्टी के बाद कभी बसन्ता साइकिल लिए मुस्कराता नहीं दिखाई दिया, पर मेरी उस जन्मदिन के उपहार की कहानी का अन्त ऐसे नहीं हुआ था। इतने वर्षों बाद भी चुनमुन और बसन्ता का चेहरा मेरी आँखों के आगे है।

माँ को मैंने उन दिनों बिलकुल हँसते नहीं देखा, बल्कि बाद में भी मैंने उन्हें कम हँसते ही देखा, मगर जब हँसती थी तो मुझे बहुत अच्छा लगता था, जब हम बड़े मामा जी के यहाँ नई सड़क जाते तब भी नानी के पास बैठकर बातें करते हुए भी कभी भी हँसी की आवाज़ उस कोठरी से नहीं आती सुनी। नानी कम बात करती थीं, कभी-कभार मुझसे कह देती थीं, "खटिया पर बैठकर टाँग मत हिलाओ।" या ऐसी ही कुछ नसीहत।

नानी को सब लोग 'जिया' कहते थे, उनका नाम किसी को याद नहीं रहा, माँ होती तो उनसे पूछती। वह चुपचाप बैठकर अपने राधास्वामी मंत्र की माला जपती या मुँह ढंक कर बैठी रहती। झुकी हुई, चुप्प, खाना मिलने पर खा लेती थीं, मैंने कभी उन्हें कुछ विशेष भोजन की फ़रमाइश करते नहीं देखा था। वैसे भी उस परंपरागत परिवार में गाढ़े दूध और रबड़ी की कटोरी केवल मामा जी या उनके पुत्र की थाली में ही परोसा जाता था।

नानी अपनी छोटी सी, अँधेरी कोठरी में खटिया पर लेटी या बैठी रहती थीं। मौन या उन्होंने अपने को सबसे अलग कर लिया था या निष्कासित कर दी गई थीं, मुझे मालूम नहीं।

वह नाना, रामगुलाम हजेला, जो ज़िला फ़र्रुखाबाद के तालग्राम के ज़मींदार थे और अपने नाम के आगे 'रईस' लिखते थे, की दूसरी पत्नी थी, पहली पत्नी सन्तानहीन थीं, और नानी ने आशा अनुसार, दो पुत्र और दो पुत्रियों को जन्म दिया था। मैंने नानाजी के बड़े, कई मंज़िलें आवास की कहानियाँ माँ से सुनी थीं, नानी के कमरे में एक इतना बड़ा, इतना भारी सन्दूक था कि उसका ढकना खोलने के लिए नानी को अपनी दोनों पुत्रियों की सहायता लेनी पड़ती थी। बक्से में थे पुश्तैनी जड़ाऊ गहने, मोहरें, अशर्फ़ियाँ, रेशमी कपड़े और बन्दूकें परिपाटी के अनुसार पुश्तैनी गहने पुत्रवधू और उनके परिवार को मिले, माँ या मौसी को उनमें एक छल्ला तक नहीं दिया गया। जब तक हम 1942 में कानपुर गए तब तक नानी के पास कुछ भी नहीं बचा था, तालग्राम के विशाल घर की मालकिन एक छोटी सी कोठरी में, पतली सी खटिया और एक टीन के बक्से के साथ रह रही थीं। नानी का सोना, अशर्फ़िया- मोहरें, बिक चुके थे, कदाचित् या आभूषण पुत्र वधुओं को दिए जा चुके थे।

माँ, उत्सवों पर अक्सर मुझसे कहतीं- "देखो, प्रकाश की बहू जिया की टुस्सी पहने हैं," या शारदा उनके जड़ाऊ झुमके, फ़लाने हमारे पिताजी का नौ नगा बाजूबंद पहने हैं, और पुरानी यादों के बीच छोटी सी आह भर कर चुप हो जाती। उन्होंने अपनी माँ का वैभव और अब की विपन्नता दोनों देखी थीं।

***

उस दिन माँ बहुत प्रसन्न थीं, हम मामाजी के घर गए थे, माँ ने हँसते हुए नानी को बताया उषा का रिज़ल्ट आ गया है। हाई स्कूल में फर्स्ट आई है, दो विषयों में डिस्टिंक्शन, नानी ने कुछ नहीं कहा, चुपचाप उठी और अपनी कोठरी में चली गईं, दरवाज़ा उढ़का दिया। देर तक हम उनके बक्से में उनकी खड़बड़ सुनते रहे। फिर वह धीरे से बाहर आईं, और मेरे हाथ पर एक चाँदी का रुपया रख दिया और सिर पर हलके से हाथ रक्खा, फिर माँ को एक बैगनी रंग के छापे की सूती धोती पकड़ा दी- उषा के लिए।

वह चाँदी का एक रुपया जो न जाने कैसे, कहाँ से किसलिए नानी ने अपने चिथड़ों और गुदड़ी में छुपाकर रक्खा था, जब उन्होंने मेरे हाथ पर रक्खा तो न जाने कितने सुख, समृद्धि और यश की वर्षा मुझ पर कर दी।

अब सोचती हूँ तो लगता है कि अपनी छोटी बेटी की उपेक्षित तीसरी बेटी मेरे लिए, कहीं न कहीं उनके मन में स्नेह अवश्य रहा होगा। नतमस्तक हूँ और उस चाँदी के रुपए की महत्ता से भी तभी शायद विधाता मुस्कराए होंगे और एक लकीर खींच दी होगी मेरी भाग्य कुंडली में।

नानी धीरे-धीरे अपनी कोठरी में वापस चली गईं। रुपया मैंने माँ को थमा दिया और साड़ी माँ ने किसको दी, यह याद नहीं, अब भी घर के सब छोटे लोगों से यही कहती हूँ कि मेरे जीवन में जो भी सुख-समृद्धि, यश और सम्मान आया, वह नानी के उस एक रुपए के कारण। बच्चे सुनकर ख़ुश होते हैं, हँसते हैं, कहानी कहने और सुनने में अच्छी लगती है।

000

क्रमश: (अगले अंक में जारी)

डुबोया मुझको होने ने...

प्रमोद त्रिवेदी

प्रमोद त्रिवेदी
"मन्वन्तर", 205, सेठी नगर, उज्जैन
(म.प्र.) 456010
मोबाइल- 9755160197

पुरुषोत्तम त्रिपाठी कभी चतुर-चालाक व्यक्ति ही नहीं, घोर स्वार्थी व्यक्ति रहा। एक दम कट टू कट। उसने कभी किसी पर आँख मूँदकर भरोसा नहीं किया। दफ्तर क्या, घर में भी किसी पर नहीं ! कितना बोलना, कितनी छूट देना, कब छिटक देना, यह सब वही तय करता था। उसका कोई विश्वसनीय नहीं रहा। हर कोई उससे कतराता था। हाँ, अपने काम के प्रति वह हर तरह से प्रतिबद्ध था। अपना काम ख़ुद करना उसके स्वभाव में था। छोटी-छोटी चीज़ों, घटनाओं, हरकतों पर उसकी नज़र होती थी। कम ज़रूर बोलता था वह, पर कान हमेशा खुले रखता था। इसीलिए उसमें आत्मविश्वास कूट-कूट कर भरा था। मेहनत और योग्यता से ही वह इस पद पर पहुँचा था। जो कुछ हासिल किया, मेहनत ईमानदारी से किया और यह भाव उसके व्यक्तित्व में झलकता था। इसीलिए न कोई उसे पसंद करता था और न वह किसी को।

पुरुपोषत्तम त्रिपाठी को अपना नाम एकदम पुराना और आउटडेटिड लगता था। इतना लंबा नाम रोमन लेटर्स में लिखे तो पूरे उन्नीस लेटर्स खर्च करने पड़ें। लगे, नाम नहीं, एक जुलूस निकल रहा हो लेटर्स का। वह शार्ट एण्ड स्वीट का हिमायती रहा। काफी सोच विचार के बाद वह पी. त्रिपाठी हो गया। दकियानूसी छाया से मुक्त। यार लोगों ने अपनी सुविधा के लिए उसे केवल पी. में सीमित कर दिया। जात-पाँत, ऊँच-नीच, क्षेत्रीयता और दकियानूसीपन से बाहर आकर वह ख़ुश था। आगे से हम भी उसे पी. से ही जानेंगे।

पी. घर में भी सहज नहीं रहा। और तो और घर में भी उसकी टाई की नॉट कभी ढीली नहीं हुई। घर के लोग भी उससे सहमे-सहमे ही रहते थे। कोई उसके, सामने नहीं पड़ता था। उसकी पत्नी का नाम-सुदेशना था। पी. को इस शब्द का मतलब कभी समझ में नहीं आया। पत्नी का

हँसना भी उसके लिए तलब का मौका हो जाता था। इसीलिए इन दोनों के मन कभी नहीं मिले। बस वक़्त काटना था, कट रहा था।

पत्नी के अलावा घर में तीन बच्चे भी थे इनके। हालाँकि अब वे बड़े हो गए थे। जैसे ऑफ़िस का काम निबटाना पी. की प्राथमिकता रही, उसने यह काम भी निबटा लिया। इसके बाद बच्चों की सारी ज़िम्मेदारी –"फॉर नेसेसरी एक्शन" की टीप लगाकर वह निश्चिंत हो गया। पर जब भी उनकी एड्वर्स रिपोर्ट आई, पी. अपनी पत्नी को शे-काज़ नोटिस थमाना भी नहीं भूला। घर और दफ्तर में उसने फर्क़ समझा ही नहीं। लोग दिनभर की ड्यूटी करने के बाद अपनी सीट छोड़ते हैं तो दफ्तर की सोच, वहाँ की भाषा, काम का तनाव, झख-झख वहीं छोड़कर घर लौटते हैं, पर पी. तो वेताल की तरह हमेशा अपने कँधों पर ऑफ़िस को लादे रहा!

काम लेने के मामले में वह हमेशा सख़्त रहा। बुरा होने की हद तक सख़्त। "रियायत" उसके शब्दकोश में था ही नहीं। रियायत क्यों? ऑफ़िस का काम है। अपने हिस्से का काम पूरा करो। जो भी करो, कायदे से करो। ऐसा करो कि कोई तुम्हारे काम में ज़रा-सा नुक्स भी न निकाल पाए। सब उसके काम के कायल रहे। सारे नियम-कायदे उसकी ज़ुबान पर थे। बहस में कोई जीत नहीं पाया। कई बार उसके सीनियर्स भी उससे सलाह लेते थे, पर पी. का व्यवहार उनसे टू द पाइण्ट का ही रहा।

"कॉम्प्लिकेटेड मेटर है। पी. कैसे डील करें?"

"डिसीज़न आप को लेना है सर। आप तय करें।"

"फिर भी..."

"फिर भी क्या ?"

"एक नज़र डाल लो यार।"

"सर! स्पष्ट प्रोसिज़र है। आप तक फाइल आ गई है तो..." पी. का मानना था, जो दायरा उनका है, उन्हें डिसीज़न लेना चाहिए। जो जिस कुर्सी पर बैठा है, वह अपनी ज़िम्मेदारी निबाहे। सीनियर ऑफ़िस का डेकोरम तोड़कर अपनेपन पर आ गया।

"यार, तुम ओके कर दोगे तो मैं बेफिक्र हो

कर साइन कर दूँगा।" बॉस की यारी से पी. पिघल गया। -"सर! एक बार क्लॉज-4 सेक्शन 13 पर नज़र डाल लें। आभार की नज़रों से सीनियर ने पी. को देखा। फिर कहा- "आई फील, तुम्हारा नाम पुरुषोत्तम नहीं, गिरधारी होना था। यही तुम्हें ज़्यादा सूट करता।" बात समझने में थोड़ा वक़्त लगा पर यह समझ गया। बोला, "सर! पोएट्री समझ में नहीं आती है मुझे। उसमें इंट्रेस्ट भी नहीं है। शायद पोएट को कृष्ण का चेहरा ज़्यादा सूट करता रहा है। मैंने एक चित्र में देखा, उस पहाड़ के नीचे जितने थे, सभी गिरधारी थे। एनीवे हमारे दफ्तर में अपनी हैसियत के अनुरूप सभी गिरधारी हैं। मैं वैसा हीरो नहीं हूँ। मैं पी. ही अच्छा हूँ। मैं चलूँ ?"

सीनियर की आँखों में आभार कुछ ज़्यादा ही गाढ़ा हो गया था। उसने देखा-फाइल में क्लॉज-4 सेक्शन 13 के नीचे पेंसिल से हल्का सा क्वेश्चन मार्क लगा था।

***

आज दफ्तर का माहौल कल से अलग था। यह महौल तो कल से बदलना है। दफ्तर में पी. का आज आख़री दिन है। कल से उसकी सीट पर कोई और बैठा करेगा। चाहे आख़री दिन हो, पी. पूरे मनोयोग से अपने काम में लगा रहा। घड़ी के काँटो पर नहीं, खुली फॉइल पर उसकी नज़र रही। इसी नशे में उसने पूरी नौकरी की। कल की शुरूआत कैसे होगी, उसने नहीं सोचा। घड़ी ने घोषणा की- हो गया, बस करो। अब तुम मुक्त हुए। पी. ने फॉइल परे सरका दी और पानी पिया। -अब?

उसी दफ्तर में अब अलग माहौल था। सबके चेहरे तनाव मुक्त थे। पी. पहले भी कई स्वागत और विदाई-जलसों में शरीक होता रहा पर इतना टेंस कभी नहीं रहा। यह सब उसे नाटक लगता है। आज का नाटक उसी के इर्द गिर्द था। सारी औपचारिक रस्में जारी थीं। पी. शामिल था और नहीं भी था। उसे लगा, जो कुछ उसके बारे में कहा जा रहा है, सब झूठ और अविश्वसनीय है। उसने चाहा-यह नाटक अब ख़त्म हो। तभी उसने सुना,-

"मैं प्रार्थना करता हूँ हमारे परम प्रिय और सबके आदरणीय श्रद्धेय पी. सर से जो आज हमसे विदा ले रहे हैं। वे अब अपने अनुभवों को साझा करें। कल से यह दफ्तर आपके बिना सूना लगेगा। हमारी ग़लतियों पर उँगली रखनेवाला, हमें सुधारनेवाला व्यक्ति हमारे मार्गदर्शन के लिए उपलब्ध नहीं रहेगा। पी. सर के होने से हम सब बेफ़िक्र रहे। अच्छा काम करने के लिए कितने एफर्ट्स लगाने पड़ते हैं, पी. सर इसकी मिसाल हैं। आइए पी. सर।"

पी. अनमने भाव से उठा। क्षणभर को सोचा, कहाँ से शुरू करें और कैसे शुरू करे। फिर..

"दोस्तो ! मुझे भाषण देना नहीं आता। दूसरी दिक्कत यह है कि मुझे मन की बात छुपाना भी नहीं आता। अभी आप लोगों ने मेरे बारे में जो-जो अच्छी बातें कहीं, वे तो मुझमें है ही नहीं। मैं सचमुच ख़ुश होता यदि आप कड़वी, पर सही बात कहते। सही बात कहने की हिम्मत होनी चाहिए। एक बात तो सच होनी थी पर नहीं कही गई। सब को पता है, सच कहना और सच सुनना मुझे पसंद कोई तो इतनी दिलेरी दिखाता...। चलिए उन सारी अच्छी बातों के लिए आपका आभार। शुक्रिया...दोस्तो! मुझे पता है, आप लोग मुझे-"खड़ूस" कहते हैं। मैं बहुत परेशान रहा कि "खड़ूस" का मतलब क्या होता है। मैंने लोगों से पूछा, पर वे बतला नहीं पाए। डिक्शनरी में खोजा पर यह शब्द नहीं मिला ! आप से मैं पूछ नहीं सकता था। मुझे विश्वास

था, मेरी पत्नी ज़रूर जानती होगी, पर वह भी चकराई ! उसने "गूगल" पर सर्च किया। वहाँ इस शब्द के अर्थ से ज़्यादा व्याख्या मिली। मैंने कहा- मुझे व्याख्या नहीं, प्रापर मीनिंग चाहिए। वह चुप हो गई। पर मन में चलता रहा उसके। फिर एक दिन बोली एक शब्द सूझा है-"खड़ूस" का विकल्प- "रूड"। सच मानिए, इस शब्द ने मुझ से मेरी सही पहचान करवा दी। "पुरूषोत्तम"- यानी "पी."। पी. यानी "खड़ूस"। "खड़ूस" यानी "रूड"। इस शब्द ने मुझे आईने के सामने खड़ा कर दिया। आपने हिम्मत की आईना दिखाने के लिए। आपका आभार। आपका शुक्रिया।

चलिए, कल से आप इस "खड़ूस" से फ्री हो जाएँगे, आपको बधाई। शुभकामना। मैं कुछ भी बोला अनर्गल ही बोला। कटु भी बोला थोड़ा। मुझे माफ कर दें। धन्यवाद।

यह औपचारिकता भी पूरी हुई। पी. ने राहत की साँस ली।

***

हार-फूलों से लदा पी. घर आ गया। चेहरे पर न ख़ुशी थी न अवसाद। सुदेशना ने ख़ुश दिखने की हर तरह से पूरी कोशिश की। सजी-सँवरी भी और लोक दिखाने के लिए पी. की आरती उतारी। घर पर जमा हुए लोगों का मुँह मीठा करवाया गया। सुदेशना के लिए यह औपचारिकता के निर्वाह से ज़्यादा नहीं था। घर में जाने से कल पता चलेगा घर में माहौल कैसा रहेगा। कल को लेकर पी. भी यही सब कुछ सोच रहा था। पी. का व्यवहार ही सब तय करेगा।

"चाय मिलेगी? दफ्तर में फालतू की फ़ॉर्मेलिटीज़ में मैं थक गया।"

"थक गया"। ग़लत वाक्य निकल गया पी. से पर यह कोई नोटशीट तो थी नहीं जो दुबारा तैयार हो जाती। आगे से ऐसी ग़लतियाँ अक्षम्य होंगी उसने तय किया। फरमाइश तो चाय की ही थी पर साथ में बहुत कुछ था।

"थेंक्स" यह बहुत औपचारिक प्रतिक्रिया थी।

सुदेशना के चेहरे पर भी वैसी ही औपचारिक मुस्कान बिखरी।

***

(नोट-दोस्तों, हमने अभी तक पी. को जितना जाना, उतने से तो एक ठीक-ठाक कहानी बनना मुश्किल है। काम के लिए जुनून था उसमें पर और मामलों में वह व्यवहार शून्य था। दफ्तर में और दफ्तर के बाहर उसका अपना कोई नहीं था। "खड़ूस" था इसलिए किसी लफड़े की सँभावना नहीं थी। जो उससे चिढ़ते थे, उन्होंने उसे गिराने और नीचा दिखाने में कोई कसर नहीं छोड़ी पर वे कामयाब नहीं हुए। वह किसी के हत्थे नहीं चढ़ा। अब तो वह ज़िम्मेदारियों से मुक्त है। देखते हैं घर में कहानी के लिए गुंजाइश बने। पाठक ! ऐसे हस्तक्षेप आगे भी आ सकते हैं।)

***

पी. घर आ गया तो उसकी टाई की नॉट जो घर में भी ढीली नहीं होती थी अब उसके बँधने की नौबत नहीं आती थी। इस तरह वह ख़ुद अपने लिए ही बेगाना हो गया। पहले सोचा था, दफ्तर के लोग उससे मशविरा लेने आएँगे या ऑफ़िस पुकार होती रहेगी। पर उसे जल्दी समझ में आ गया किसी के न होने से काम नहीं रुकते और कुर्सी पर बैठते ही लोगों को समझदारी आ जाती है। वह चाहता तो दो सालों के लिए दफ्तर में एक्सटेंशन पा लेना मुश्किल नहीं था, पर रिटायरमेंट के बाद अपने सहकर्मियों के बीच कितनी इज़्ज़त रह जानी है, उसे पता था और स्वाभिमान से बढ़कर उसके लिए कुछ भी नहीं था।

बच्चे व्यस्त हो गए थे। छोटा विदेश जाने की जुगत में था। बस कुछ दिनों की बात थी। उसके सपने बड़े थे और सपनों को वास्तविकता में बदलने का हुनर उसे आता था। वह नई सदी का स्मार्ट युवा था। बस कुछ दिनों की बात है वह सबसे टाटा-टाटा, बाय-बाय कर लेगा। बड़ा अपनी गृहस्थी में मगन थ। उसकी पत्नी को यह घर छोटा लगता था। वह इस घर से बाहर निकलना चाहती थी। अपना घर, उस घर पर अपना राज, अपनी स्वतंत्रता। वह जो कुछ चाहती थी, इस घर से अलग हो कर ही पा सकती थी। यही घर-घर की कहानी थी। अपना आकाश पा लेना उसके लिए कठिन नहीं था। सुदेशना की चिंता अपनी बेटी को लेकर ज़्यादा थी। चिंता का दायरा व्यापक था। नई पीढ़ी के लिए आज़ादी के अर्थ बिलकुल अलग। सुदेशना ने पी. से बात करने की कई बार कोशिश की पर उससे बात करने से कोई नतीजा नहीं निकलना था। वह सोचने लगा था, एक्सटेंशन ले लेना ही बेहतर होता। सुदेशना का रक्तचाप बढ़ा रहने लगा था।

***

"मेरा सुन्दर सपना बीत गया।" पी. को इन दिनों ऐसा ही कुछ लगता था। सुदेशना से कुछ छुपा नहीं था। वर्षों का साथ था दोनों का। पति की छोटी से छोटी हरकत को वह भाँप लेती थी। यह गुण हर स्त्री में होता है। पी. यों ही चुप्प था। भावुक तो था ही नहीं। सुदेशना उसके चुप्पेपन से को देख, पूछती-

"बहुत गुमसुम हो, क्या बात है?"

"कुछ नहीं, बस..."

"कुछ भी नहीं ?"

"कुछ सूझता ही नहीं।"

"रहते कहाँ हो घर में। घर को देखते तो सूझता।"

"पर मैं तो हूँ। यहाँ नहीं हूँ तो कहाँ हूँ?"

"यह मुझे क्या पता।"

पी. बहुत निरीह और लाचार लगा। सुदेशना को बातचीत का मुद्दा बदलना ही बेहतर विकल्प लगा। अपनी चिंता को ओट देकर उसने पूछा-

"कॉफी पीते हैं। बनाऊँ?"

"कॉफी?"

"बहुत गंभीर प्रस्ताव नहीं था यह। बस पूछ लिया। मन न हो तो छोड़ो।"

"चलो बना लो। अच्छा ही लगेगा कॉफी पीना।"

सुदेशना उठने लगी तो पी. ने कहा- "टीवी बंद करती जाना। ख़बरों में कुछ नहीं होता- बकवास" टीवी. बंद कर पति को सन्नाटे में छोड़ वह कॉफी बनाने चली गई तो पी. ने फिर सोचा-टेलीविज़न का स्विच ऑफ करवा कर ठीक नहीं किया। शायद कोई अच्छी फिल्म आ रही हो। उसको नए ढँग की फिल्में समझ में नहीं आती है और आज का गीत संगीत तो...। - "चलो" क्यों कहा? पता नहीं। सुदेशना कॉफी बनाकर ले आई।

"गर्मी नहीं लग रही ?"

"हाँ, गर्मी तो है।"

"कैसे हो तुम? गरमी लग रही है तो ए.सी. क्यों नहीं चला लिया?"

"हाँ..."

"हाँ... क्या? अच्छा छोड़ो, कॉफी कैसी बनी?"

"अच्छी।"

"सिर्फ अच्छी ?" कोशिशों के बावजूद बात आगे नहीं बढ़ी तो नहीं ही बढ़ी।

***

सुदेशना आज पी. को डॉक्टर के पास ले गई।

"क्या बात है मिसेज़ त्रिपाठी, एनी प्राब्लम?"

"मैं तो ठीक ही हूँ डॉक्टर साहब। इन्हें चेक कर लीजिए।"

"आइए त्रिपाठी जी आप को चेक कर लें।"

"हाँ ज़रूर चेक कर लीजिए। मिसेज़ को तसल्ली हो जाएगी।"

डॉक्टर ने ब्लड प्रेशर चेक किया। ई.सी.जी. ले लिया और रूटीन चेक कर कहा बीच-बीच में वे पी. से बातें करते रहे फिर सुदेशना से मुख़ातिब हुए -"यों तो ये ठीक लग रहे हैं। उम्र के लिहाज़ से। फिर भी कुछ टेस्ट लिख रहा हूँ। ये करवा कर रिपोर्ट लेकर आ जाएँ फिर तय करते हैं। फिर पी. से बोले- "आप बिलकुल ठीक हैं।"

पी. ने आज तय कर लिया था कि आज उस से जो-जो कहा जाएगा, करेगा। एक बार बीवी के मन की हो जाए। जो कहा गया उसके लिए राज़ी हो गया! शायद उसमें प्रतिरोध की क्षमता समाप्त हो गई थी। घर में दो लोग हों और सन्नाटा पसरा हो तो किसी का परेशान होना स्वाभाविक है। पी. का यों चुप हो जाना और भी दारुण लगता था। उम्र तो सुदेशना की भी हो चली है, पर अभी तो पी. की चिंता उसे घेरे हैं।

रिपोर्ट मिल गई। डॉक्टर ने देख ली। शक है, कोई बड़ी प्रॉब्लम सामने नहीं आई। कुछ सपोर्टिंग दवाइयाँ लिखी गईं। दवाइयाँ यों भी तसल्ली देती हैं। डॉक्टर ने इतना ज़रूर कहा-

"मिसेस त्रिपाठी ! इन्हें व्यस्त रखिए। खालीपन सौ परेशानियों की वजह हो जाता है। इस एज में लोग ईश्वर में सुकून खोज लेते हैं पर इन्हें उस पर भरोसा नहीं है। ये जो कर सकते हैं, इन्हें वही करने के लिए प्रेरित करें।... फिर भी ज़रूरी लगे तो इन्हें मेरे पास ले आएँ।"

***

(नोट- कहानी थोड़ी आगे ज़रूर बढ़ी पर कितनी ? पहले पी. सक्रिय था तो दफ्तर में लीड करता था। अब सारे सूत्र सुदेशना के हाथों में हैं। लगता है, कहानी फैल ज़्यादा रही है। कैसे समेटे ? कैसे समाप्त करना है, दिमाग़ में तो है पर चुनौती यह है कि वही समापन कागज़ पर उतर आए। देखता हूँ।)

विदेश में बसा बेटा सप्ताहान्त में अपने बूढ़े माता-पिता को फ़ोन ज़रूर करता है। वह यह कहना भी नहीं भूलता कि- "वहाँ आप कोई तकलीफ़ मत उठाना। यहीं से सारी व्यवस्था हो जाएगी।" मन में सवाल उठता है कइयों को "व्यवस्था" का मतलब? "आर्थिक रूप से हमें कोई मदद नहीं चाहिए। वह पायाँ हमारा मज़बूत है। उम्र ने हमें अब थका दिया है। हिम्मत टूट गई है। पास-पड़ोस के लोग कहते हैं- "हमें अब तुम्हारे पास शिफ्ट हो जाना चाहिए।" समय ख़राब चल रहा है। कुछ लोगों की नज़र घर पर है। होता है मन में बहुत कुछ, पर हम कहते हैं- "तू फिक्र मत कर। पास-पड़ोस के लोग पूरा ध्यान रखते हैं। इनके बीच हमारा मन लगा रहता है। इस उम्र में कहीं एड्जेस्ट करना मुश्किल होता है।"

विदेश में बसे बेटे का फ़ोन -"मम्मा ! प्रणाम।"

"तुम्हारा फ़ोन आने से पहले ही मैं फ़ोन के पास आ बैठती हूँ। कैसे हो गुड्डू?"

"अच्छा हूँ। और कुछ नया ?"

"नया क्या है। चल रहा है। तुम्हारे पापा की हालत गिरती जा रही है लगातार। बस"

"डॉक्टर क्या कहता है ?"

"जितना हो सके बिज़ी रखो। वही रटा-रटाया वाक्य। वह भी क्या करें, उम्र से लाचार है। ज़िद्दी तो शुरू से रहे, अब चिड़चिड़े भी हो गए हैं।"

"आप मेरे पास होते तो बेहतर होता। आप फिर सोचो।"

"वहाँ तुम्हारी तकलीफ़ और बढ़ जाएगी। मैं वहाँ तो कुछ नहीं कर पाऊँगी। यहाँ पड़ोसी मदद करने को तैयार रहते हैं। वहाँ ऐसा नहीं है। और तो और मैं भी वहाँ बोझ हो जाऊँगी जैसा चल रहा है, चलने दे। यों कोई देखे तो अच्छे भले ही लगेंगे, पर भूलते जा रहे हैं सब कुछ। वह भी कम परेशान नहीं होते। दया आती है, पर क्या करें ?"

"चलो, मैं आता हूँ- पापा को अच्छा लगेगा। आपकी मदद हो जाएगी।"

"कितने दिनों के लिए ? गुड्डू, यह कोई सप्ताह या महीने भर की समस्या तो है नहीं। तू अपना काम देख। जैसे चल रहा है, चलने दे। तुझ से बात कर के मन हल्का हो जाता है। अपने काम पर ध्यान दे।"

"भैया का फ़ोन आता है?"

"हाँ।"

"हाँ का क्या मतलब ?

"आ जाता है।"

"अपना ध्यान रखो मम्मा।"

"आज काफी लम्बी बात हो गई। अब रख।"

"प्रणाम।"

"ख़ुश रहो।"

न गुड्डू से शिकायत है और न बड़े से। वह सोचती- पँख तो हमारे पास भी थे। उड़ना भी आता था। एक घोंसले से उड़े और दूसरे शहर में घोंसला बना लिया! भूल गई कि मेरे

भी पँख हैं। अब तो उड़ने की कूबत भी ख़त्म हो गई। एक घर के अनुशासन से बाहर आए तो यहाँ और जकड़ गए। अब सबके पास पँख हैं। खुला आकाश है। उड़ने की आज़ादी है।

***

पी. कभी-कभी नार्मल लगता है। सुदेशना ख़ुश हो जाती है। आज ऐसा ही दिन है। पी. ने कहा-"आओ। बैठो।"

"कोई ख़ास बात।"

"तुम आस-पास होती हो तो अच्छा लगता है।"

हाथ का काम छोड़ सुदेशना, पी. के पास बैठ गई। पी. ख़ुश हो गया।

"बोलो।"

"बस बैठी रहो।"

"घर के काम? वह सब कौन करेगा? तुम तो मदद करते नहीं मेरी।"

"बस थोड़ा और ठीक हो जाऊँ, ज़रूर मदद करूँगा। ख़ूब किया तुमने।"

सुदेशना निहाल हो गई। एक लंबी चुप्पी के बाद पी. बोला- "हम अपना घर नहीं बेचेंगे।"

"कौन-सा घर ???"

"अपना। गाँव..."

***

बड़ा बेटा इन दिनों घर पर है। पी. को लेकर आज वह डॉक्टर के पास गया। लौटा तो सुदेशना ने पूछा- "क्या बात हुई? कुछ नया?"

"दवा बदली है। ब्रांड बदला होगा और क्या ? कहता है- यह तो ट्रॉय एण्ड होप वाला केस है। हो जाए तो ठीक, न हो तो नया कुछ सोचते रहो। परीक्षा उनकी नहीं, आपकी है। "चमत्कार" ऐसा शब्द है, जो निराश नहीं होने देता है। हमारी भी कोशिश जारी है।"

(नोट- पाठक! कहानीकार की भी यह कोशिश है कि कहानी पाठक की उम्मीदों पर खरी उतरे। आप इस कहानी का अंत कैसा चाहते हैं? एक अंत तो मेरे दिमाग़ में भी है, जो आपको बुरी तरह चौंकाएगा। ...दूर नहीं है कहानी का समापन। बस थोड़ा धैर्य और...)

***

बड़ा बेटा और पी. आमने-सामने हैं। है तो सुदेशना भी वहाँ, पर वह वहाँ केवल है। बड़े को एक ख़याल उपजा शुद्ध उसके दिमाग़ की उपज। देखें क्या होता है ? माँ को ख़ास उम्मीद नहीं फिर भी...। एक तीर-तुक्का ही सही। बेटे ने कहा- "पापा ! एक प्रपोज़ल है। अपने संस्मरण लिखें। "अपनी नौकरी के अनुभव।" ऐसी किताबें ख़ूब बिकती हैं। पैसा भी मिलता है। लिखेंगे ?" "प्रपोज़ल" "और" "संस्मरण" उन्हें समझ में नहीं आए। पी. के चेहरे पर निरीह बेचारगी झलकी। बड़े ने कहा "छोड़िए, कोई बात नहीं।" और उन्हें अकेला छोड़ दिया। पी. का तनाव कम नहीं हुआ।

शाम को चाय पर सब इकट्ठा हुए तो पी. के चेहरे पर चमक थी। - "मैं लिखूँगा।" "संस्मरण" वह लाख कोशिश के बाद भी बोल नहीं पाया। ... फिर किसी तरह उच्चारा- "अनुभव।"

***

बड़े ने एक दिन कहा- "मैं जाऊँ माँ ?"

किसी गहरी डूब से आवाज़ आई-"हाँ।"

सुदेशना और पी. फिर अकेले हो गए।

***

"घर नहीं बेचना। जाइए आप।"

"किसका घर?"

"मेरा।"

"मैं कौन हूँ बताओ।"

"आप जाइए..."

सुदेशना शॉक्ड रह गई। पी. पहचान नहीं पाया।

एक दिन सुदेशना को एक कागज़ थमाया। एक झोपड़ी बनी थी। नीचे लिखा था-"नहीं बेचना।"

फिर एक दिन एक और कागज़ थमाया टूटी-फूटी लिखावट में लिखा था-"अनुभ" "व" लिखा नहीं गया। नीचे लिखा था- "कुछ हासिल नहीं हुआ।" यही था ज़िंदगी और नौकरी का सार। सुदेशना की आँखें भींग गई। -यही सच था। उसके जीवन का सार।

"अब मैं सोऊँगा।"

***

(नोट- पाठक! सच तो यह है, पी. ने न तो पहले कभी अपने गाँव का जिक्र किया, न किसी घर का। क्या इस घर में रहते हुए वह किसी और ख़याली घर में रह रहा था ?)

000

लेखकों से अनुरोध

'विभोम-स्वर' में सभी लेखकों का स्वागत है। अपनी मौलिक, अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी। रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा। बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फ़ाइल अथवा वर्ड की फ़ाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीऍफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें, इस प्रकार की रचनाएँ विचार में नहीं ली जाएँगी। रचनाओं की साफ़्ट कॉपी ही ईमेल के द्वारा भेजें, डाक द्वारा हार्ड कॉपी नहीं भेजें, उसे प्रकाशित करना अथवा आपको वापस कर पाना हमारे लिए संभव नहीं होगा। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ईमेल आदि लिखा होना ज़रूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। पुस्तक समीक्षाओं का स्वागत है, समीक्षाएँ अधिक लम्बी नहीं हों, सारगर्भित हों। समीक्षाओं के साथ पुस्तक के कवर का चित्र, लेखक का चित्र तथा प्रकाशन संबंधी आवश्यक जानकारियाँ भी अवश्य भेजें। एक अंक में आपकी किसी भी विधा की रचना (समीक्षा के अलावा) यदि प्रकाशित हो चुकी है तो अगली रचना के लिए तीन अंकों की प्रतीक्षा करें। एक बार में अपनी एक ही विधा की रचना भेजें, एक साथ कई विधाओं में अपनी रचनाएँ न भेजें। रचनाएँ भेजने से पूर्व एक बार पत्रिका में प्रकाशित हो रही रचनाओं को अवश्य देखें। रचना भेजने के बाद स्वीकृति हेतु प्रतीक्षा करें, बार-बार ईमेल नहीं करें, चूँकि पत्रिका त्रैमासिक है अत: कई बार किसी रचना को स्वीकृत करने तथा उसे किसी अंक में प्रकाशित करने के बीच कुछ अंतराल हो सकता है।

धन्यवाद

संपादक

vibhom.swar@gmail.com

गुनगुनी धूप

रमेश खत्री

चार सालों के बाद इस शहर में ट्रांसफर हुआ तो लगा, जैसे अपनी प्रेमिका से मिलने वापस आ गया हूँ। इस शहर को मैंने टूटकर चाहा है; क्योंकि यही वो शहर है जिसमें मैंने अपने लिए अपनी तरह के आसमान की खोज की थी। इसी शहर ने मुझे वह सब दिया, जिसके लिए आदमी इधर से उधर मारा-मारा फिरता है। इस शहर की चौड़ी सड़कों पर घूमते हुए मुझे कभी वितृष्णा नहीं हुई बल्कि हमेशा ही अपनेपन से भरा रहा। एक दूसरे को शतरंज के बिसात की तरह काटती हुई सड़कें, चौपड़ों पर लोगों की आवाजाही। फल और सब्ज़ी के ठेलों की इफरात और उन पर लोगों की भीड़ हमेशा मुझे अपनेपन से भर देती। छोटी चौपड़ पर खड़े होकर यही सब देर तक देखते हुए अपनेपन से भर गया हूँ।

सड़क के दूसरी तरफ महारानी गर्ल्स सीनियर सेकेंडरी स्कूल से बाहर निकलती लड़कियों की आवाज़ें कोयल के स्वर सी माहौल को सराबोर कर रही हैं। स्कूल की अभी छुट्टी हुई तो लड़कियाँ चिड़ियों के झुंड सी चहचहाती आवाज़ में स्कूल से बाहर निकल रही है। उनकी आँखों में पलते मरमरी सपनों की आँच दूर तक फैल रही है, ऐसा लग रहा है मानों सुबह की कोमल और सुनहरी धूप चारों ओर फैल रही हो।

कुछ देर यूँ ही खड़े रहने के बाद वहाँ चल पड़ा चाँदपोल की तरफ। सड़क के दोनों तरफ दुकानें सजी है। सभी तरह की दुकानें और उन पर खरीददारी करते हुए लोगों की भीड़; जिनमें महिलाओं की संख्या ख़ूब ज़्यादा। बस तभी मन में एक ख़याल यूँ ही चला आया, 'औरतें इतनी ख़रीदारी क्यों करती है ? और किसके लिए ?' इस ख़याल के साथ ही आँखों में अजीब तरह की चमक आ गई। तभी एक दूसरा ख़याल आ गया, 'औरतों को खर्च करने में शायद ज़्यादा आनंद आता है तभी तो इतनी ख़रीदारी करती रहती हैं।' इस विचार ने एक अजीब तरह की अनुभूति से भर दिया। तो सोचने लगा, 'यह भी शायद मार्केटिंग की स्ट्रेटेजी का ही परिणाम हो ; विज्ञापन की दुनिया ने दृश्य माध्यमों पर नारी की ख़ूबसूरती को बहुत अच्छे से भुनाया है। और साथ ही घरेलू महिलाओं को उनके उत्पाद खरीदने के लिए उकसाया भी है। जिसके चलते पूरा का पूरा बाज़ार औरतों की उपस्थिति से खिलखिला रहा है।'

यह सोचते हुए आगे बढ़ गया। बाईं तरफ ख़जाने वालों का रास्ता है। इस रास्ते में कपड़ों की सैकड़ों दुकानें सजी है। इन दुकानों पर भी महिलाओं की भीड़ इस कदर टूटी पड़ रही है मानों कपड़े मुफ्त में ही बाँटे जा रहे हो। तुरंत ही यह सवाल मन में आया, 'क्या कोई त्यौहार आने वाला है इन दिनों ? जो दुकानों पर इतनी भीड़ जमा है ?' इस सवाल का उत्तर देने के लिए दिमाग़ पर ज़ोर देने लगा। पर काफी ज़ोर आजमाइश के बाद भी कोई ऐसा त्यौहार आस-पास खोज नहीं पाया। जिसके लिए कपड़ों की इतनी ख़रीदारी की जा रही हो। तभी चेहरे पर हँसी इस विचार के साथ आई, 'अरे महिलाओं के तो बारह महीने ही त्योहारों से भरे हुए हैं। इनके लिए किसी तरह के बार त्यौहार की ज़रूरत थोड़े ही होती है। इन्हें तो बस ख़रीदारी का बहाना और मौका मिलना चाहिए।' इस विचार से चेहरे पर अजीब तरह की मुस्कान पसर गई। अचानक ही मुस्कराते हुए देख कर साथ चल रही महिला अजीब तरह से देखने लगी तो झेंप गया। और पुन: अपने में सिमट गया।

वह मुझे देखते हुए आगे बढ़ गई और फिर वह भी किसी दुकान में समा गई। तो मैं भी वहाँ से आगे आ गया। चाँदपोल पर फूल माला और प्रसाद सामग्री बेचने वालों की छोटी-छोटी दुकानें लगी हुई है। जिन पर भी लोगों की भीड़ जमा है। उनके दाँई तरफ हनुमान जी का प्राचीन और प्रसिद्ध मंदिर है। इस मंदिर की गुणगाथा तो यहाँ के लोकगीतों में भी भरी पड़ी है, 'साँगानेर को साँगो बाबो, जयपुर को हनुमान.....।' मैं अपने दिमाग़ पर ज़ोर देकर और भी लोकगीतों को टटोलने लगा कि बस तभी लोगों की जमा भीड़ पर मेरा ध्यान केन्द्रित हो गया।

कुछ देर तक मंदिर के पास खड़ा रहा और लोगों को आते-जाते हुए देखता रहा। बस तभी

रमेश खत्री
53 /17, प्रतापनगर, सांगानेर, जयपुर
302033
मोबाइल- 9414373188
ईमेल- sahityadarshan@gmail.com

एक आदमी मुझे ठेलता हुआ तेज़ी से मंदिर में चला गया। उसके साथ ही मेरा ध्यान भंग हुआ और मेरी नज़रें मंदिर में प्रवेश कर गई। सोचने लगा, 'शायद यह कुछ ज़्यादा ही परेशान होगा, इसीलिए जल्दी में है। जल्दी ही अपनी परेशानियों के हल के लिए प्रार्थना करना चाहता होगा। या फिर न जाने किस-किस के लिए न जाने क्या-क्या भगवान् से माँगना चाहता होगा।' इस विचार के आते ही हँसी आ गई। और मैं मंदिर में जाते हुए लोगों के चेहरे की तरफ देखने लगा। वहाँ अजीब तरह की विनम्रता का भाव पसरा हुआ था। अभी जो मुझे ठेलते हुए मंदिर में गया था वो भी हनुमान जी की मूर्ति के सामने साष्टांग लेटा हआ था। मैं सोचने लगा, 'भक्ति का भाव ही आदमी को कितना विनम्र बना देता है। क्या इसी तरह के भाव का विस्तार नहीं हो सकता ? ताकि आदमी ताउम्र विनम्र बना रह सके। जबकि वास्तव में ऐसा होता नहीं है। बाकी समय तो आदमी न जाने किस-किस बात पर अकड़ा रहता है। और वही अकड़ उसे ज़िद्दी बनाती जाती है।'

पास बैठा फूल-माला बेचने वाला बुज़ुर्ग मुझे देखते हुए अजीब तरह से मुस्करा दिया। जब हम दोनों की नज़रें मिली तो फिर मैं अपने में वापस लौट आया। और सड़क पार करने लगा। बस तभी वो बोला, "बाबूजी ! यहाँ तक आ ही गए हो तो कम से कम दर्शन तो कर ही लो.....कुछ तो पुण्य मिलेगा ही।"

मैं कुछ भी नहीं बोला, उसकी तरफ देखते हुए हल्के से मुस्करा दिया। और सड़क पार करके चाँदपोल के दूसरे कोने पर आ गया कि बस तभी मंदिर के पास ज़ोर का धमाका हुआ। इस धमाके से सभी हतप्रभ रह गए। कोई भी नहीं समझ पाया कि आख़िर हुआ क्या है! धमाके के साथ ही लोग इधर-उधर भागने लगे। उनको भागते हुए देखकर मैं भी सुरक्षित जगह की तरफ लपका; पर समझ नहीं पाया कि 'भगवान् के मंदिर के अलावा सुरक्षित जगह और कौन सी होगी ? कहते हैं कि ईश्वर का घर और उसके आस-पास की जगह ही सबसे सुरक्षित होती है। और फिर वहाँ पर ही इस तरह की दुर्घटनाएँ घटती है तो फिर दूसरी सुरक्षित जगह और कौन सी होगी ?' इस विचार ने मुझे अन्दर तक हिला दिया। यहाँ से सभी लोग तेज़ी से निकल जाना चाहते थे। धमाके के साथ ही अफरा-तफरी मच गई। मैंने सड़क के उस पार मंदिर की ओर देखा, वहाँ कई लोग घायल पड़े हुए थे। अभी थोड़ी देर पहले मंदिर के सामने बैठा हुआ फूल माला बेचने वाला बुज़ुर्ग जो मुझे देखकर हँस रहा था, वह भी मूर्च्छित सा ज़मीन पर पड़ा हुआ था और जो मुझे ठेलता हुआ मंदिर में गया था, वह भी ज़मीन पर पड़ा हुआ था। इसके अलावा भी न जाने कितने लोग थे जिनकी गिनती भी नहीं की जा सकती। इस दृश्य को देखकर मेरा मन वितृष्णा से भर गया।

तभी मैंने देखा कुछ लोग मदद के लिए आगे आ गए हैं। मैं भी उनके साथ लपक लिया। जिस तरह से मेरे मन में आशंका थी ठीक उसी तरह उनके मन में भी इसके बादल मंडरा रहे होंगे, 'यह जो धमाका हुआ है, अब और न हो जाए। भगवान् जाने अब और न जाने क्या होने वाला है ?' कुछ लोगों ने अपनी गाड़ी घायलों को अस्पताल पहुँचाने के लिए खड़ी कर दी थी। हम घायलों को उन गाड़ियों में उठाकर लिटा रहे थे। लोग गाड़ियाँ लेकर एस.एम.एस. की ओर लपक लिये। हम लगातार लोगों को गाड़ियों में लिटाते रहे।

एक अजीब तरह की वितृष्णा मन में होने लगी, और यह विचार भी घर करने लगा, 'इस ख़ौफ़नाक मंज़र को अंजाम देने वाले आख़िर कौन लोग होंगे ? क्या उनके मन में ज़रा भी मानवीयता नहीं बची, जो इस तरह की घटना को अंजाम दे दिया। आज के समय में लोग कितने क्रूर हो गए है ?' इस विचार के साथ ही अपने आस-पास देखने लगा। पर यहाँ तो लोग एक दूसरे की मदद में जी जान से जुटे हुए हैं। बस तभी मन में एक दूसरा विचार कौंधा, 'वो कौन लोग हैं जो इस तरह की क्रूरता करते हैं ? आतंक फैलाते हैं और आतंक का कारोबार करते हैं। क्या वे लोग भी हमारे अपने हैं और हमारे ही बीच के हैं ? या फिर वो किसी और ही मिट्टी के बने हैं किसी और देश के हैं ?' यह विचार मुझे अंदर तक हिला गया।

बस तभी किसी ने मेरे कंधे पर हाथ रखते हुए कहा, "अरे बोस ! तुम यहाँ हो.....?"

इस आवाज़ के साथ ही मैंने पलटकर पीछे देखा, लोकेश मेरे पीछे खड़ा था। मैं उसे देखते ही मुस्करा दिया, "तुम यहाँ पर क्या कर रहे हो लोकेश.....?"

"बोस ! मैं तो वैसे ही इधर से निकल रहा था ; बस तभी यह हादसा हो गया तो यहीं रुक कर लोगों की मदद करने लगा। और तुम कब आए.....और यहाँ कैसे पहुँचे ?"

"बस ऐसे ही...मेरा फिर से इसी शहर में ट्रांसफर हो गया है न....तो मैं भी यूँ ही चला आया था। बस तभी यह सब हो गया...!"

"हाँ बोस ! यह तो आज पूरे जयपुर में ही हो गया ? बताते हैं कि दो तीन जगह और भी ऐसे ही हादसे हुए हैं।" बोलते हुए वो गंभीर हो गया।

मैंने देखा इस समय उसकी आँखों में वह चमक नहीं थी जो अक्सर हुआ करती है। इस समय उसकी आँखें बुझी-बुझी लग रही थी। मैं समझ नहीं पाया, 'इस हादसे की पीड़ा से वह बुझा हुआ दिख रहा था या कि कोई और ही कारण था।'

लोकेश में मेरी मुलाकात लगभग चार सालों के बाद हुई थी। पिछली बार मेरी पोस्टिंग जब इस शहर में थी उस समय भी हमारी पहली मुलाकात अजीब सी परिस्थितियों में हुई थी। फिर वह मुलाकात ही गहरी दोस्ती में तब्दील हो गई। और फिर न जाने क्या-क्या हुआ, आज उस सबको याद भी नहीं करना चाहता। किन्तु आज भी लोकेश से मुलाकात विचित्र परिस्थितियों में ही हुई। एक बार तो मेरे मन में आया भी कि पूछूँ, 'क्या तू हमेशा ही विपरीत परिस्थितियों में ही मिलता है ?' लेकिन मैं कुछ भी बोल नहीं पाया, मेरे मन की बात मन में ही रह गई। बस गहरी नज़रों से उसे देखता रहा। इस समय वह भी मुझे वैसे ही देख रहा था। तभी मैंने कहा, "लोकेश ! यहाँ से हमें तुरंत निकलना चाहिए....हालात अच्छे नहीं लग रहे हैं।"

"बोस ! मैं भी यही कहने वाला था। जैसे तुमने तो मेरे मुँह की बात ही छीन ली ?" तभी उसने अपने स्कूटर पर मुझे बैठाया और हम

वहाँ से चल दिये।

मैंने स्कूटर के पीछे बैठे हुए ही पूछा, "कैसे हो भाई लोकेश ?"

उसके सिर पर हेलमेट लगा होने के कारण वह मेरी बात सुन नहीं पाया और अपनी ही धुन में स्कूटर चलाता रहा। तभी मैंने उसे गौर से देखा और अपना सवाल फिर से थोड़ी ऊँची आवाज़ में दोहरा दिया, "कैसे हो यार लोकेश ?"

"बस ठीक ही हूँ बोस...जैसे भी है ज़िंदगी तो चल ही रही है।" बोलते हुए वन चुप लगा गया और अपने तई गाड़ी चलाता रहा।

"और पिताजी कैसे हैं.....?" मैंने फिर कुरेदते हुए पूछा, "और तुम्हारी नौकरी कैसी चल रही है ? इन दिनों कहाँ पर पोस्टिंग है ?"

"बोस ! नौकरी भी फर्स्ट क्लास चल रही है। उसी ब्रांच में हूँ अभी भी पाँच बत्ती...।"

"अच्छा अभी भी उसी ब्रांच में डटे हो क्या? अरे भाई ! उसी ब्रांच में तो तुमसे मुलाकात हुई थी।" मैं याद करते हुए बोला, "और रह कहाँ रहे हो ?"

"काँटा पंखा। वहीं पर एक कॉलोनी में प्लाट ले लिया था तो वहीं पर मकान बनवा लिया है।"

"तुमने बताया नहीं माताजी-पिताजी कैसे हैं ? वे कहाँ पर रह रहे हैं ?"

"बोस ! उनकी तो अब तबियत ख़राब ही रहती है; वो कभी मेरे पास आ जाते हैं और जब यहाँ से धाप जाते हैं तो फिर वापस गाँव चले जाते हैं। और जब गाँव से धाप जाते हैं तो वापस मेरे पास आ जाते हैं। उनका तो बस ऐसे ही चल रहा है। बुढ़ापा है तो अब चिड़चिड़े भी बहुत हो गए हैं। और इसी कारण बहुत परेशान भी रहते हैं।" बोलते हुए वह चुप हो गया।

मैं स्कूटर के पीछे बैठे हुए उसको देखता रहा। वह थोड़ी देर बाद बोला, "घर चल रहे हो न बोस ?"

"अभी नहीं यार.....फिर कभी चलूगाँ।"

"क्यों अभी क्यों नहीं ?"

"अभी तो मुझे किसी से मिलना है। मैंने ही उनको बुलाया है। मुझे पता नहीं था कि इस तरह से तुम मिल जाओगे।" उसकी तरफ देखते हुए बोला।

किन्तु वह अपनी ही धुन में स्कूटर चलाता रहा, "फिर कहाँ छोड़ दूँ ?"

"मुझे तुम....आकाशवाणी के गेट पर उतार दो।"

आकाशवाणी के गेट पर उसने स्कूटर रोका तो मैं उतर गया। वह भी स्कूटर को स्टैंड पर खड़ा करके मेरे पास ही खड़ा हो गया। हम कुछ देर तक वहीं पर खड़े हुए एक दूसरे को देखते रहे। बस तभी वह बोला, "यह दुनिया भी कितनी छोटी है बोस.....इसे हम आज तक नहीं समझ पाए।"

"हाँ यार ! कौन कहाँ पर और कब मिल जाए पता ही नहीं चलता। अब इसे क्या कहेंगे ?" बोलते हुए उसे देखने लगा। वह लगातार मुझे ही देख रहा था। तभी मैंने फिर कहा, "यदि तुम फ्री हो तो आओ कुछ देर अन्दर ही बैठते हैं।"

"नहीं बोस.....अभी तो मैं चलूँगा।

"अच्छा तो फिर मिलते हैं।"

"ओ. के. बोस....।" बोलते हुए उसने स्कूटर स्टार्ट किया और बैठकर चला गया। मैं भी मुस्कराते हुए दरवाज़े के अन्दर आ गया।

***

इस क्षेत्र के अच्छे वार्ताकारों, कवियों और कथाकारों की सूची को अंतिम रूप दे रहा था। इस बावत अपने जानकारों से सूचना जुटाई गई। मुझे तुरंत ही एक कवि गोष्ठी भी आकाशवाणी में रिकार्ड करनी थी। मैं चाहता था, इस बार इसमें शहर के युवा और सामर्थ्यवान कवियों को आमंत्रित किया जाए। मेरे पास कई नाम अलग-अलग विधाओं के कवियों के आए हुए थे। सोचा पहले गीत गोष्ठी ही रिकार्ड कर ली जाए। तो पाँच गीतकारों के नाम फाइनल करके अप्रूव करवाये गए। इसके बाद उन्हें अनुबंध पत्र भेज दिये और उनसे फ़ोन पर चर्चा भी हो गई; उनको रिकार्डिंग तिथि बता दी गई। और बात आई गई हो गई। किन्तु जब निर्धारित तिथि को रिकार्डिंग के लिए कवि गण इकट्ठा हुए। गोष्ठी की रिकार्डिंग भी सुव्यवस्थित तरीके से हो गई। गोष्ठी में काफी अच्छे गीत पढ़े गए। जब गीतकारों से चाय के समय परिचय हुआ, उस समय एक महिला गीतकार ने अपने परिचय के साथ बताया, "मेरे पति देना बैंक में है और इस समय वो बैंक एम्पलाइज़ एसोसिएशन के अध्यक्ष हैं।"

उत्सुकतावश पूछा, "क्या नाम है आपके पति का....? वैसे हमारे एक मित्र भी है देना बैंक में।"

"लोकेश मिश्रा.....!"

"और आपका नाम...?"

"सुरभि सिंह...।" वह मुझे देखते हुए बोली, "अरे.....! आपने ही ने तो आमंत्रित किया है।" बोलते हुए वह हल्के से मुस्कुरा दी।

"अरे तो आप...लोकेश...! लोकेश मिश्रा की वाईफ हैं ?"

"हाँ...क्यों...?"

"लोकेश मिश्रा ही तो हमारे दोस्त हैं...!" देखते हुए बोला, "काफी अन्तराल के बाद वापस लौटा हूँ।....तो अब फिर से पुराने लोगों से मिलना जुलना होगा....। क्या आप उनका नम्बर देंगी ?"

अपना कार्ड देते हुए बोली, "मैं यहाँ पर गर्ल्स सीनियर सेकेंडरी स्कूल में हिन्दी की लेक्चरर हूँ।" कार्ड हाथ में लेते हुए बोला, "अभी पिछले दिनों अचानक ही उनसे मुलाकात हो गई थी। पर मैं उनका नंबर लेना भूल गया। चलो किसी रोज़ घर आता हूँ।"

"जी....ज़रूर। हमें अच्छा लगेगा और वे भी खुश होंगे।...शायद आपकी ही बात करते रहते हैं वे भी अक्सर।" बोलते हुए वह हल्के से मुस्कराई।

इस बीच अन्य कवि हमें इस तरह बात करते हुए देख रहे थे। तभी मैंने कहा, "क्षमा करें ! अनायास ही काफी पुराना परिचय निकल आया। तो ख़ुद को रोक नहीं पाए।"

फिर कुछ ही समय में सभी अपने-अपने गंतव्य की ओर निकल गए। किन्तु एक प्रश्न मन में फाँस की तरह अटका रह गया, "लोकेश मिश्रा की शादी तो आशा के साथ हुई थी ? और वह विपदा के दिनों में किसी प्राइवेट स्कूल में नौकरी भी करने लगी थी, किन्तु उसके पास सरकारी नौकरी करने लायक योग्यता शायद नहीं थी। तो फिर यह सुरभि ?" प्रश्न देर तक अंतर्मन को मथता

रहा। एक बार सोचा भी, "फ़ोन लगाकर बात ही कर लूँ ?" पर फ़ोन नंबर भी तो सुरभि का ही था। तो बात नहीं की और अपने काम में व्यस्त हो गया।

फिर कई दिन बीत गए। एक दिन किसी काम से बैंक जाना हुआ तो वहाँ लोकेश अपनी चिरपरिचित मुस्कान के साथ मिल गया। उसे देखकर अच्छा लगा, उसके साथ ही बरसों पुरानी याद फिर से ताज़ा हो गई।

मुझे देखते ही बोला, "बोस ! कई दिनों के बाद आज फिर हमारी याद आ गई ?"

"तुम्हारे साथ ही बैंक की भी।" बोलते हुए मुस्करा दिया, "यार ! हम अपने ही बनाए हुए जाल में किस तरह से फँसते जाते हैं कुछ समझ में नहीं आता है।"

"क्यों क्या हो गया ?" वह नज़दीक आते हुए बोला।

"बस ऐसे ही दोस्त !....आज तुमको देखा तो ?" बोलते हुए चुप लगा गया। और नज़र भरकर उसको देखने लगा। उस समय वह मुझे ही देख रहा था।

उसके देखने में अपनापन घुला हुआ था। तो मैं भी उसके साथ बह गया। और फिर हम दोनों ही आस-पास के वातावरण से दूर निकल गए। बैंक में लोगों की आवाजाही वैसे ही चल रही थी। पर हम उसमें नहीं थे। तभी मैंने हमारे बीच में पसरे हुए मौन को तोड़ते हुए कहा, -"यार...लोकेश....! तुमसे बहुत सारी बातें करनी हैं, बताओ कब मिल रहे हो ?"

"जब तुम कहो बोस।" वह हल्के से मुस्कराया, फिर बोला, "मैं तो अभी भी फ्री हूँ.....क्या तुम्हारे पास समय है ?"

"यार तुमने बैंक में नेतागिरी क्या चालू की...तुम्हारे तो मज़े ही हो गए ?" उसके कंधे पर हाथ रखते हुए बोला, "तुमको तो फुर्सत ही फुर्सत है।"

"नहीं ऐसा भी नहीं है बोस !" बोलते हुए वह गंभीर हो गया। फिर मुझे देखते हुए बोला, "मैं अपनी सीट का काम तो करता ही हूँ; नेतागिरी का काम से कोई लेना-देना नहीं है। काम अपनी जगह और वो अपनी जगह।"

"तो फिर अभी कैसे फुर्सत में हो ?" मैंने सीधा प्रश्न कर दिया।

"दरअस्ल ! मेरी सीट का काम ही देर से शुरू होता है फिर वह कब तक ख़त्म होगा पता नहीं।" बोलते हुए वह मुस्करा दिया, "तब तक मैं दूसरे काम निपटाता रहता हूँ; पर आज वह भी नहीं है। तो अभी एक घण्टे का समय है हमारे पास। तुम यदि चाहो तो कहीं चलकर बैठ सकते है।"

"ठीक है।"

बस तभी उसने अपने साथी के कान में कुछ कहा और बैंक के बाहर निकल आया। मैं भी बैंक के बाहर आकर गेट के पास खड़ा हो गया। उसने पार्किंग से स्कूटर निकाला तभी मैंने पार्किंग की तरफ देखा। वहाँ बेतरतीब गाड़ियाँ खड़ी थी। इसी पार्किंग में स्कूटर खड़ा करते समय पहली बार लोकेश को देखा था। इसके स्कूटर खड़ा करते ही कई सारी साइकिलें गिर पड़ी थी। पर आज इस पार्किंग में साइकिल नाम की चिड़िया तक नहीं है। हाँ, अभी यहाँ मोटर साइकिलें और कारें निरात से खड़ी है। इन चार सालों में वाहनों में इतना बदलाव आ गया। देखकर आश्चर्य हो रहा है। और साथ ही अचम्भा भी कि 'किस तरह आवागमन के एक साधन पर दूसरा काबिज हो गया और पता भी नहीं चला।' बस तभी लोकेश स्कूटर लेकर सामने खड़ा हो गया। तो उसके पीछे बैठ गया। स्कूटर दरवाज़े के बाहर निकल गया।

***

हम इंडियन कॉफी हाउस में बैठे हुए एक दूसरे को देख रहे हैं। तभी बीच के मौन को तोड़ते हुए लोकेश बोला, "क्या लोगे ?"

"कुछ भी.....जो तुम लेना चाहो।"

"फिर भी कुछ तो लोगे ही चाय या कॉफी?" बोलते हुए वह मेरी तरफ देखने लगा। फिर थोड़ी देर के बाद बोला, "वैसे यहाँ का डोसा बहुत फेमस है।"

"तो फिर डोसा ही ले लेते हैं।" मैंने कहा।

तभी उसने बैरे को अपने पास बुलाया और दो मसाला डोसा लाने के लिए कह दिया। बैरे के जाने के बाद वह मुझसे मुखातिब होते हुए बोला, "हाँ तो बोस.....?"

मैं उसको गौर से देखते हुए बोला, "यार लोकेश ! तुम्हारी शादी तो आशा से हुई थी ना?"

"हाँ...तो...?" बोलते हुए वह मुझे देखने लगा।

"तो फिर यह सुरभि कौन है ?"

"वह मेरी पत्नी है...।" बोलते हुए मुझे देखने लगा, कुछ देर तक वैसे ही देखता रहा, फिर अपने में उतरते हुए बोला, "यह भी एक दुखद अध्याय है।" मुझे उदास नज़रों से देखने लगा और फिर थोड़ी देर के बाद बोला, "तुम तो जानते ही हो..बेटी के जन्म के बाद ही हम परेशानियों से घिर गए थे।"

"हाँ....।" मैं उसको देखते हुए बोला।

"बस फिर कुछ महीनों के बाद आशा बीमारी से घिर गई। काफी दौड़-धूप की, कई डॉक्टरों को दिखाया। पर उसका बुखार उतरता ही नहीं था। काफी जाँच के बाद जाकर पता चला, ब्लड कैंसर है। ...तो फिर।" बोलते हुए उदास नज़रों से देखने लगा।

".....।" मैं कुछ भी नहीं बोल पाया, उसको देखता रहा नीरव आँखों से।

वह थोड़ी देर के बाद फिर बोला, "बोस फिर क्या था ? बीमारी ही ऐसी थी कि इसके पता लगते ही आधा आदमी तो वैसे ही ख़त्म हो जाता है। और रहा आधा वह भी डॉक्टरों और अस्पतालों के चक्कर लगाते हुए ख़त्म हो जाता है। मैंने भी ख़ूब भाग-दौड़ की पर फिर भी आशा को बचा नहीं पाया। .....बस छह महीने में ही सब ख़त्म हो गया।" बोलते हुए उसकी आवाज़ भर्रा गई। मानों कोई पानी से भरा हुआ बादल अचानक आसमान में अभी ही छा गया हो और बरसने को आतुर हो।

हमारे बीच में गाढ़ा और वज़नी मौन व्याप गया। तभी बैरा डोसे की प्लेटें लेकर आ गया। उसने हमारे बीच पसरे गाढ़े मौन को उलीच दिया। नहीं तो वह न जाने कितने समय तक गहरे अँधेरे की तरह हमारे बीच में वैसे ही पसरा रहता। जब बैरा टेबल पर प्लेटें लगाकर चला गया, तभी मैंने अपना हाथ उसके हाथ पर रख दिया, तो वह थोड़ा हल्का हुआ। हाथ की छुअन अपनेपन की नदी में बहा ले गई। वह मेरी तरफ देखने लगा। मैं उसे वैसे ही देखता रहा। बोल कुछ भी नहीं पाया। दोनों

एक दूसरे को कुछ देर तक वैसे ही देखते रहे। बस तभी मैंने कहा, "यार लोकेश ! आज मैंने तुम्हें फिर से गुज़रे हुए दु:ख के सागर में धकेल दिया ?"

वह कुछ नहीं बोला मानों शब्द उसके गले में ही फँसकर रह गए हों। माहौल को हल्का करते हुए मैंने कहा, "डोसा ठण्डा हो रहा है।"

वह वैसे ही मेरी तरफ देखता रहा फिर बोला, "हाँ बोस ! डोसा ठण्डा हो रहा है ?"

मुझे लगा हमारे बीच फँसा हुआ समय कुछ हल्का हुआ। हम डोसा खाने लगे। बस तभी मैंने पूछा, "तो फिर सुरभि से कब ?"

कुछ देर तक वैसे ही नीरवता से वो मेरी तरफ देखता रहा, मैं भी उसे देख ही रहा था। तभी पानी का गिलास हाथ में लेते हुए कहा, "तुमने बताया नहीं लोकेश ? .....वैसे नहीं बताना चाहो तो ?"

"यह भी एक अलग कहानी है बोस। " लंबी साँस लेते हुए वह गंभीर हो गया, "दरअसल ! सुरभि बलवीर सिंह की पत्नी थी। बलवीर वही जो मेरे बचपन का दोस्त था। हम दोनों अलवर में साथ पढ़ा करते थे। स्कूल का पूरा समय ही हमने साथ में बिताया और कॉलेज भी साथ ही किया। कॉलेज पूरा करते ही मेरी नौकरी बैंक में लग गई और बलवीर अलवर में रहकर अपना पुश्तैनी प्रॉपर्टी का काम सँभालने लगा। इसके साथ ही उसने एक ट्रेवल कंपनी भी खोल ली। जब भी अलवर जाता मेरा पूरा समय उसके साथ ही बीतता। हमारी दोस्ती बहुत गहरी थी।" बोलते हुए वह थोड़ी देर के लिए रुका और फिर मेरी तरफ देखने लगा,

"इधर मेरी शादी आशा से हो गई। उसके कुछ सालों के बाद बलवीर की शादी सुरभि के साथ हुई थी। उसकी बारात में कोटा गया था मैं। बड़े मज़े किये थे शादी में।" बोलते हुए जैसे वह अतीत की कंदरा से बाहर निकला।

"तो फिर.....?"

"बोस ! जीवन का कोई भरोसा थोड़े ही है। यह मैंने अपने अनुभव से जाना है। वह कभी भी और कहीं भी साथ छोड़ सकता है। जब आशा ने जीवन का साथ छोड़ा तो मैं टूट गया था। उसी समय बलवीर मेरे पास आया था। मुझे ढाँढस बँधाता रहा। और फिर वापस अलवर के लिए निकला तो उस समय भी वो मुझे ही सांत्वना दे रहा था। मैंने उस दिन उसे अश्रुपूरित नेत्रों से विदा किया।" बोलते हुए वह फिर अपने अन्दर उतरता चला गया। थोड़ी देर के बाद मुझे देखते हुए ख़ुद ही बोलने लगा, "वह यहाँ से गया तो अलवर के लिए था.....पर रास्ते में ही उसका भयानक एक्सीडेंट हो गया। बच नहीं पाया, ख़त्म हो गया मेरा दोस्त।" वह फिर से दु:ख के सागर में उतर गया। गहरी साँस लेते हुए फिर बोला, "और मेरे बचपन का दोस्त हमेशा हमेशा के लिए जुदा हो गया। कोई कुछ भी नहीं कर पाया।"

"फिर ?"

"फिर क्या था बोस ! सुरभी की एक बेटी थी जो उस समय आठ-दस साल की थी। बस तभी मैंने निश्चय किया, "चाहे कुछ भी करना पड़े; मैं इन दोनों की हर संभव मदद करूँगा।" इधर मेरे पास भी एक बेटी और एक बेटा था। जिनका पालन पोषण मुझे ही करना था। सुरभि अलवर में थी और मैं जयपुर में। तो फिर मैंने अपना ट्रांसफर अलवर करवाने का प्रयास किया, पर मेरे साथ कई सारी पेचीदगियाँ जुड़ी होने पर नहीं हो पाया। कई महीने इधर-उधर में ही बीत गए। सुरभि भी मेरी भावनाओं से अनजान नहीं थी। कहते हैं औरत में तो यह सब सूँघने का गुण प्रकृति ने जन्म से ही विशेष तौर पर दिया है। वह भी इसमें सहयोग करने लगी। हम ठहरे ब्राह्मण, तुम तो जानते ही हो मेरे परिवार को बड़ी मुश्किल से राजी किया। इसके लिए बहुत मशक्कत करनी पड़ी मुझे। और उधर वे ठहरे राजपूत अपनी मान मर्यादा और परंपराओं को मानने वाले लोग उनको तैयार करने में तो पसीना छूट गया।" बोलते हुए जैसे वह किसी दूसरी ही दुनिया से वापस लौटा हो।

मैं उसे लगातार देखता रहा। उसके अंतर्मन को पकड़ते हुए। तभी मैंने कहा, "यार लोकेश ! तुमने यह काम तो वाकई मर्दों वाला किया है ?"

वह कुछ भी नहीं बोला, मुझे वैसे ही देखता रहा। उसकी आँखें छोटी हो गई। तभी वह बोला, "ऐसा कुछ भी नहीं है बोस ! मैंने तो बस वही किया जो उचित लगा। मेरे दोस्त की बेवा को भी सहारा मिल जाए और मेरे बच्चों की भी ठीक से परवरिश हो जाए। बस इतनी सी ही थी मेरी मंशा।"

"यह तो है ही यार।" मैं उसको देखने लगा, "पर हमारे समाज में लोग ऐसा भी कहाँ सोचते हैं.... यदि इस तरह भी सोचने लगे तो फिर क्या है ?"

"वैसे तो सभी अपनी तरह से सोचते ही हैं। तभी तो समाज विकास कर रहा है।"

"हूँ.....।" मैं उसको गहरी नज़रों से देखते हुए बोला।

तो वह भी मुझको वैसे ही देखने लगा। फिर हम दोनों ही हौले से मुस्करा दिये। तभी वह कुर्सी से उठा और काउंटर की तरफ जाने लगा। मैंने उसका हाथ पकड़ लिया। वह बोला,

"क्या हो गया बोस ?"

मैं मुस्कराते हुए बोला, "कुछ भी तो नहीं, बस ऐसे ही।"

उसने प्रतिवाद नहीं किया, जबकि ऐसे समय में वह प्रतिवाद करता है। बस इतना ही बोला, "बोस ! तुम इस शहर में इतने सालों के बाद आए हो तो आज तो मुझे ही देने दो।"

मुस्कराते हुए मैंने उसका हाथ थाम लिया और बगैर कुछ बोले पाँच सौ रुपये का नोट पर्स से निकाला और काउंटर पर रख दिया। फिर हम दोनों कॉफी हाउस के बाहर निकल आए। बाहर अभी भी गुनगुनी धूप पसरी हुई थी। सर्दी के मौसम में धूप सुहानी लग रही थी। वह हल्के-हल्के हमें इस तरह सहला रही थी जैसे कोई अपना अपनेपन से सहला रहा हो। मैं गुनगुनी धूप को महसूस करते हुए आस-पास देखने लगा।

बस तभी लोकेश मेरा हाथ पकड़ते हुए बोला, "बोस ! तुम्हें कहाँ पर छोड़ दूँ ? मैं तो अभी बैंक जाऊँगा।"

"यहीं से चला आऊँगा दोस्त ! तुम मेरी चिंता मत करो।" बोलते हुए मैंने रिक्शा रुकवा लिया। बस तभी लोकेश ने स्कूटर को किक लगाई और मुस्कराते हुए चल दिया।

000

ज़रूरतों के खंभे देह पर ही टिके दिखते हैं....

मीता दास

वह हो ही नहीं सकती, उसे मैं अच्छे से पहचानता हूँ। सालों हो गए उसे देखते और उसके घर जाते, खाते- पीते, ताश-लूडो खेलते और बतियाते हुए। दूर के रिश्ते की कोई नहीं। हाँ मेरे शहर में उसकी माँ ब्याही थी, उस रिश्ते से उसका मुँह बोला चाचा यानी कि अंकल था।

दरो-दीवारों पर यह चस्पा कर दिया गया कि उसने निहायत ही गिरी हुई हरकत की है ! वह सकते में था, कुछ दिनों से उसकी हरकतें भी उल-जलूल सी थीं। एक अजीब सी अजनबियत भर गई थी उसके जीवन में, क्या वह वही है ? पूरी देह और दिमाग में एक सन्नाटा भर गया। अनजान सी लगने लगी ज़िंदगी, लोग, रिश्ते और जीवन्त देह भी। कभी इसी देह को सर्दी-गर्मी, जलन-ऐंठन, रुदन, रोष, स्नेह, विरक्ति और पुलकित समय का एहसास और लिहाज़ था। आज जैसे सबको पाला मार गया था। चारों तरफ उदासी, घृणा, शंकाओं ने अपने कंटीले तारों की एक मचान सी बना ली थी, बिलकुल एक शिकारी की सी मचान। अब शिकार बिलबिलाने के सिवाय और कर भी क्या सकता था, कौन सुनता उसकी चीख, उसकी घुटन कौन महसूस कर सकता था, सब ने जज बन रोड़े के समान उसे घेर लिया। इतने दिनों की सभी छूट और बेलगामियाँ जिन्हें अनदेखा किया गया आज वही सब उसका जुर्म बन उभर आया था। आत्मा पर कोड़े बरस रहे थे, कोड़े बरसाने वाले कोई और नहीं उसके ही अपने थे। रिश्तों में, खून में, हँसी में, खेल में, उदासियों में, रुदन में, उल्लास में हर मौकों पर निरे अपने ही लोग।

"कहीं सुना था कि पेट शत्रु से बड़ा कोई और शत्रु नहीं।" मृत्यु भी तो नहीं आती, अपराधी का अपराध इतना बड़ा है कि उसे मृत्यु दंड भी नहीं मिलेगा, उसे इसकी सज़ा आजीवन भोगनी पड़ेगी। तिल-तिल कर मरना होगा, जीवन- मृत्यु शायद इसी का नाम है !

याद आती है तो सिर्फ और सिर्फ चुभन और रुदन से भर उठता है मन। मालूम है उनके शब्द और उनके तय शुदा अर्थ, कुछ कुंठा से उपजे हुए अनैतिक, निराशा-हताशा से भरे ग़लत तरीके से लगाए गए लांछन सब। सबको तब बेहद पछतावा होगा जब जान जाएँगे कि निष्कर्ष तक पहुँचने की जद्दोजहद में बिताए क्षणों का हिसाब अपराध की तुलना में कितना ओछा और निर्दयता पूर्ण तरीका था अपनों का। काश! यह सब न होता...भूख और आवश्यकता देह पर ही न टिकी होती !

एक दोपहर उसके पिता ने अपना बोझ हल्का करने की चेष्टा में उससे कहा---

"लड़की का बड़ा होना कितना भयावह होता है, यह समझना इतना आसान नहीं !

"ऐसा क्यों कहते हैं आप?"

"देखता हूँ, समझता हूँ सब, बड़ा परिवार और वेतन बस चार सौ !"

"समय-समय की बात है हमेशा ऐसा नहीं रहेगा, सब ठीक ही हो जाएगा।"

"लड़की पढ़ने में तेज़ है पर तीनों भाई निठल्ले और उजड्ड,सोचता हूँ क्या होगा इनका?"

रोज़-रोज़ मेहमानों, पड़ोसियों का ताँता सा लगा रहता उनके घर, बगैर खाए कोई नहीं निकलता उनके घर से, सभी को उस घर से स्नेह और प्रेम मिलता। दिन बीतने लगे।

मीता दास
63/4 नेहरू नगर पश्चिम, भिलाई,
छत्तीसगढ़, 490020
मोबाइल- 329509050
ईमेल- mita.dasroy@gmail.com

"सुनो, इन दिनों वह रोज़ -रोज़ यहाँ टपक पड़ता है !"

"हम उम्र हैं सभी, उसे यहाँ अच्छा लगता है।"

"हाँ पर मुझे दिक्कत होती है, ड्यूटी से लौटो तो कमरा खाली नहीं मिलता कि लेट सकूँ।" उलाहना स्पष्ट झलक उठा।

खूँटा हमेशा अपने पहलू में होना चाहिए पर उसकी डोर ढीली। खूँटे को हमेशा यह भ्रम बना ही रहता है कि डोर की लम्बाई बड़ी हो तो भी उसकी रहगुज़र खूँटे पर ही चक्कर काटती हुई आती है। पर वह यह भूल जाता है कई बार डोर टूट जाती है या तोड़ी भी जाती है, खूँटा पहलू में निर्जीव सा गड़ा रहता है। जाना-आना ज़रा कम हुआ पर बंद नहीं हुआ, एक दिन फ़ोन आया-- "मटन बना है आ जाओ, सपरिवार।" उनके छोटे से घर के आँगन में कुछ प्लास्टिक कुर्सियाँ बिछी हुई थी, पता चला आज उनके ममेरे भाई को प्रमोशन मिला है और उसकी पोस्टिंग बैंगलोर हो गई है इसलिए आज उसे सेलिब्रेट कर रहे हैं। सेलिब्रेशन साधारण तरीके का ही था नितांत घरेलू तरीके से, घरेलू वातावरण में पर एक स्वस्थ गेट टू गेदर, सभी ने अच्छा फील किया। कई लोगों ने गिफ्ट भी दिये, आदान-प्रदान अच्छा ही रहा।

"कोई औरत आई है गेट पर। ख़ूब रो रही है और आप ही को पुकार रही है। दरवाज़ा खोल दूँ क्या ?" नए चौकीदार ने आधी रात को नींद से जगा कर पूछा। आँखें मलते हुए घड़ी की ओर देखा रात के डेढ़ बज रहे थे, इतनी रात कौन हो सकती है ? डरते-डरते सोचा वह तो नहीं जिसे दो माह पहले अपनी कार में लिफ्ट दी थी ? शायद उसे और पैसे चाहिए होंगे आइ सी यू में भर्ती थी उसकी माँ। जल्दी से चप्पलें डाली और गेट पर पहुँचते ही देखा अधेड़ महिला जिसने अपना चेहरा आँचल से छुपा रखा था और सिसक रही थी।

"इतनी रात गए ! क्या चाहिए ? कौन हो तुम ?"

एक भय, एक गहरी असुरक्षा का माहौल सा तन गया। अपने को आश्वस्त कर पाना ज़रा मुश्किल सा ही था पर थोड़ा धीरज, ज़रा सी सहानुभूति, थोड़ी सी हिम्मत, थोड़ी सी प्रतीक्षा ज़रूर रंग लाएगी यह विश्वास बना हुआ था।

"अरे आप ! इतनी रात गए क्या काम आ पड़ा और आप रो क्यों रही हैं ?"

"मेरे संग चलो अभी इसी वक़्त।"

"पर पता भी तो चले कि आख़िर बात क्या है ?"

"हॉस्पिटल चलना है।"

"किसे ? आपको ?"

"नहीं"

"भाई साहब तो ठीक हैं न ?"

"यहाँ इससे ज़्यादा और नहीं बता सकती।" वह ज़ार -ज़ार रोए जा रही थी।

"ओह्ह...अंदर आ जाइये बैठकर बातें करते हैं।" वह अंदर आ कर बैठी नहीं खड़ी ही रहीं, मैंने उन्हें पानी पिलाया और कहा "अब विस्तार से बताइये।"

"बाप-बेटी में दंगा मचा हुआ है।" फिर से फफककर रो पड़ीं। मैंने उनकी पीठ पर आहिस्ते से हाथ फेरा और वह फिर बोलने लगीं...

"बाप घर से निकाल रहा है उसे और वह मुँह ज़ोरी पर उतर आई है, बेशर्म है, कोई भला बाप से भी इस भाषा में बात करता है ?"

"देखिये यह आपका अपना घरेलू मामला है इसमें मैं क्यों पड़ूँ ?" उनका रुदन यह सुनकर और भी तेज़ हो गया, मैंने समझ लिया मुझसे भूल हो गई, मुझे ऐसे माहौल में उनकी मानसिकता को समझते हुए ऐसा नहीं कहना चाहिए था।

"मैं इसमें क्या करूँ ?"

"घर चलते है रास्ते में सब बताती हूँ, वरना ख़ूब देर हो जाएगी।"

"चलिए" कार की चाबी ली और घर लॉक किया और चल पड़े।

उनके घर का माहौल बड़ा ही भयावह था, पिता के हाथ में एक लकड़ी के मूठ वाला गँड़ासा था और वह हाँफ रहे थे, लड़की के खुले और उलझे बालों में उसकी सूरत ठीक से पहचान में नहीं आ रही थी, शरीर बेडौल सा, कहीं से नहीं लग रही थी कि वह अभी नाबालिग ही है। ज़ुबान ऐसे चल रही थी जैसे रंडीखाने की कोई माउशी बोलती हो। मेरे कानों में उसके एक-एक शब्द पारा बन उतर रहे थे। मैंने कभी उसे इस भाषा और तेवर के संग बोलते नहीं सुना वह बेहद नम्र थी। आज का यह रूप मेरी कल्पना के परे था।

"यू अन कल्चर्ड मैन, यू स्वाइन" बोलते-बोलते हाँफ रही थी, पूरी देह अस्त-व्यस्त कपड़ों से लिपटी हुई। अचानक ज़ोर से अपना पेट पकड़ कर रो उठी...ओह्ह्ह....मर गई, ओह्ह माई गॉड। मुझे समझने में भूल हुई, भाई साहब को नहीं इसे हॉस्पिटल ले जाना है। उसे उठाकर ले जाने के लिए जैसे ही मैं बढ़ा वह ज़ोर से चीत्कार कर उठी.....

"डोंट टच, दूर हट जाओ..." मेरे हाथ रुक गए, मैंने देखा उसके निचले हिस्से से एक पानी की तेज़ धार बह निकली।

"माँ.... ओ माँ.....मर गई। आवाज़ में एक तड़प और गुर्राहट दोनों का अहसास हो रहा था। उसका बाप गंड़ासा ज़मीन पर छोड़ कर निढाल सा वहीं बैठ गया। माँ फिर से दहाड़ मार रो उठी। मैंने एक झुरझुरी सी ली और पूछ बैठा ....

"बताइये तो सही अब करना क्या है ?"

"मेटरनिटी वार्ड"

"क्या ?" भौंचक सा रह गया पूरे घर का वातावरण। रात के तीन बज रहे थे, हॉस्पिटल के केजुअल्टी वार्ड का गार्ड दौड़ कर एक स्ट्रेचर ले आया, नर्स ऊँघ रही थी, डॉक्टर अपने रेस्ट रुम में रेस्ट कर रहे थे, उसकी माँ ने झिंझोड़कर नर्स को जगाया। नर्स हड़बड़ा कर उठ बैठी और भद्दा सा मुँह बनाकर एक भद्दी सी गाली उलीच दी। बोली ....

"क्या हुआ ? कोई मर गया क्या ?"

"नहीं - नहीं मेरी बेटी बीमार है।" नर्स ने लड़की को ऊपर से नीचे तक देखा और उसकी पारखी नज़रों ने सारा माज़रा समझ लिया बोली....

"यहाँ कोई लेडी डॉक्टर नहीं है, ऐसा करें इसे लेबर रूम ही ले जाओ। कोई न कोई उसे वहाँ देख ही लेगा।" वार्ड बॉय से नर्स ने कहा... "इसे लेबर रुम ले जाओ।" कुछ पेपर उसके हाथों में थमाया और बोली... "उन्हीं से भरवा लेना।" फिर वह वापस अपनी कुर्सी पर

ढेर हो गई। मन में सोचा इनका ज़मीर बिलकुल सुप्त हो चुका है। रोज़ न जाने कैसे-कैसे मरीज़ों से इनका पाला पड़ता है, अब उनकी आदत सी हो गई है।

"नाम ?"

"....."

"उम्र ?"

"यह तो नाबालिग है, केस बनेगा ?"

"केस क्यों ?" माँ बोली उसकी, इस बार बगैर घबराये।

"रेप केस नहीं है ?"

"नहीं-नहीं"

"फिर उसका पति ?"

"अभी शादी नहीं हुई।"

"क्या मगज मारी कर रही है, ठीक-ठीक लिखवा न, उधर देर हुई तो दोनों जान से जाएँगे और डॉक्टर की ड्यूटी भी ख़त्म।"

"बच्चे का बाप"

"हरामी साला, बास्टर्ड, स्वाईन।"

"चुप, पागल मत बना, नाम बता बाप का?"

"हरिहर" इस बार उसकी माँ बोली।

"उम्र ?"

"छप्पन"

"क्या, इतना बूढ़ा ?"

"....."

"क्या किया उसने तुम्हारे संग और कब किया यह सब ?"

"गँड़ासा लेकर मारने दौड़ा था उसका बाप।"

"मैंने इसके बाप के बारे में नहीं पूछा ? पेट में पलते बच्चे के बाप का नाम पूछ रही हूँ ?"

"चन्दन" इस बार बेटी ने कराहते हुए पुकार लगाई।

"कौन चन्दन ?" नर्स ने लड़की की ओर नज़र घुमाकर पूछा।

"इसका बाप" और लड़की अपने पेट पर ज़ोर-ज़ोर से मुक्का मारने लगी।

"क्या कर रही है छोरी ? ग़लती करते वक़्त ख़याल नहीं था। अभी उम्र ही क्या है और ऐसी हरकत... माँ-बाप भी कहाँ मुँह छिपाएँ। बाप गँड़ासा लेकर नहीं दौड़ेगा तो क्या फूल माला चढ़ाएगा।"

मुझे कुछ-कुछ भान हो रहा था कि माज़रा क्या है ? इतनी रूड, इतनी बेतकल्लुफ उसे मैंने कभी नहीं देखा। कुछ शब्द इंसान को कितना बदल देते हैं, आज मन एक ध्वस्त स्तूप की तरह ढह रहा था। शब्द बाण छूट चुके थे अपनी-अपनी कमानों से, अब न कोई मार्जित व्यवहार या आचरण की कोई गुंजाइश ही बची थी।

उसने घंटे भर बाद एक बेटे को जन्म दिया, उसकी माँ ने नर्स के इशारे पर उसे एक कपड़े में लपेटा और अंधकार में कहीं गुम हो गई। मैं हक्का-बक्का उनके पीछे चल दिया। अंधकार में ही एक अधेड़ सा आदमी खड़ा था, उसके पीछे एक और नर्स खड़ी थी वह शायद दूसरे वार्ड की थी। रात का अंधकार भी न जाने कितनी कालिमाओं की शरण स्थली होती है, भोर होने को है क्या आज के कलुष को धो-पोंछ कर अपनी लालिमा से उसमें लालित्य भर पाएगा...सूरज!

आगे की कथा में कई मोड़ हैं, कई बार ढलान से उतरते हुए महसूस होता है कि देह संग मन भी फिसल जाएगा और उठान की ओर ताको तो जलता सूरज लगता है जैसे समूचा निगल जाएगा। उहापोह से भरा जीवन असहाय हो उठा था। ख़ुद को छलने की प्रक्रिया में मशगूल हो उठी दुनिया। छलते-छलते बहुत दूर निकल आई वह उसकी आँखों के सामने। सब धुँधला गया उसे किसी पर भी विश्वास नहीं रहा। उसे लगा इसी दुनिया में वह कभी ज़िंदा थी आज तो जैसे मर कर फिर जीने को मजबूर किया जा रहा है।

यह सब उसने एक दोपहर चुपके से मुझे बताया, उसे शायद मुझ पर ढेर विश्वास था या उसके मन में सब उथल-पुथल कर रहा हो या अपराध बोध उसे धिक्कार रहा हो।

"मेरा बच्चा कहाँ है ?" सीधा सा सवाल, पर कितना कुछ संजोया हुआ था इसी प्रश्न में।

"मुझे नहीं मालूम।" सकपकाया सा मेरा स्वर उभरा ....

"आप जानते हैं, कह नहीं रहे आप। सभी ने चुप्पी साध ली है एक मृत्यु रूपी चुप्पी, पर मैं जानती हूँ उसे, उसकी धड़कने पहचानती हूँ, यहीं आसपास धड़क रहा है। यह देखो मेरे निप्पलों से उसके लिए दूध की धार निकल रही है, उसके दूध पीने का समय हो गया है।"

उसकी आवाज़ दृढ और सपाट थी। उसके स्वर में न करुणा थी और न ही उतावला पन ! मेरी रूह काँप उठी, उसे यह सत्य कैसे ज्ञात है। इतना अनुभव, अभी तो बच्ची ही है वह। फिर अपने को सचेत किया, नहीं माँ है वह, माँ से बड़ा कोई गुरु नहीं, वह सब जानती है, वह एक माँ है। मैं ही उसकी समझ के आगे बौना हूँ।

"सच मुझे नहीं पता।"

"मत बताइए, मैंने सोचा शायद आप ही वो शख्स हैं जिन्हें जीवन का शऊर है। इन लोगों की तरह बेगैरत और निर्दयी नहीं। पर मैं ग़लत थी, आप भी आख़िर वही निकले।"

पूरी बात वह एक ही साँस में कह गई। मुझे इतना तो अंदाज़ा हो ही चुका था कि भले ही यह उसका घर है पर अंतर में एक डर भी है। उसे न समझ पाने और उसे भला-बुरा कहने का डर।

"यह सब आख़िर हुआ कैसे ?" सपाट लहजे में मैंने भी प्रश्न किया उससे।

वह कुछ देर चुप रहती है जैसे अपनी साँसों पर काबू पा रही हो ! वह कहती जा रही है और मैं उसकी पसलियों से छीजती हुई बातों को लीन होकर सुन रहा हूँ। जब मन विषैले विष से भर उठता है तब वह कहीं भी अपने विष को छोड़ने पर मजबूर हो उठता है। आज उसका हाल भी कुछ इस तरह का ही था, मैं उससे उम्र में काफी बड़ा था पर वह आज

जाने क्यों मुझे अपना सबसे करीबी समझ रही थी या विष उलीचने का सही पात्र ! खंडहरों में कैद सदियों की पुरानी, विषैली हवाओं को जैसे एक खुली खिड़की मिल गई। उसने सब कह लेने के बाद एक लंबी और ताज़ी साँस खींची मेरे करीब आकर। मैं सहम गया, वह ज़रा पीछे हुई और मुस्कुराकर बोली ....

"डरिए मत, मैं देखना चाहती थी कि मेरे विष वमन से आप विषैले हुए या नहीं।"

उसने उस दिन बताया, मेरा उनके घर आना-जाना पापा को ज़रा भी पसंद नहीं थाआपसे खुलकर बातें करती तो पापा के कान खड़े हो जाते। जबकि आपका माँ से वह संबंध था जो अपने दोस्त की पत्नी से होना चाहिए। मेरी माँ बेहद सरल और सहज है। पापा का ही माथा अनर्गल बातों में उलझता रहता था। इस बारे में पापा ने माँ को कई बार खरी-खोटी भी सुनाई। माँ रोई, फिर अगले ही पल हम बच्चों की सहूलियतों और ज़रूरतों में अपना ध्यान रमाने लगती। पापा के दोस्त और रिश्तेदार आते तो पापा की आँखों में एक निराली चमक उतर आती। आप आते तो बस हम बच्चों के लिए टॉफियाँ ही लाते पर पापा के दोस्त और रिश्तेदार पापा के लिए और घर के लिए कई तरह के गिफ्ट, फल - मिठाई और माँस - मछली भी लेकर आते। पापा उस दिन बेहद खुश होते और चाव से खाना खाते और दोस्तों और रिश्तेदारों के गुणों का बखान करते फिरते। मुझे पहले-पहल यह सब कुछ समझ नहीं आता था, छोटी थी न पर दो-एक सालों में ज़रा -ज़रा समझ आने लगा था। पर समझ में आया बड़ी देर हो चुकी थी। बाकी तो आप सब जानते ही हैं।

"नहीं, सब कुछ नहीं जानता।"

"जानना भी क्या है आपको, कोई फायदा नहीं, आपको दु:ख ही होगा।"

"न-न कोई दु:ख नहीं होगा बल्कि धुँधलका ज़रा हल्का होगा।"

"अब आप चाहते हैं तो सुनिए, मुझे उस अन कल्चर्ड मैन से बेहद चिढ़ है, वह अपने फायदे के लिए किसी की भी बलि चढ़ा सकता है चाहे वह उसकी ख़ुद की बेटी ही क्यों न हो।"

" ओह्ह..."

"यह दुखद नहीं बेहद शर्मनाक है, एक बाप अपनी नाबालिग बेटी को अपनी ज़रूरतों की ख़ातिर उस नर्क में धकेल देता है और अनजान बन कर उसे ही गँड़ासा लेकर मारने दौड़ता है। कितना बेअदब और जाहिल दिखता है तब वह और उसका ढोंग।" उसने एक लम्बी साँस ली फिर अपने ही देह पर एक भरपूर नज़र डाली और बोली...

"यह सब सहने की उसकी उम्र है क्या ? देखो मेरा भूखा बच्चा कहीं दूध के लिए तड़प रहा होगा पर इन चाण्डालों को कोई फर्क नहीं। खा-पीकर लम्बी तान कर सो रहे हैं। इन पर मुझे थूकने का भी जी नहीं करता।" अब उसके चेहरे पर पीड़ा स्पष्ट झलक रहा था। उसकी कुर्ती दूध की धार से गीली हो रही थी पर उसे कोई शर्म नहीं। अचानक मुझे मेटरनिटी वार्ड में दूध पिलाती उस माँ का टँगा हुआ पोस्टर याद आ गया। मैंने अपने-आपको उसकी पीड़ा में घुला हुआ पाया।

"तुम कुछ माह पहले उनके मौसेरे भाई के संग कहीं बाहर घूमने गई थी न ?"

"घूमने नहीं, एक तय शुदा सौदा निभाने।" तिक्तता से उसका चेहरा काला पड़ गया।

"तुमने मना क्यों नहीं किया ?"

"समझ ही कहाँ पाई, चाचा जी के संग मेडिकल कॉलेज लुधियाना का एंट्रेंस देने गई थी, उन दिनों चाचा जी को लुधियाने में एक सेमिनार अटेंड करना था। पापा ने सोचा पैसे बच जाएँगे और मुझे उनके साथ भेज दिया, यह भी न सोचा कि मैं जवानी की दहलीज़ पर पाँव धरने वाली हूँ।"

"तुम्हें पता था यह एक सौदा है ?"

"नहीं, अगर होता तो क्या मैं जाती, नासमझ थी मैं, पापा और चाचा में क्या बात हुई उससे अनजान थी मैं। पहले भी कई बार चाचा आते थे तो थैला-भर-भर सामान पापा के सामने रख देते थे। पापा कहते चन्दन इतनी तकलीफ क्यों करता है, पर अगले ही क्षण माँ के पास रसोई में जाकर फुसफुसाते..अच्छा मसालेदार बनाना, चन्दन को मसाले बेहद पसंद है। और सुनो धनिया और लहसुन नहीं होंगे घर में न, पिछली बार बाज़ार से मैं लाया भी नहीं था। भीतर वाले कमरे में बैठा हुआ है, मंदिरा के हाथों एक कड़क चाय भिजवा देना और तुम ज़रा हाथ जल्दी चलाना। यह कह पापा घर से बाहर चले जाते और जब मैं चाय लेकर भीतर पहुँचती। वे मुझे पास बिठाकर कई तरह की बातें करते, मज़े-मज़े की मुझे भी अच्छा लगता, पर साल भर से चाचा का रवैया ज़रा बदल गया। अब उनके किस्सों में नज़ाकत नहीं माँसलता उभर कर आने लगी। मुझे अटपटा लगता पर उसे कोई अभिव्यक्ति नहीं दे पा रही थी। और मेरा एंट्रेंस देने जाना तय हो गया। मैं चली गई लुधियाना बेहद न-नुकुर के बाद। पापा नहीं माने, माँ ने मना भी किया जब उसका मन नहीं है तो तुम संग चले जाओ। झल्ला पड़े पापा -- पैसे क्या झाड़ पे उगते हैं ? माँ चुप हो गई। दो दिन एंट्रेंस की तैयारी में और एक दिन परीक्षा में निकल गए। अगले दिन चाचा बोले वापसी की टिकटें कन्फर्म नहीं हुई, अब क्या करें। चलो तुम्हारे पापा को फ़ोन पर बताते हैं कि टिकट न मिलने तक हम यही आस-पास कहीं घूम आते हैं। इसके बाद भला तुम्हें इतनी दूर कब आने को मिलेगा। पर मेरा मन घर लौटने को हो रहा था, आज कल चाचा से न जाने कैसा डर सा महसूस होने लगा था। शायद लड़कियों की कोई छठी इंद्री होती है जो अच्छा-बुरा सब भाँप लेती हैं। मेरे इंकार के बावजूद पापा मान गए और हम लुधियाना से पिंजौर गार्डन, रॉक गार्डन और आख़िर शिमला आ पहुँचे। घूमने में मज़ा भी आ रहा था पर अकेले डर सा भी लग रहा था। इतनी दूर... घरवालों से दूर मैं कभी भी नहीं गई।

रात होटल के जिस कमरे में हम ठहरे, वह डबल बेड वाला था, अब तक हम सिंगल बेड वाले में ठहरते आ रहे थे इसलिए संदेह की कोई गुंजाइश नहीं दिखती थी पर आज !

"चाचा आज हम यहाँ रुकेंगे ? "

"हाँ...क्यों ? "

"एक ही बेड है न ! "

"तो क्या हुआ आज तू बेड पर सो जाना मैं काउच पर।" उन्होंने ज़ोरदार ठहाका लगाया, मैं दहल उठी।

खाना खा चुकने के बाद जब हम कमरे में

आए तो कमरे में पहले से कोई एक सज्जन बैठे हुए थे उम्र होगी कोई चाचा के ही आसपास या बड़े भी। मेरा दिल दुबारा दहल उठा।

"आओ-आओ चन्दन मैं तुम्हारी ही रह देख रहा था। यह कौन है अरे हाँ तुमने बताया तो था, तुम्हारी भतीजी है यहाँ एंट्रेंस देने आई है। बैठो-बैठो...तुम्हारे बगैर ही मैंने शुरू कर दी क्या करूँ बेहद ठंडा मौसम जो है यहाँ का।"

"मेरा गला सूख रहा है, पानी पीती हूँ चाचा जी आप लोग बातें करिए।" कह कर मैं पानी पीने का बहाना करने लगी। कुछ ही देर में मुझे हलकी सी नींद आने लगी। घूम-घूम कर थक जो गई थी और ऊपर से खाना भी खा लिया था, नींद आना तो जायज़ है। मैंने चाचा जी से कहा, "मैं सो रही हूँ, मुझे नींद आ रही है, आप लोग बातें करिए।" और मैं कुछ ही देर में सो भी गई। सो गई या सुला दी गई, कुछ भी पता नहीं।

"चन्दन, अब मैं चलता हूँ, कल की रात बेहद उम्दा बीती। याद रहेगी यह रात, तुम बैंगलोर पहुँचकर मुझसे संपर्क करना।" यह आवाज़ सुन मैं कुनमुनाई और मेरी नींद तपाक से खुल गई। खिड़की से भोर का उजाला झाँक रहा था।

मैं उठने को हुई तो चाचा जी बोले- "लेटी रहो, आराम से अभी सुबह के सात ही बजे हैं, नौ बजे ब्रेकफास्ट लगेगा डाइनिंग हॉल में। मैं इन्हे नीचे तक छोड़कर आया।" चाचा जी और उनके दोस्त बाहर निकले और मैंने पलटना चाहा पर पूरा शरीर ऐंठा हुआ सा महसूस हुआ, दर्द के मारे चीख निकल गई। भूचाल सा ठहर गया कमरे में, उस भूचाल की थर्राहट चिपक गई समूचे देह में। टिकट न मिलने तक यह सिलसिला रोज़ चला, अब उनका कोई दोस्त नहीं ख़ुद चाचा जी थे। पूरी देह घिना गई मेरी पर लाचार, इतनी दूर अनजान सा शहर। लौटी तो पापा बेहद खुश नज़र आए पर माँ चिंतित लगी मेरा सूखा हुआ चेहरा देखकर।

एक नन्हा सा पौधा रोपा गया अनचाहा सा, पर मैं और मेरी देह बेखबर। दो माह बीत गए तबियत मचलने लगी, पौधे का एहसास कुलबुलाने लगा। पर चारों और अपने लोग अनजाने लगने लगे, किससे कहूँ अपनी दास्ताँ। उसपर पहरा लगाने के लिए अपने ही आस-पास कँटीले तारों की बेड़ियाँ डाल ली। अपने को दिन भर किताबों के बीच छुपा लिया। तीन माह बीत गए ग़लती पौधे की भी नहीं थी उसने अपने पाँव पसारने में अपनी ख़ुशी समझी पर मेरा दिल बैठने लगा।

एक दिन पापा ने चाचा जी को बैंगलोर फ़ोन लगाया बोले-" बहुत दिनों से इधर नहीं आया ?" चाचा जी ने शायद उधर से उत्तर दिया- "जल्दी ही आता हूँ, और भाई साहब मेरा प्रमोशन हो गया है।" "अच्छा-अच्छा बहुत अच्छा, तुम्हारी भाभी पूछ रही थी तुम्हें।" दो माह बाद अचानक चाचा आ धमके, इस बार भी उनके हाथ में कई तरह के गिफ्ट थे और एक लिफ़ाफ़ा भी पापा को थमाया। पापा हें-हें कर हँसे और बोले इसकी क्या ज़रूरत थी। अरे मेरे प्रमोशन में आपकी भी तो हिस्सेदारी बनती है। मैं इतना किसके लिए कमाता हूँ। मैं इस बार सामने ही नहीं आई, पापा ने पुकारा फिर भी नहीं। मन उचाट था ही उसपर अब मुझे दोनों भाइयों की मिली भगत सामने आ गई थी, समूचा मन कड़वा हो गया। तबियत ज़रा खराब है रे मंदिरा का, एक दो दिन में ठीक हो जाएगी। चाचा जी चले गए, और मेरी सभी नफ़ासत और नजाकत भी ले गए। मैं एक सख्त बर्फ में धीरे-धीरे तब्दील होती रही पर बर्फ की भी एक ऊष्मा होती है, वह ऊष्मा मुझमे धीरे-धीरे जमती रही एक दिन विस्फोट करने में सक्षम हो भी गई।

"क्या हुआ है रे मंदिरा, पढ़ाई तो ठीक चल रही है न, रिजल्ट की चिंता मत कर, रिपीट कर लेना।"

"अब मुझे आगे नहीं पढ़ना।"

"क्या बक रही है, कुछ होश भी है ?"

"होश में ही नहीं जाग भी चुकी हूँ, तुम्हारा और चाचा का भाँडा फूट चुका है। इतने नीच हो तुम, तुमने इस काम के लिए अपनी ही बेटी चुनी और वह चाचा के नाम पर कलंक। अब उनका बीज मेरी कोख में पल रहा है।"

"क्या बकती है, उसने कोई सावधानी नहीं बरती। अभी लगाता हूँ फ़ोन।"

"यू स्वाईन" कह कर पापा को मारने दौड़ी तभी माँ रसोई से निकल आई बोली- "क्या हो रहा है यह सब।"

"आज तेरी बेटी की खैर नहीं" और यह कहते हुए गँड़ासा निकल लाए। माँ सुबक उठी और तीनों भाई खाट के नीचे दुबक गए। जैसे-तैसे गुस्सा थमा के दहाड़ मारकर रोने से मंदिरा पिघल उठी।

कुछ साल बीत गए मैं भी अब दूसरे शहर में रहता हूँ, बीच-बीच में किसी-किसी से उन लोगों खबरें मिलती रहती हैं। आज पूना एयरपोर्ट में एक पहचाना सा चेहरा सामने की सीट पर फ्लाइट का इंतज़ार करती मिली। वह ख़ुद उठकर मेरे निकट आ कर बैठ गई।

"कैसी हो, एक दम बदल गई हो।"

"समय"

"हाँ, समय हर ज़ख़्म की दवा है।"

"यह भुलावा भर है, ज़ख़्म कभी नहीं भरते, अगर भर गए होते तो आज आपको देखकर पहचान ही नहीं पाती।" उसने एक फीकी सी हँसी मेरे चेहरे की ओर फेंकी पर मैं उस हलकी चीज़ को भी सहने की स्थिति में नहीं था।

"कहाँ जा रही हो ?"

"तयशुदा सौदा"

"ओह्ह अब तक !"

"जब तक स्तन का दूध सूख न जाए।"

मैं कुछ बोल ही नहीं पाया, वह उठी और अपना सूटकेस उठाया और फिर वापस मेरे करीब आकर बोली- "आपने भी धोखा दिया।"

"सच मैं नहीं जानता था।"

"पर मैं अब जान गई हूँ।"

"क्या ? कैसे ?"

"मुस्कराइए कि आप की उलझन अब मैं नहीं बनूँगी। मैं ही अपने चाचा जी के बच्चे की सरोगेट मदर हूँ। चंदन ही मेरे बच्चे के पिता का नाम है।"

आज मुझे वह एक जमी हुई बर्फ लग रही थी, कल तक वहाँ एक दूध की नदी बहती थी।

000

नन्ही आस

सपना शिवाले सोलंकी

आज भी चिड़ियों के चहकनें की आवाज़ से सिद्धान्त की नींद खुल गई थी। आँखों को मलते हुए उसने खिडक़ी के बाहर नज़र डाली तो, झीने पर्दे की ओट से नीम के पेड़ के अंतिम छोर की पत्तियों को हवा में झूमते हुए देखा। चिड़ियों का शोर चूँ-चूँ यथावत् जारी था। पर चिड़िया कहीं दिखाई नहीं दे रही थी।

बड़े प्रयास से उसने अपनी गर्दन और धड़ को ऊपर उठाने का प्रयास किया, पर वह निष्फ़ल ही रहा। धड़ बिस्तर में और गर्दन फिर से तकिया में धँस गई।

पिछले कुछ दिनों से,चिड़ियों की चहचहाहट से, वो अक़्सर ही जाग जाया करता है। इन दिनों उसे, चिड़ियाँ, एक्वेरियम की रंगीन मछलियाँ, बिल्ली, तोता और कछुए का साथ बहुत आनंदित कर रहा है।

पापा ने ही अपने किसी मित्र से कहकर, एक छोटा सा कछुआ बुलवाया था। जब वो आया तो दुबका हुआ, डरा सहमा सा रहता था। धीरे-धीरे वह सिद्धान्त के करीब आने लगा और अब तो बिलकुल बिंदास हो इधर-उधर घूमा करता है। हरे धनिया की पत्तियों को कुतर- कुतर कर ख़ूब चाव से खाया करता है। मिठ्ठू राम जी ने सिद्धू का नाम रट लिया है, दिन भर सिद्धू... सिद्धू... कहकर शोर मचाया करता है। मम्मी को एक बिल्ली का छोटा सा बच्चा जाने कहाँ मिल गया था उसे घर ले आईं थी। वो भी दिनभर मटरगश्ती किया करता। एक्वेरियम की रंगीन मछलियाँ भी कमाल की कलाबाज़ियाँ किया करती हैं, जिसे वह बड़े ध्यान से देखा करता है।

सिद्धान्त का मन आजकल इन सबमें ख़ूब लग रहा है। उसे लगता जैसे ये सब उसके पक्के दोस्त हैं और उसके ज़ज़्बातों को भली-भाँति समझते हैं। बाकि अन्य दोस्त तो अब रहे ही नहीं, न ही दिखते और न ही मिलते कभी। वह भी तो इस थर्ड फ़्लोर में दो कमरों के फ्लैट में क़ैद होकर ही रह गया है। बाहर की दुनिया में क्या हो रहा है, कुछ पता नहीं...!

सपना शिवाले सोलंकी
प्रीमियम टॉवर नम्बर 4 फ्लैट नम्बर 804
शालीमार टाउनशिप, विजय नगर ,ए. बी.
रोड़ इंदौर 452012, मप्र
मोबाइल- 9425190852
ईमेल- sapnapankajsolanki@gmail.com

दौड़ना, साइकिल चलाना, फुटबॉल और क्रिकेट खेलना, कितना पसन्द था उसे ! और तो और अपने भाई वेदान्त के साथ टी. वी. में डब्लू डब्लू एफ की फाइटिंग देखकर उसी तरह एक्शन कर लड़ना भी पसन्द था। पर ये सब बातें अब यादों का हिस्सा बनकर ही रह गईं।

बचपन में मोहल्ले के लोग उसे उसके घुँघराले बालों के कारण 'मैगी' कहकर बुलाया करते थे। मैगी की तरह मुड़ी हुई उसकी घुँघराली लटें बिखरी हुई रहती थीं। कई बार मम्मी उसके बालों की पोनीटेल बना देती, फिर भी घुँघराली लटें कान के पीछे झूलती रहतीं। उसे लोगों का "मैगी" कहना बिलकुल भी पसंद नहीं था,बल्कि उसे तो मम्मी का प्यार से सिद्धू कहकर पुकारना ही अच्छा लगता था। जब भी मम्मी सिद्धू कहकर पुकारती, सुनते ही-

"जी मम्मी...." ज़ोर से चिल्लाता था। अब तो यह याद करना मुश्क़िल है, कि कब आख़िरी बार उसने चिल्लाकर, "जी मम्मी.." कहा था।

सिद्धू लगभग आठ नौ वर्ष का था, उन दिनों बात करते समय अचानक तुतलाने सा लगा था। मुँह से लार लगातार टपकती रहती। क्लास थ्री में पढ़ता था। मैड़म अक़्सर ग़ुस्सा किया करती-

"क्यों बना-बनाकर आवाज़ निकालते हो।"

"एक्टिंग करते हो।"

"ठीक तरह से बात क्यों नहीं करते ?"

"क्या बचपना है यह।"

वह तो सचमुच नहीं जानता था, क्यों तुतला रहा है? वह तो नॉर्मल तरीक़े से ही बात करता, फिर भी ज़ुबान लड़खड़ाने सी क्यों लगती थी? क्यों लार टपकने लगती... नीची गर्दन कर चुपचाप मैडम से डाँट सुनता रहता। घर पर भी, मम्मी प्यार से झिड़की देती-"क्यों करते हो ऐसी बातें।"

"ठीक से बोलो बेटे..."

"थीक छे तो बोल लहा हूँ न।"

सुनकर, मम्मी की झिड़की भी कभी-कभी सख़्त डाँट में तब्दील हो जाती...। अब क्या करें वह, कैसे समझाए, उसे कुछ सूझता नहीं था, इसलिए लोगों से बात करने से कतराने लगा था।

उसकी ज़ुबान के लड़खड़ाने, तुतलाने, लार टपकने को घर-मोहल्ले, स्कूल में, दोस्तों में, बड़ा ही नॉर्मल लिया गया।

उसकी वजह क्या हो सकती है, यह किसी बीमारी के संकेत भी तो हो सकते है। कभी किसी का ध्यान इस ओर गया ही नहीं। जाता भी कैसे, देखने पर पूरी तरह से सामान्य और स्वस्थ जो दिखता था वह।

अठारह मई, मम्मी-पापा की शादी की सालगिरह का दिन, उसी के सेलिब्रेशन के लिए वे सब होटल डिनर के लिए गए थे। ख़ूब एन्जॉय किया था उसने सबके साथ। उसकी परीक्षा समाप्त हो चुकी थी, रिजल्ट आ चुका था। फोर्थ क्लास में चला गया था वह इसलिए ख़ूब खुश भी था। डिनर के बाद सभी ने आइसक्रीम खाई, उसने भी ज़िद कर तरह-तरह के फ्लेवर की दो तीन आइसक्रीम खाईं। गर्मी भी तो बहुत थी उस दिन। होटल से लौटकर, घर आकर सब सो गए वह भी सो गया था। सुबह जागा तो बुख़ार के ताप से उसका शरीर दहक उठा था। फिर काँपने लगा, मम्मी-पापा को लगा ख़ूब आइसक्रीम खाई, इसलिए सर्दी लग गई और बुखार आ गया। बुखार कम करने की दवा दी गई, किन्तु हाथ पैर की मांसपेशियाँ खींचने व जकड़ने सी लगी थी।

डॉक्टर को बुलाया गया उन्होंने उपचार प्रारंभ किया, इंजेक्शन लगे, पर फीवर न उतरा और न ही शरीर की ऐंठन कम हुई। तीन चार दिन में, जब कोई सुधार ना दिखा तो मम्मी-पापा उसे पास ही के एक हॉस्पिटल लेकर गए और वहाँ एडमिट किया। सप्ताह भर में कोई सुधार न आता देख, किसी डॉक्टर की सलाह पर उसे एम्बूलेंस से 'जसलोक हॉस्पिटल मुम्बई' लेकर गए। वहाँ उसे एडमिट कर दिया गया। तरह-तरह के टेस्ट हुए, रिपार्ट से पता चला सिद्धान्त को "विल्सन" डिसीज़ हुई है।

"विल्सन? क्या है, यह विल्सन..?"

मम्मी-पापा हैरत में थे। डॉक्टर से बार-बार पूछते रहे।

डॉक्टर ने बताया- "नई बीमारी है लाखों में किसी एक को होती है।"

"हे भगवान् ! हमारा बच्चा ही मिला था लाखों में..."

मम्मी-पापा की आँखें डबडबा गईं।

"क्या इलाज़ है इसका, डॉक्टर ?"

"दरअसल यह एकदम नई बीमारी है, सो इसके इलाज के लिए दवाओं पर शोध किया जा रहा है। पूरे वर्ल्ड में रिसर्च चल रही है। एक्सपेरिमेंट ही किया जा सकता है अभी तो बस।"

"बच्चे के शरीर में कॉपर की मात्रा बहुत बढ़ गई है।"

"लीवर तो काफी हद तक डैमेज़ हो गया है।"

"शरीर की सारी हड्डियों में कॉपर पहुँच गया है। ब्रेन तक न पहुँचे, उसे ही कंट्रोल करना ज़्यादा ज़रूरी है फिलहाल तो।"

सिद्धान्त के मम्मी-पापा बेचारे लुटे-पिटे से चुपचाप डॉक्टर की बातें सुनते रहे थे। सोचने समझने की स्थिति में नहीं थे वे। एकदम से एक बड़ा सा झटका लगा था उन्हें जानकर।

"क्यों हुआ?"

"कैसे हुआ।"

कई सारे प्रश्न मन में उठते जा रहे थे।हमनें कभी किसी का कुछ बुरा नहीं किया, फिर ऐसा क्यों हुआ हमारे साथ?

"हमारे छोटे से बच्चे को किस बात की सज़ा मिल रही है?"

कुछ ही दिन में क्या हालत हो गई इसकी। अच्छा ख़ासा खेलता-कूदता था बच्चा। इसकी तकलीफ़ देखी नहीं जाती, बोल भी नहीं पा रहा है। भगवान जी! प्लीज़.. कृपा करो। मन ही मन हर पल प्रार्थना किया करते रहते थे। हॉस्पिटल के परिसर में स्थित मंदिर के सामने खड़े होकर भी ख़ूब प्रार्थना किया करते थे।

जसलोक हॉस्पिटल में लगभग पन्द्रह दिन सिद्धान्त को एडमिट रखा गया। दवाएँ और दुआएँ सभी तरह के प्रयास ज़ारी थे।

फिर एक दिन डॉक्टर ने बड़े ही स्पष्ट शब्दों में कहा -

"देखिये, अभी तक हमनें जो भी प्रयास

किया है उससे बच्चे के ब्रेन में कॉपर को जाने से रोकने में हम पूरी तरह सफ़ल हुए हैं। बच्चे का ब्रेन एक्टिव है, वह सुन सकता है,समझ सकता है, महसूस कर सकता है...बाकि लिवर, मसल्स, बोन्स का अभी कुछ कहा नहीं जा सकता। कब तक सुधार आ पाएगा। यह कहना मुश्किल है। बच्चे को हॉस्पिटल में रखकर भी हम ज़्यादा कुछ नहीं कर पाएँगे, ऊपर से यह हॉस्पिटल भी बहुत ज़्यादा महँगा है, कब तक आप लोग यहाँ रहेंगे। बेहतर है, इसे अब घर लेकर जाएँ। महीने दो महीने में एक बार उसे चैकअप के लिए ले आइएगा।"

"डॉक्टर साहब, पर वह तो बोल ही नहीं पा रहा, बिना बात किये कैसे रहेगा, उठ-बैठ नहीं पा रहा, कब खड़ा होगा, कब चलेगा?" एक साथ कई प्रश्नों की झड़ी सी लगा दी सिद्धू के मम्मी- पापा ने।

"सिर्फ और सिर्फ़ धैर्य रखना होगा।कब, कितना सुधार आएगा, आज मैं कुछ भी कह पाने की स्थिति में नहीं हूँ।"

"ईश्वर पर भरोसा रखें।"

"मेरी शुभकामनाएँ आपके साथ हैं।" डॉक्टर की बात सुनकर उनका दिल बैठा जा रहा था बुझे और उदास मन से थैंक्यू डॉक्टर कहकर, सिद्धान्त को घर लेकर जाने की तैयारी में जुट गए।

सिद्धान्त घर तो आ गया, पर लगभग वैसा ही, उसी हाल में जैसा उसे हॉस्पिटल भेजा गया था। आस पड़ौस के लोग, रिश्तेदार, कुछ कॉल कर करके तो कुछ लोग प्रत्यक्ष रूप से घर आकर मिलते रहते। मम्मी के लिए सचमुच कितना मुश्किल था, हर बार वही सब बताना व दोहराना।

"विल्सन बीमारी" किसी को भी पता नहीं थी। लोग सुनते, ढाँढस देते, मम्मी तो बेचारी, अपनें कलेजे के टुकड़े को इस हाल में देख-देखकर दुखी होती रहती हरदम।

वेदांत, बड़ा भाई गूगल में सर्च कर-कर पता करता जिन चीज़ों में कॉपर की मात्रा होती उन चीज़ों की लिस्ट बनाकर मम्मी को देता ताकि उसी के मुताबिक़ सिद्धू के लिए भोजन तैयार किया जा सके।

सिद्धान्त, जब तक हॉस्पिटल में था

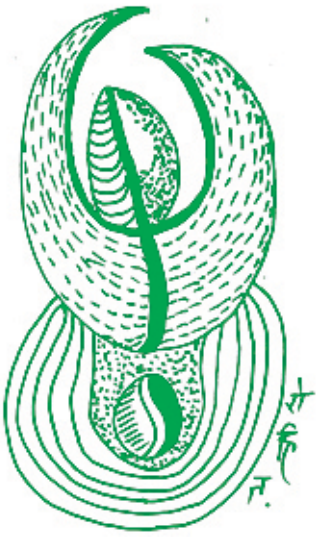

मेडिसिन के प्रभाव में अक़्सर ही नींद में चुपचाप रहा करता था। लेकिन अब घर पर पूरे होशो-हवास में, एक-एक गतिविधि को देखा करता।

सुबह-सुबह जागने के साथ ही उसे दवाई दे दी जाती। बेड पर ही शौच आदि करवाया जाता। शरीर को स्पंज से साफ कर दिया जाता। आहार नली सिकुड़ सी गई थी, जिससे पेट में नली डाल दी गई थी। उसी नली के माध्यम से ही खाना खा पाता था वह। दाल का पानी, नारियल पानी, जूस, दूध, खिचड़ी मिक्सी में पीसकर पतला कर, नली में डाल दिया जाता। किसी भी खाने की चीज़ की महक़ आते ही उसका मन बेचैन हो उठता, ललचाने लगता पर मन मसोसकर चुपचाप रह जाता वह।

पूरी ताक़त जुटाता, मुँह से आवाज़ निकले, कुछ बोल सके पर स्पष्ट आवाज़ निकल ही ना पाती थी। मुँह ही मुँह में कुछ-कुछ बड़बड़ाने की कोशिश करता। अब एक पल के लिए भी वह अकेले नहीं रहना चाहता था। अकेलापन जैसे खाने को दौड़ता, इसलिए पूरे समय कोई न कोई उसके पास बैठा रहता।

जब उसका मन बहुत दुखी हो जाता,हृदय के अंदर, व्याकुलता, पीड़ा, छटपटाहट बढ़ने लगती, तो उसकी आँखों से आँसुओं की झड़ी सी लग जाती।

अपना दु:ख, अपनी तकलीफ किसी के साथ बाँट नहीं पाता था। जबकि पहले जब वह स्वस्थ था, ज़रा सा पेट दर्द करने लगे या कहीं खेलते-कूदते हल्की सी भी चोट लग जाए तो,

"देखो न मम्मी जमकर लग गई मुझे ख़ूब दुख रहा।" कहकर पूरा घर सिर पर उठा लिया करता था। और अब, कितना विवश हो चुका था वह। बोलना तो ख़ूब चाहता पर बोल ही नहीं पाता, शब्द ही नहीं निकल पाते मुँह से। बस घूँ घूँ..घड़ घड़.. सा स्वर निकलता।

सिर्फ आँखों और चेहरे के हावभाव से अपने मन के भावों को अभिव्यक्त करने की मात्र कोशिश ही किया करता था वह।

दिन बीतते गए, साल दर साल गुज़रते गए, इस दौरान लोग तरह-तरह के नुस्खे, ट्रीटमेंट, तो नए- नए डॉक्टर्स के नाम सुझाते रहते। मम्मी-पापा जिससे जो भी सुनते, उनके अनुसार होमियोपैथी, नेचरोपैथी, एलोपैथी, एक्यूप्रेशर, एक्यूपंचर, सब तरह के उपचार कराते रहते ...।

सिद्धांत को जसलोक हॉस्पिटल भी बीच-बीच में लेकर जाया जाता। विल्सन की बेसिक मेडिसिन "लेविपिल" जिस दिन भी ख़त्म हो जाती और यदि बाज़ार में भी न मिल पाती, तो वह दिन बहुत ही मुश्क़िल भरा बीतता। शरीर की सारी मांसपेशियाँ खींचने लगती, पूरा शरीर अकड़ सा जाता और मुँह से ख़ूब झाग निकलने लगता। फ़िट्स की तरह दौरे पड़ने लगते। दर्द में वह छटपटाने लगता। तन और मन की पीड़ा एक साथ बढ़ जाती...।

तन की पीड़ा तो दवा मिलते ही दूर होने लगती,किन्तु मन की पीड़ा, कभी भी कम नहीं हो पाती, बल्कि बढ़ती ही जाती निरन्तर...

मम्मी-पापा रोज़ पूजा किया करते, घंटों मिन्नतें किया करते। पापा, मंदिर, मस्ज़िद, गुरुद्वारा, चर्च जो भी दिखता हाथ जोड़ते, ईश्वर से प्रार्थना किया करते।

कभी- कभी एक -एक दिन उसे एक युग जैसा विराट लगता, बिताना मुश्किल हो जाता। बेड पर पड़े घड़ी की सुइयों को घिसट-घिसटकर धीमी रफ़्तार से बढ़ते हुए देख अपना समय भी काटता रहता बस...।

मम्मी का तो जीवन ही बदल गया था, रफ़्तार तेज़ हो गई थी। सुबह से रात कैसे हो जाती पता ही नहीं चल पाता। उनकी ज़िंदगी

का मुख्य केंद्र बिंदु सिद्धू ही था जिसे खुश रखने व उसका मन बहलाने की वह भरसक प्रयास किया क़रतीं। टी. वी. चालू कर उसे कार्टून्स दिखाती। पहले भी उसे कार्टून्स देखना बेहद पसन्द था। डोरेमोन,सिंचन,टॉम एंड ज़ेरी, मिस्टर बीन, देखकर जब वह थक जाता, तभी आँखें बंद कर सोने की कोशिश किया करता था, पहले ज़्यादा टी.वी. देखने पर गुस्सा करने वाली मम्मी अब उसके साथ सारे कार्टून्स देखती रहती।

दीपावली, होली, रक्षाबंधन, नवरात्रि, क्रिसमस, आदि त्यौहार आते, और चले जाते, सिद्धान्त की हालत देख, घर में सिर्फ उदासी ही छाई रहती...वेदांत घर को सजाकर, सँवार कर माहौल बदलने की कोशिश करता। सिद्धू जब भी वेदांत को नए कपड़े-जूते पहने देखता तो सोचता काश ! वह ख़ुद भी ऐसे बढ़िया से तैयार हो पाता...पहले तो नए कपड़ों का कितना शौक था उसे। कद काठी अच्छी होने से भाई के कपड़े भी पहन लिया करता था। भाई उस पर गुस्सा हुआ करता था और अब तो भाई भी कितने सलीक़े से प्रेम पूर्वक पेश आता। उसकी केयर करता, उसे सँभालता, घंटों उसके पास बैठा करता, उससे दुनिया जहान की बातें किया करता।

समय के साथ अत्यंत धीरे-धीरे ही सही पर, दवाओं ने अपना असर दिखाना शुरू कर दिया था। आहार नली में काफी सुधार आ गया अब पेट की नली निकाल दी गई, मुँह से ही खाना खाने लगा, लिक्विड, सेमी लिक्विड डाइट दी जाती थी। हाथों की बंद मुठ्ठी भी खुलने सी लगी। कुर्सी में तकिये के सहारे बैठने लगा, शौच आदि के लिए भी मम्मी-पापा, भाई टॉयलेट लेकर जाते...।

मन की पीड़ा भी धीरे-धीरे कम होने लगी, पहले जैसी झल्लाहट, गुस्सा, अवसाद सब कम होने लगा,मन शांत सा होने लगा था उसका...समझ बढ़ने लगी और अब उम्र के साथ उसके जज़्बात भी बदलने लगे थे...अब टी .वी. में कार्टून्स देखने का उसका मन न करता बल्कि चैनल्स बदल बदलकर फिल्में देखाता, गाने सुनता, स्पेशली सलमान खान की फिल्में और उसकी फिल्मों के गाने। जोश सा आ जाता था उसमें। जब भी सलमान की कोई नई फिल्म रिलीज़ होती, भाई या पापा उस फिल्म की सी.डी. या डी.वी. डी. ले आते, देखते ही सिद्धान्त खुश हो जाता।

वेदांत कॉलेज में पहुँच गया, वह अपनी पढ़ाई में व्यस्त रहने लगा, उसे कॉलेज जाते देख, सिद्धान्त के मन में भी पढ़ने की चाह हिलोरें मारती। लगता काश! वह भी पढ़ पाता.....

जब वह स्कूल जाता था, तब उसे स्कूल जाना, पढ़ना, बिलकुल भी अच्छा नहीं लगता था। तब तो सिर्फ़ खेलने का ही मन करता था। लेकिन बढ़ती उम्र के साथ-साथ अब उसकी इच्छाएँ बदलने लगी थी।

"क्या बिन पढ़े-लिखे ही वक्त बीत जाएगा?"

"कब ठीक हो सकूँगा मैं? "

"ठीक हो पाऊँगा भी या नहीं? "

इस तरह के प्रश्न कभी-कभी बेचैन कर देते थे उसे।

उसके शरीर का आकार निरंतर बढ़ता जा रहा है। अब तो मम्मी-पापा जितनी ही हाइट हो गई उसकी। लेकिन अभी भी उनकी सहायता से उसके सारे काम होते हैं। इन आठ- दस सालों में जाने किंतने मौसम बदले,क्या-क्या नहीं बदल गया, घर की चीज़ें बदलती गईं, मोबाइल फ़ोन तक स्मार्ट फ़ोन में तब्दील हो गया।

लेकिन, नहीं बदला तो उसका जीवन जैसा था लगभग वैसा ही, दो कमरों के फ्लैट के अंदर सिमटा हुआ सा।

कई बार सूने आकाश की ओर वह टकटकी लगाए घंटों देखा करता। उसका मन बेहद उदास हो जाता, कई प्रश्न उसके मन में उभरते रहते... "क्या मैं कभी पूरी तरह से ख़ुद से खड़ा हो सकूँगा?"

"कभी दो क़दम चल सकूँगा? "

"क्या कभी दो शब्द भी बिना लड़खड़ाए फूटेंगे ज़ुबान से? "

"अपने मन की बात खुलकर किसी से कर सकूँगा?"

"मम्मी-पापा कब तक यूँ परेशान होते रहेंगे?"

क्या कसूर है उनका, जो वे भी सज़ा भुगत रहे है, ऐसे अपराधों की सज़ा जो उन्होंने कभी किया ही नहीं...और मैंने भी, ऐसा क्या कर दिया था? मैं नहीं जानता, जन्मों के फेर...

किस जन्म में क्या किया और हे ईश्वर, तुझे किसी को उसकी सज़ा यदि देनी भी हो तो उसी जन्म में दे ना ...

"मैं तो छोटा सा अबोध बच्चा मात्र था। मुझे क्यों इतना सब सहन करना पड़ रहा है? "

अब बहुत तो हुआ, सिर्फ मैं नहीं बल्कि पूरा परिवार व्यथित है। सबके जीवन सूने हो गए कहीं कोई हर्ष उल्लास नहीं बचा...जितनी सज़ा देनी थी दे दी अब तो सब ठीक कर दे...

मम्मी-पापा के प्रति उसके मन में कृतज्ञता के भाव जागते। कितनी देखभाल, कितनी सेवा करते है ये लोग मेरी। जब भी मम्मी पूजा की थाल लेकर उसके करीब आती, मन ही मन खुश हो जाता, उनके पैर छूने की भरपूर कोशिश करता। जन्म जन्मांतर के लिए ऋणी रहूँगा इनका, मन ही मन सोचता। कई बार अनंत ख्वाहिशें भी जन्म लेती, ख़ूब सारे, छोटे बड़े सपनें भी सँजोता...गणेश चतुर्थी में गणेश जी की मूर्ति की स्थापना होती तो वह दूर से मन ही मन आरती किया करता..

सुखकर्ता दु:खहर्ता वार्ता विघ्नाची
नुरवी पुरवी प्रेम कृपा जयाची
सर्वांगीं सुंदर उटी शेंदुराची
कंठी झलके माल मुक्ताफळाची
जय देव, जय देव, जय मंगलमूर्ति
दर्शनमात्रे मनकामना पुरती....

गणपति बप्पा मोरया.. गणपति बप्पा मोरया...

उसके मन के भीतर प्रार्थना के स्वर गूँजने लगते....

वो एक दिन ज़रूर खड़ा होगा, ज़रूर चलेगा, और ज़रूर बोलेगा। मम्मी की पुकार पर,

जी मम्मी कहकर, जवाब ज़रूर देगा....

उसकी इस 'नन्ही सी आस' को गणपति बप्पा अवश्य पूरा करेंगे।

एक विश्वास सा हो चला है इन दिनों उसके मन में....

000

मैं बोर हो रही हूँ यार

डॉ. नीहार गीते

बारिश ऐसी कि आर दिखे न पार। कई दिनों का सैलाब मानों बादलों से फट चला था। सुकेश ने हमेशा की तरह अपना वेस्पा स्टेंड पर टिकाया और बंद छाते को खोलने की हिम्मत जुटाने लगा। हवा का तेज़ रुख छाता पलटते-पलटते बचा। हाथ से चेहरे पर पड़ती तेज़ धार बचाता वह बस स्टाप के अंदर हो लिया। पिछले तेईस वर्षों में इस क्रम में बदलाव आया हो देखा नहीं। असल में निम्मो रोज़ बाईस किलोमीटर दूर गाँव से "अपडाउन" करती है, सुभाष उसे ही लेने बिलानागा वहाँ समय से पूर्व पहूँचता। निम्मो मेरी हम उम्र कज़िन मौसी थी। जब तक विवाह नहीं हुआ था, हर साल नानी और मैं उस गाँव में गर्मी की छुट्टियों में जाते ही थे। नानी की मौसेरी बहनों का घर था वहाँ। नानी अपने मकान के सोलह बड़े-बड़े कमरों में वो सुकून कहाँ पाती जो यहाँ के छोटे-छोटे तीन कमरों के घर में था। पहुँचने से पहले ही सबसे हवादार कमरे में हम दोनों के रहने की व्यवस्था रहती।

खिड़की पर रखी नई सुराही का पानी लोभान की तरह महकता। हमारे साथ आई डलिया में रखी मठरी, खुरमे और बेसन के लड्डुओं का मामा लोगों को इंतज़ार रहता। शाम होते ही काँच के 'केस' में गरमा गरम छोटी-छोटी पर एकदम खस्ता और स्वादिष्ट कचौरी बेचने मदन भैया आवाज़ लगाते पाँच की पाँच ले लो... पाँच की...तब नानी अपने बटुए से चिल्लर निकाल मुझे आवाज़ लगाती ... नैना लो बिटिया ज़रा सबको मनभर खिला तो दो। और मैं और निम्मो सबमें हिस्सा बाँट आते। बड़े हुए तो हमारे किस्से कहानी अलग हो गए। अब वह पराठें बेलती, मैं सेकती, पचास-साठ पराठें हमारी क़िस्सागोई में कब पार लगते पता ही नहीं चलता। छुट्टियों में बिताया यह छोटा सा समय मुझे साल भर की स्नेह ऊर्जा से भर देता। नानी के बाद यह क्रम भी विस्मृत हो गया। कुछ सुख-दुख के क्षणों की सूचनाएँ और सबकी बढ़ती व्यस्तताएँ थीं। मेरे विवाह में निम्मो ने सब बढ़-चढ़ सँभाला था। कुछ ही दिनों बाद उसका फ़ोन आया था। तेरे शहर में नौकरी मिल गई है। थैंक्स मेरा रेफरेंस देने के लिए। मैं झूम उठी थी। संयोग भी देखो मेरी "मल्टी" से कुछ आगे ही वह "बस स्टॉप" जहाँ से उतर उसे दूसरी सवारी लेनी होती। हर शनिवार वह बारह एक तक घर आ जाती "हाफ डे" होता था उसका। फिर हम दोनों साथ लंच

डॉ. नीहार गीते
539/ A, महालक्ष्मी नगर, बॉम्बे हॉस्पिटल के सामने, इंदौर (एम.पी)
मोबाइल- 9826303220
ईमेल- dr.nihar.gite@gmail.com

करते, दुनिया की बातें और शाम होने से पहले ही निकल पड़ती। कभी मेरे पति से टकरा जाती तो वे छेड़ते- "कभी हमसे भी मिल लिया करो।" यह सिलसिला पहले कम हुआ और फिर अचानक बंद हो गया। बाद के दिनों में उसकी हर बात में सुकेश का जिक्र बढ़ गया था। उसी ने बताया था- "नैना कितनी बार कहा है - रेन कोट ले लो, कम से कम आँख कान तो बचे रहेंगे। पर सुनते ही नहीं। पर सुकेश हैं ही ऐसे।"

भावनाओं पर लगाम कसना सुकेश को तब भी नहीं आता था, जब उसके पिता जीवित थे। उनसे डाँट पड़ने पर वह स्कूल की लैब से एसिड निकाल ख़ुद को दाग लिया करता था। घंटों बहनें हाथ पकड़ उसे सहलाती, समझाती तब कहीं उसकी मनव्वल टूटती।

सचमुच सुकेश ऐसा ही है। "अटेंशन सीकिंग, हाइपर इमोनशनल।" छोटी उम्र में माँ का न रहना बच्चों को कैसे-कैसे असुरक्षित कर जाता है। इसका साफ असर इन बच्चों पर देखने को मिलता था। सुकेश से छोटे थे दो भाई संजय और रंजीत। ग्यारहवीं तक आते-आते रंजीत ने अपने सरदार दोस्त मोंटी से झगड़ा होने पर ख़ुद को पंखे से टाँग दिया था। उस दृश्य को सबसे पहले देखने की दहशत में संजय एकदम चुप हो गया था। सबसे बड़ी बहन थी मुन्नी। माँ बन पिता की-भाइयों की देखरेख करती। पूरा परिवार स्कूल की उसी छोटी सी घेराबंदी में जीता था। सुबह सात से शाम पाँच तक दो शिफ्टों में कक्षाएँ चलती, शाम होते ही प्राचार्य कक्ष "ड्राइंग रूम" बन जाता, लैब की लंबी "कॉरीडोर" में पलंग बिछती। सकरी बालकनी का एक सिरा रसोई तो दूसरा सिरा मोरी बनता। कस्बे नुमा शहर के बीच बाज़ार में लुढ़की पड़ी खस्ताहाल इमारत में यह स्कूल जैसे-तैसे चल रहा था। बाबूजी ने अपने ज़माने के परिचय के बूते पर शासन से जो संबद्धता हासिल कर ली थी उन नियम कायदों को निभाना अब महँगा पड़ता जा रहा था। आस-पास रंग- बिरंगे व्यवस्थित अंग्रेज़ी माध्यम स्कूलों ने सारी ग्राहकी खींच ली थी सो अलग। मुन्नी अक्सर कहती बाबूजी स्कूल चलाना धंधा हो गया है आजकल। सच तो है उनका अपना पूरा परिवार इसी स्कूल के भरोसे पल रहा था। कुछ करीबी दोस्त "पार्ट टाइम" यहाँ पढ़ा समय बिता जाते। दस्तखत "फुल टाइम" पर। तनख्वाह भले ही कम मिले पर घरनुमा स्कूल से जब-तब पूड़ी-कचौड़ी की खुशबू उठती रहती। अनेक परेशानियों के बावजूद घर के लोग ज़िन्दादिल थे, जो आता जी हल्का कर बाहर जाता। मैं ख़ुद भी तो इस उत्सव की साक्षी बन चुकी थी।

मुझे याद है वह दिन, भाभी का फ़ोन था निम्मो एक "हेल्प" चाहिए तुझसे?

"क्या हुआ भाभी, अचानक?" वह घबराई।

"अरे नहीं, ऐसा कुछ नहीं वह मेरी फ्रेंड है न ममता, उसकी बिटिया इलेवंथ में फेल हो गई है। घर में मातम मचा पड़ा है। तू उसी शहर में है, इतनी पहचान है, देख लेना प्लीज़।"

"करना क्या है भाभी?"

"स्कूल से यदि निकाल लेंगे तो वे पास का सर्टिफिकेट दे देंगे शायद?"

"ट्वेल्थ के लिए।"

"ऐसा स्कूल जो "अटेंडेंस" दे दे, रेगुलर फार्म भरवा दे, पढ़ाई वे घर पर ही करवा लेंगे।"

"भाभी अव्वल मैं ऐसे गोरखधंधों से दूर रहती हूँ, दूसरा आई डोंट सपोर्ट सच थिंग्स।"

"कर दे यार," भाभी ने चिरोरी को। "छोरी कुछ कर ना ले।"

इमोशनली घेरना सबको आता है। किसी तरह जोड़-तोड़ कर इस स्कूल का पता मिला। मिलने और तय करने भी मैं ही गई। और दो-चार बार के इस आने-जाने में मनीषा से दोस्ती भी कर बैठी। देखने में साधारण पर अपने सुगठित शरीर से कभी साड़ी को एक पटली वह सरकने ना देती। साड़ियाँ महँगी तो नहीं पर कुछ अलग ही होती। स्वभाव सरल। ममता की बिटिया को स्कूल जमा नहीं, पर हमारी दोस्ती चल पड़ी। हम अक्सर बात कर लेते।

मनीषा ने बाबूजी से बात की। समय की गंभीरता को समझ वे दोनों ही स्कूल की छवि, नए सिरे से सुधारने को जुगत करने लगे। इसी सिलसिले में की गई नियुक्तियों में मेरे कहने पर निम्मो जो हाल ही अच्छे अंकों से एम.एस.सी. पास हुई थी, को नियुक्त कर लिया गया। कुछ उसके सहज स्वभाव, कुछ उसकी जी तोड़ मेहनत स्कूल में धीरे-धीरे सभी उसके दीवाने होते गए।

फुर्सत के उन क्षणों में बाबूजी ने सुकेश से ही कहा - "बेटा मुन्नी की उम्र हो रही है, तुम दोनों भी बड़े हो चले हो, मेरे रहते सब सेटल हो जाते तो अच्छा था। पैसों का मुझे मोह नहीं, बहुएँ घर सँभाल लें बस।"

तीनों भाई-बहनों के लिए एक ही मंडप सजा था। निम्मो ने जी जान से शादी में रंग जमाया। मुन्नी की विदा से निढाल पड़े बाबा को उसने ही सँभाला था। मुन्नी को अनुपस्थिति में स्कूल सँभालती निम्मो अब बाबूजी का ख़ास सहारा थी। शादी के कुछ ही दिनों बाद बाबूजी ने महसूस किया बहुओं को स्कूल में रुचि नहीं, वे मुश्किल से वहाँ रह रही हैं।

उनकी दूरदर्शिता ने तुरंत तीनों बच्चों में समान बँटवारा कर दिया। निम्मो को प्राचार्य का पद सौंपा और मुक्ति की इस बेला को थामे ख़ुद भी निवृत्त हो गए। बाबूजी की तेरहवीं तक निम्मो स्कूल में ही रुक गई थी।

उस दिन सुबह-सुबह सुकेश आवाज़ लगाता हुआ लैब तक चला आया था। निम्मो क्या बात है उठी नहीं अब तक? उठने की कोशिश करती निम्मो की हालत देख वह समझ गया इसे तेज़ बुखार है। हवन-पूजन, ब्राह्मण भोज निपटते-निपटते सारा घर खाली हो गया था। यूँ तो निम्मो पास के ही गाँव से अपडाउन करती थी, पर ऐसे में शहर की चिकित्सा सुविधा छोड़ उसे घर भेजना ठीक न होगा, यह सोच सुकेश और पत्नी सविता ने उसे कुछ दिन वहीं रोक लिया।

निम्मो की ज़ुबान भैया-भाभी के गुणगान करते न थकती। "सुकेश भैया, इस बार बाज़ार में नया टसर आया है, राखी पर ध्यान रखना।" सुकेश दिल का हर तरह से उदार था पर इधर वह महसूस कर रहा है कि राखी बाँधती निम्मो की छुअन उसे सिहराने लगी है। पुरुष की आँखों की रील में बदलते रिश्ते स्त्री जल्दी परख लेती है। निम्मो इस पहचान को अनदेखा नहीं कर पाई थी। शुरू में भावनाओं

के आकार निर्धारित नहीं थे, तब तक तो निम्मो सुकेश को नियमित राखी बाँधती रही। धीरे-धीरे उपहार राखी के मोहताज नहीं रह गए। उम्र समझाइश से परे यह संबंध कब, कैसे स्पर्श के बदलते तापमान में पिघल गया दोनों को पता न चला। सुकेश तो है ही ऐसा। उसकी भावनाओं पर कानून, कायदों, नियम, बंधनों की कोई लगाम नहीं कसती। पर निम्मो? तो जानती है, सुकेश विवाहित है। पर निम्मो यह भी तो जानती है कि उसके घर में अब कोई उसके विवाह की बात नहीं उठाता। स्कूल के लिए निकलते-निकलते भी "वॉल क्लाक" सुधरवाने से लेकर घर की अन्य ज़रूरतों के लिए उसे छोटी-बड़ी थैलियाँ थमा दी जाती हैं। अकेले कहाँ तक भागदौड़ करे वह। एक सुकेश ही है जिसे उसके आने न आने, परेशान हो जाने से फरक पड़ता है। हर दुविधा में वही उसका सहारा बनता। सुविधाओं के लेन-देन में वह कब कैसे सुकेश से प्रीत डोर बाँध बैठी, समझ नहीं पाई।

उस दिन दोनों शहर के प्रमुख हाल में लगी पुस्तक प्रदर्शनी में मुझसे टकरा गए। वे मार्च पूर्व स्कूल का बजट निपटाने आए थे और मैं कॉलेज लाइब्रेरी के लिए डिस्काउंट तय करने। सबसे प्रिय रही निम्मो को कई दिनों बाद एकदम सामने पा रहा नहीं गया। "निम्मो तू रोज़ मेरे शहर में आती है, एक दिन घर आने का टाइम नहीं तेरे पास?"

निम्मो से अधिक सुकेश ने वादा किया था, "ज़रूर आएँगे और जल्दी।" उससे बतियाने में, शिकायत करने में, जल्दी-जल्दी में भी निम्मो के गले में पड़े भारी मंगलसूत्र की झलक मैं पा गई थी। छोटा शहर "कॉमन" परिचित आते-जाते बता जाते, "मैडम उसने अपने घर में दोनों औरतों की एक जैसी बड़ी-बड़ी तस्वीरें लगा रखी है।"

"भाई-वाई सब नाटक है मैडम, दोनों टाइम-बे टाइम छुट्टे घूमते हैं आजकल।" निम्मो का वहाँ परिचय कराने का अपराध बोध था शायद जब नहीं रहा गया तो मनीषा को फ़ोन कर ही दिया। "मनीषा यह क्या बवंडर उठा है?" मनीषा जानती है मेरा स्वभाव। दूसरों की ज़िंदगी में दखल देती नहीं

मैं। मेरी परवाह, परख, थके मन से वह इतना ही बोली- "मेरी समझाइश से परे हो गए हैं दोनों।"

"सविता नहीं बोलती कुछ?"

"वह तो जैसे मुक्त सी हो गई है।"

दुख होता है, निम्मो और मैं साथ-साथ बड़े हुए थे। बचपन से पक्की रोटी थी हमारी। जिस घर जाएगी वह सँवर जाएगा, सारा गाँव जानता था। उसकी यह गत न सुनी जाती न देखी। कई बार सोचा आते-जाते एक दिन उसे रोककर सब पूछूँगी। इधर सोचना हुआ, उधर अचानक वह ख़ुद ही आ बैठी। चेहरा वैसा ही निश्चल। कोई असंतोष, कोई दुख, कोई पश्चाताप कहीं कुछ नहीं। मैं कुछ कहती कि बोली- "चल चाय पिला"

"हूँ" मैंने कहा।

"क्या बात है, कुछ नाराज़ है क्या?"

"नहीं नाराज़ होने जैसा कुछ है क्या?"उसके चेहरे की निश्चिंतता ने कुछ भी और कहने से रोक दिया था। ख़बरें अब आनी-जानी हो गई थी। लोगों को उनके संबंध की आदत लग गई थी। मेरी अपनी व्यस्तताएँ थीं, फिर भी कोई न कोई बता जाता, स्कूल की हालत खस्ता हो रही है मैडम। सरकार ने नियमों का हवाला दे अनुदान बंद करने का नोटिस दे दिया है। कठिन समय में चूहे भी जहाज़ छोड़ देते हैं। ज़्यादातर स्टाफ स्कूल छोड़ गया! ज़्यादा अनुभव और संपूर्ण शिक्षा होने के बावजूद निम्मो का यहा बने रहना आवश्यक था।

सुकेश कहता "तू भी चली जा तो स्कूल बंद ही कर दें।" निम्मो जानती थी कि जिस दिन उसने कहीं और नौकरी कर ली, स्कूल बंद हो गया, सुकेश की धड़कन उसी दिन बंद हो जाएगी। पैसों की तकलीफ से नहीं, निम्मो के रोज़ न मिल पाने भर से। एक-दूसरे की इच्छाओं, भावनाओं के आगे नतमस्तक दोनों एक अटूट डोर से बंधे थे।

"क्यों भगाना चाहते हो, कोई नया चक्कर तो नहीं?" वह चिढ़ाती? इधर घर पर भी निम्मो के लिए परेशानियाँ बढ़ रही थी। लोगों की बतकही भाइयों के कानों में पड़ी तो वे भी राखी का हक अदा करने, मरने, मारने पर हो आए। भाभियों ने शरमा-शरमी दो एक घरों में शादी की बात चला दबाव बनाया। पहले सुबह पाँच बजे की उठी निम्मो जब हारी-थकी घर पहुँचती, अम्मा उसे पास बिठा, पीठ पर हाथ फिराती। फिर भाभियों से उसके लिए नाश्ता लगवाती। आज कल वे घर में कदम रखते ही चिल्लाती - "निम्मो भई, तू छोड़ दे ऐसी नौकरी। तेरे चार पैसों के चक्कर में न रात नींद आए न दोपहर चैन। यह कोई टाइम है आने का?"

जवान हो रही भतीजियों के माथे की त्यौरियों में ना जाने कितने प्रश्न होते? उसे आश्चर्य होता अम्मा ने इतने सालों घर में आती मिठाई-पकवानों, ज़ेवर-गहनों, कपड़े-लत्तों, सुख-सामग्रियों की आती बहार पर कभी नहीं पूछा, कि इतनी कम तनख्वाह में इतना कुछ कैसे करती है? कैसे घर के बच्चों के कॉलेज एडमिशन शहर में करवाने हेतु किसके साथ एड़ियाँ घिसती है? भर बारिश में टपकती छत को सुधरवाने किसका पसीना बहता है। भाई तो नौकरियों का हवाला दे दुबक जाते हैं। रिश्तेदारों के प्रश्न, प्रतिप्रश्न? गाँव वालों की फैली-फैली आँखें? निम्मो ने अपने आपको सीमित कर लिया। गाँव के किसी कार्य-काज, सुख-दुख में अब वह हिस्सा नहीं लेती।

पूजा पाठी तो वह शुरू से थी। इधर उपवास के दिन और भागवत समय और बढ़ गया। उस दिन स्कूल में ही उसे चक्कर आ गए थे। पति डॉक्टर है, अस्पताल स्कूल के

पास, सुकेश ने घबराकर उन्हें ही बुला लिया। सारे टेस्ट होते-होते शाम हो गई थी। पति निम्मो को घर ही ले आए।

"अच्छा-खासा "ब्लॉकेज" है, बताया उन्होंने।"

"मेडिकली उसके यहाँ कोई अवेयर नहीं।" फ़ोन कर हाल बताया और कुछ दिन अपने यहाँ रोक लिया उसे। अगले दिन जल्दी ही सुकेश फल दवा ज़रूरत की सभी चीज़ों के साथ हाज़िर था। सामान्य रहने के प्रयास में बार-बार साँसें छोड़ता। आँख भर-भर उसे देखता। सुकेश के जाते ही मैंने हिम्मत कर कहा, "निम्मो तू सेटल क्यों नहीं हो जाती?"

"सेटलमेंट, में क्या है नैना? एक दूसरे का जीना हराम कर देना या एक दूसरे का शारीरिक, आर्थिक शोषण? "

"ऐसा हमेशा नहीं होता निम्मो। अपनी पत्नी से तलाक ले तुझसे शादी क्यों नहीं कर लेता सुकेश, कम से कम सबकी स्थिति तो निर्धारित हो। समाज के भी कुछ नियम हैं।"

"मुझे तो लगता है समाज नियमों के टूटने से नहीं, दो लोगों की खुशी से ज़्यादा आहत होता है।" वह बोली।

"निम्मो, तू जानती है मैं क्या कहना चाहती हूँ, तुझे इससे भी अच्छा घर-वर मिल सकते हैं।"

"हाँ नैना, मिल क्यों नहीं सकते। पर हम दोनों ने साथ बिताए इतने वर्षों के एक-एक क्षण में एक दूसरे को खोजा, पाया है, जीया है। जो रस इकट्ठा किया उसे क्षय नहीं होने दिया। एक बूँद भी बिखर नहीं जाने दिया। कहीं छलक भी गया तो अंजुरी भर-भर दूना वापस डाल दिया। विवाह क्या इससे ज़्यादा सुंदर होगा?" और विवाह के विरोध में न जाने कितने तर्क-कुतर्क वह दे बैठी। मेरे पास कहने को अब और कुछ न था।

पति ने समझाया "तुमने अपना दायित्व निभाया, भाग्य उसका भी है।" घर, गृहस्थी, बच्चों की उलझने, सबको निपटाने, सुलझाने में समय निकलता ही गया।

आज छुट्टी का दिन तो था नहीं, पर पति गुमसुम बैठे थे। ठंड के मौसम में भी चेहरा भीगा सा था। इस वक्त तो वे काम पर पहुँचने की पूरी तैयारी में रहते।

"क्या बात है आप तैयार नहीं हो रहे?"मैंने पूछा।

"नैना एक प्राब्लम हो गई है।"

"बोलो!"

"निम्मो अपनी भांजी की आँख के इलाज के लिए भाई-भाभी के साथ नौसारी गई थी, वहाँ अपॉइंटमेंट नहीं मिला तो पास ही कहीं ठहरे थे वहीं उसकी तबियत बिगड़ गई।"

"हाँ, तो क्या हुआ? ठीक हो जाएगी।"

पति ने आँखें कुछ झुकाई, कुछ झपकाई। बता पाने की हिम्मत इकट्ठा करने से ज़्यादा मेरे सहन कर पाने की ताकत को वे तौल रहे थे।

"नैना, निम्मो नहीं रही, उसे अभी ले जाएँगे।"

मैं एकदम सन्न रह गई। सादी सी सूती साड़ी डाली तुरंत हम दोनों निकल पड़े। विश्वास नहीं हो रहा था यह मेरी वही निम्मो है? सुंदर रंगों में हमेशा सजती-बजती, कभी झुमके लटकाती, कभी बुंदे सजाती। यहाँ थी नीली फूली पड़ी देह। बताया गया "डेथ सर्टिफिकेट" इकट्ठा करने में देर हो गई। घर की देहरी भर ही छुआ पाए। मुक्तहस्त सबको प्रेम बाँटने वाली की यह दशा? उस दृश्य ने उससे उपजी पीड़ा ने महीनों की नींद उड़ा दी।

पति ने आज सुबह ही बता दिया था, शाम उनके मित्र के बेटे का ऑपरेशन है, कल उसे देखने चलेंगे, फ्री रहना।

अगले दिन हम दोनों फल-फ्रूट की थैली सँभालते जिस कॉरिडोर से गुज़रे तो खुल रह गए दरवाज़े से जिसे देखा वह सुकेश ही था, चारों तरफ नलियाँ ही नलियाँ। आगे बढ़ गई मैं। रात फिर बैचेन गई। मन इतने दिनों कहीं न कहीं सुकेश को निम्मो की मौत का ज़िम्मेदार मानता। संपूर्ण दायित्व निभाते भी समाज की आँख की किरकिरी तो वह बन ही गई थी। यह समाज तब कहाँ होता जब लड़की ज़िंदा जला दी जाती है? यह समाज तब कहाँ होता है जब छोटे-छोटे खोट ढूँढ़ उसे तलाक दे दिया जाता है। जुदा होने वालों को मिला नहीं सकते, मिले हुओं को अलग करना ही इनका नियम है क्या? निम्मो ने एक बार कहा भी था। पर निम्मो विवाह के घेरे में कई सुरक्षित भी तो है नहीं तो रोज़-रोज़ अलगाव हो। वह तब हँसी भर थी, पर उसने अपनी परवाह करना छोड़ दिया था। दिल तो कमज़ोर हो ही गया था। अन्य काल-सहयोगी बीमारियाँ भी उसने गले लगा ली थी। पर प्रेम दान माँगता है। उसकी इस बिखरी ज़िंदगी का दोषी सुकेश को मानने वाला मन सुबह तक नरम हो आया।

पति से अनुनय-विनय कर, अगले दिन उसे देखने पहुँच ही गए। मुन्नी सामने बैठी थी। उठकर हमेशा की तरह गले मिली। बोली "आप ही समझाओ, पिछले पाँच महीनों से अपनी सुध नहीं इसको। बाईपास की तैयारी है।"

"सुकेश जीवन तो चलता है, आना-जाना किसके वश में है।"

सुकेश की आँखों के कोरों में फँसा पानी बह निकला। इतना ही बोला - "बस जीजी सपने में आकर रोज़ यही कहती है, मैं बोर हो रही हूँ यार, अकेले दिल नहीं लग रहा मेरा।"

घर वापस आकर अच्छी-खासी तबियत गड़बड़ा गई। अगले दिन शनिवार की छुट्टी थी। ख़ूब देर तक सोती रह गई। इतवार पति अक्सर अच्छे मूड में होते हैं। कुछ हल्की-फुल्की बातें शेयर करते हम दोनों खाने का "मेन्यू डिस्कस" कर रहे थे। बच्चों ने भी अपनी पसंद की हाज़िरी दी।

पति सुबह का अखबार पढ़ रहे थे, अचानक देखा उनकी दृष्टि स्थिर है और चेहरा उदास।

मैने घबराकर पूछा - "क्या हुआ?!

मेरी तबियत का ध्यान कर शायद उन्होंने कुछ छुपाना चाहा।

मैंने भी कहा, कुछ तो है ज़रूर।

शांति से सुनना नैना, रात सुकेश नहीं रहा। अपने आपको सर्जरी तक का मौका नहीं दिया उसने। अक्सर हम लोग क्या कहेंगे! की सोच वशा व्यक्तिगत गहन भावनाओं की गहराई नाप ही नहीं पाते। मैं स्थिर रह गई। प्रेम में बंधन तो सुने है पर ऐसी डोर सचमुच भी होती है? कानों में लगातार यही गूँजता रहा "मैं बोर हो रही हूँ यार।"

000

हाथ तो हैं न!

आशा शैली

आशा शैली
इन्दिरा नगर-2, लालकुआँ, जिला
हैलीताब-262402 (उत्तराखण्ड)
मोबाइल- 9456717150
ईमेल- asha.shaili@gmail.com

'माँ, नाराज़ हो?'' राम सरन ने सुबकती हुई माँ के कंधे पर हाथ रखा। सती ने सिर उठाकर देखा। दोनों बेटे अपराधी बने सामने खड़े थे। वह तड़प कर कुर्सी से उठी और दोनों बाजू फैलाकर बेटों को कलेजे से लगा लिया। इस बार छोटे बेटे मोनू ने पूछा,''नाराज़ हो माँ? हमने कुछ ग़लत किया क्या?? उस आदमी को देखकर ही हमें गुस्सा आ गया था।''

''नहीं बेटा! तुम दोनों ने वही किया जो तुम्हें करना चाहिए था। फिर भी वह तुम्हारा बाप है और इस समय बिलकुल लाचार है। कहाँ जाएगा? लोग दरवाज़े पर आए जानवर पर भी दया करते हैं। बस यही सोच रही थी।''

''नाराज़ मत होना माँ! तुम कहती हो तो हम उसे वापस बुला लाते हैं, पर हमारे बाप की जगह तो वह कभी ले नहीं पाएगा न? तुम्हारी तुम जानो।'' राम सरन बोला।

''पड़ा रहने दो उसे बाहर के कमरे में। दो रोटी खा लिया करेगा। क्या कमी है हमारे पास अब। उसे तो परमात्मा ने उसके कर्मों का फल दे ही दिया है।''

सती की आँखों में चमक आ गई और चेहरा खिल गया।

''ठीक है माँ! तुम कहती हो तो हम उसे खोज लाते हैं। तुम जी छोटा न करो। बस, खुश रहो। हमारे लिए तो तुम्हीं भगवान् हो। चल मोनू।'' रामू ने भाई को बाजू से पकड़ा और माँ की खुशी के लिए उस बाप को तलाशने के लिए दोनों भाई दरवाज़े से बाहर निकल गए, जो कभी उन्हें भूखों मरने के लिए बेसहारा छोड़कर किसी दूसरी औरत के पास चला गया था। बरसों बाद उसे अपने बच्चों और घर की याद तब आई जब उसे बीमार और लाचार हालत में कहीं कोई सहारा नही

था। बीमारी के कारण नौकरी छूट गई तो वह दूसरी औरत भी सारा सामान बटोर रातों-रात कहाँ गायब हो गई पता ही नहीं चला।

आज मोनू अट्ठारह वर्ष का था और राम सरन बीस वर्ष का। केसर की इसी साल शादी कर दी गई थी। तब रामू (राम सरन) दस साल का था और मोनू आठ का। छोटी केसर चार साल की थी जब उनका पिता दूसरी औरत के पास चला गया था। रोज़ की

कच-कच में रामू सब समझने लगा था। बची कसर मोहल्ले वालों ने पूरी कर दीं।

उन्हें रोज़ ही गली-मोहल्ले में सुनने को मिलता कि उनका बाप दूसरी औरत के साथ रहता है।

समय बीता, दादा भी चल दिए और अब घर में माँ बेटे ही थे। वे दोनों पढ़ भी रहे थे और माँ के साथ काम में हाथ भी बटा रहे थे। ऐसे समय में उस भगौड़े बाप को वापस लौटा देखकर दोनों का खून खौल उठा और वे माँ के कुछ कहने से पहले ही, धक्के देकर बाप को बाहर निकाल चुके थे।

सती सोच रही थी, चूक कहाँ हुई होगी। उसने तो कभी सास-ससुर के सामने मुँह भी नहीं खोला था। बहुत पढ़ी-लिखी तो नहीं थी वह, फिर भी घर की मर्यादा का ध्यान उसे रहता ही था।

हरि राम एक सरकारी कार्यालय में चपरासी था। क्या बाँका गबरू था वह तब, जब सती ब्याह कर इस घर में आई थी। सती! सुरसती यानी सरस्वती जो मायके ससुराल में सती ही बनकर रह गई थी, जान ही नहीं पाई कि उसका गबरू कब दूसरी का हो गया। पता ही नहीं चला और घर में तीन बच्चे भी आ गए, पर इससे क्या?

धीरे-धीरे हरि का समय कहीं और गुज़रने लगा और इसके साथ ही कमाई भी पराई हो गई और घर में फाके होने लगे। इस समय तक सास गुज़र चुकी थी। बेटे के रंग-ढंग देखकर ससुर ने दो कमरों का आधा कच्चा, आधा पक्का मकान बहू के नाम कर दिया। हरि राम कई दिन से अपने बापू पर दबाव बना रहा था कि मकान उसके नाम कर दे। उस दिन बाप-बेटे में इसी मुद्दे पर बहस हो ही गई,

"बापू....."

"हूँ....!" बापू ने हुक्के की नड़ी मुँह से हटाए बिना हुँकारा भरा।

"वो...मैं कह रहा था कि, तुम अब रोज़ ही बीमार रहते हो।"

"तो?"

"दो बहनें भी हैं, मकान का कुछ कर देते तो.....!" उसने बात अधूरी छोड़ दी।

"वह तो मैं कर चुका हूँ। कल ही तो कर के आया हूँ बहू के नाम। वैसे तुम क्या सोचते हो, मैं मरने वाला हूँ?" बापू ने हुक्के से मुँह हटाते हुए जवाब दिया और फिर लापरवाही से हुक्का पीने लगा। हरि राम को यह उम्मीद बापू से कतई नहीं थी। पहले तो वह सकपकाकर बापू को देखता रहा, फिर एकाएक भड़क उठा, "तुम्हें अपने बेटे से ज़्यादा यह पराई लड़की प्यारी हो गई?"

"हाँ! अब तो है ही। मैं तुम्हारे रंग-ढंग देख ही रहा हूँ। दो-दो दिन घर नहीं आते। घर में खर्चा नहीं देते। यह नहीं सोचा कि घर के लोग कैसे जी रहे हैं। यह लड़की ही पराई है न? यह बाप तो तुम्हारा है और ये बच्चे भी तुम्हारे हैं। यह कच्चा-पक्का मकान ही सही, छत तो है हमारे सिर पर।" कहकर बापू उठकर बाहर निकल गया।

हरि अपने बापू को अच्छी तरह जानता था। अब कुछ नहीं हो सकता, उसने अपना सारा गुस्सा सती पर निकाला।

"हरामखोर! यह सब तेरा ही किया-धरा है। मेरे बाप को मेरे ख़िलाफ़ कर दिया। ले..." और हरि राम के लात-घूँसे चलने लगे तो बच्चों ने चिल्लाना शुरू कर दिया। रामू रोते-रोते माँ के निकट गया तो एक लात उसके भी पड़ गई। सती अपना दर्द भूलकर रामू की तरफ लपकी। गुस्से में बुड़बुड़ाता हरि उसी समय से उस दूसरी औरत के साथ रहने लगा और लौटकर नहीं आया।

गला सूखने लगा तो सती ने उठकर पानी पिया और फिर उसी कुर्सी पर आ बैठी जहाँ बेटे उसे छोड़ गए थे।

वह दिन चलचित्र की तरह उसके सामने नाच उठा जिस दिन हरि घर छोड़कर गया था। घर में राशन भी ख़त्म था और उसके पास कुछ बचा भी नहीं था। उसने सोचा था कि पति के घर आने पर वह उससे चिरौरी करके कुछ पैसे ले ही लेगी ताकि राशन ला सके, पर सब कुछ उलट-पलट गया। हरि ने जाते-जाते साफ कह दिया था कि वह अब कभी लौटकर इस घर में नहीं आएगा और वह नहीं आया।

उस दिन संध्या के भोजन के लिए जब उसने रसोईघर खंगाला तो मुश्किल से दो समय के लिए आटा और कुछ थोड़ी दाल बची थी। क्या करे, हरि के स्वभाव को वह जानती थी, कह गया है तो अब कभी नहीं आएगा। तीन बच्चे, ससुर और उसका स्वयं का पेट? क्या होगा अब.....?? फिर भी रात का भोजन बनाकर उसने जैसे-तैसे सब को खिलाया और एक रोटी ख़ुद भी खाई।

झगड़ा होना तो यूँ तो रोज़ की ही बात थी पर हरि की वह घोषणा.....? रात भर सती को नींद नहीं आई। उधर ससुर भी जाग रहे थे। वे भी अपने बेटे के जिद्दी स्वभाव के कारण चिंतित थे परन्तु वे यह भी जानते थे कि मकान हरि के नाम करने के बाद उन पाँचों प्राणियों को सड़क पर आना ही है। समस्या की गम्भीरता को जानते हुए ससुर-बहू दोनों अपने-अपने खोल में चक्कर खा रहे थे। रात के बचे खाने से दिन का काम चलाना विवशता थी ताकि बचा राशन रात के काम आ सके। बच्चे क्या जाने क्या मुसीबत आई है, अचानक सती ने अलमारी खंगालनी शुरू कर दी। पर अलमारी में था क्या जो उसे मिल जाता। दरअसल कभी- कभी बचे पैसे वह

अलमारी के किसी कोने में डाल दिया करती। वह उन्हीं को तलाश कर रही थी। सारे कोने खंगालने के बाद सती को कुछ सिक्के और दस-दस के दो नोट मिले। सती ने पैसे गिने, कुल मिलाकर वे पैंतालीस रुपये थे। सती ने वे पैसे सँभालकर रुमाल में बाँध लिए, क्या होगा इससे?

शाम के पाँच बज गए थे, आज बापू ने भी चाय नहीं माँगी थी। न ही सती को याद आया कि बापू को चाय देनी है। सती ने राशन के लिए थैला उठाया और बाहर निकल गई। चलते-चलते वह गली से बाहर निकल आई पर उसे यह समझ में नहीं आ रहा था कि वह करे क्या? इन पैंतालीस रुपयों में क्या होगा? उसे यह भी पता नहीं था कि वह जा किधर रही है। बस चल रही है उसे लग रहा था कि वह किसी के पीछे चली जा रही है। दिन बड़े थे इसलिए अँधेरा होने में अभी देर थी। बहुत समय हो गया था उसे चलते-चलते।

"अरे किधर जा रही हो बेटी, सामने देखो बैल आ रहा है। एक तरफ हटो।" एक तरफ से आती आवाज़ ने उसे चौंका दिया। उसने सामने देखा, वह सब्ज़ी मण्डी में खड़ी थी। तभी किसी ने उसे धक्का देकर एक तरफ हटा दिया, "नींद में हो क्या?"

उसने देखा एक बुज़ुर्ग से लगने वाले व्यक्ति ने उसे धक्का न दिया होता तो वह सामने से आते बैल के सामने पड़ जाती और बैल उसे मार भी सकता था। वह हारकर एक बंद दुकान के बाहर बैठ गई। वह बुज़ुर्ग उसके पास आकर बैठ गए।

उन्हें लग रहा था कि सामने वाली महिला बहुत अधिक परेशान है।

"क्या हुआ बेटी? मैं कोई मदद कर सकता हूँ क्या तुम्हारी?"

"आँ, हाँ.....नहीं-नहीं। मैं ठीक हूँ।" उसने अपने हाथ में पकड़े थैले को टटोला। उसे लगा कि शायद उसके पैसे न गिर गए हों। रुमाल को सलामत देखकर उसके चेहरे पर एक सुकून की रेखा दौड़ गई। जो तुरन्त ही वापस लौट गई। वह फिर सोचने लगी कि इन पैसों का क्या होगा। ये तो चार दिन के राशन के लिए भी पर्याप्त नहीं हैं। निकट बैठे सज्जन ने फिर पूछा, "सब्जी लेने आई हो क्या? हाँ! यह ठीक समय है। इस समय सब्ज़ी सस्ती मिलती है। जाओ, ले लो। ये ठेले वाले घर जाने के लिए बची हुई सब्जी सस्ती दे देते हैं।" कहकर वे एक तरफ हो लिए और सती एक ठेले के पास जा खड़ी हुई जिस पर थोड़े-से मटर रखे थे।

"कितने के दे रहे हो?"

"ले लो बहन। सारे दस रुपए में दे दूँगा। देखो एकदम ताज़ा मटर है।" पर सती कुछ सोच नहीं पा रही थी। तभी ठेले वाला फिर बोला, "चलो नौ रुपए दो।" और उसने अन्यमनस्क-सी सती के हाथ से थैला ले लिया और सारे मटर उस में डालकर पैसों के लिए हाथ फैला दिए। सती ने बिना कुछ सोचे उसे नौ रुपए गिनकर दे दिए। मटर लेकर सती आगे बढ़ गई और कुछ और सब्ज़ियाँ लेकर वापस लौटने लगी। पर अभी उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह इन सब्जियों का करेगी क्या?

जब वह सब्जी से भरा थैला लेकर घर लौटी तो ससुर भी परेशान हो गए। "बहू! क्या करोगी इतनी सब्जियों का?"

"पता नहीं।" उसका उत्तर था। फिर वह रसोई में चली गई। बच्चे खाना माँगने लगे थे। वे थे तो बच्चे ही। लगता है उन्हें पिछले कल की बातें याद ही नहीं थीं। खाना बनाने तक उसने बच्चों को मटर छीलने के लिए बैठा दिया। अब सती ने रात ही रात में पूरी सब्जियाँ धो-काट कर रख दीं। पर अभी भी उसे समझ में नहीं आ रहा था कि इन का वह करेगी क्या। फिर अगली सुबह वह उन कटी सब्ज़ियों को लेकर एक दूर के मुहल्ले में चली गई और घरों में जाकर उसने वे सारी कटी सब्जियाँ बेच दीं।

सौ रुपए हाथ में आते ही सती की जान में जान आई। मन में एक नई आशा का संचार हुआ। दूसरे दिन फिर वह सब्जी मण्डी में थी। अब यह हर रोज़ का नियम बन गया। घर में बच्चे और ससुर भी काम में सती का हाथ बटाने लगे। घर के खर्च की अब चिंता नहीं रही। अब सती को पूरे शहर से अग्रिम आर्डर मिलने लगे। थोड़े ही समय बाद काम बढ़ गया तो उसने मोहल्ले की कुछ लड़कियाँ सहायक रख लीं।

काम और बढ़ा तो सब्जियाँ बचने लगीं। अब सती ने अपने ज्ञान का उपयोग करना ठीक समझा और अचार बनाने लगी। कुछ ही वर्षों में सती के बनाए ताज़े और स्वादिष्ट अचार की ख्याति फैलने लगी। आय बढ़ी तो घर भी पक्का हो गया और बच्चे भी निरंतर पढ़ते रहे। पूरे नगर में सती की कहानी बड़े आदर से सुनाई जाती और जहाँ भी वह जा खड़ी होती उसे भरपूर सम्मान दिया जाता। इसी बीच ससुर भी गोलोकवासी हो गए। बेटी का विवाह भी हो गया पर जीवन व्यवस्थित हो चुका था। ऐसे में हरि राम का वापस घर लौटना उसे फिर से अस्त-व्यस्त कर गया।

उसने चौंक कर देखा, काफी समय बीत गया था, बच्चे लौटकर नहीं आए थे। पता नहीं कहाँ चले गए होंगे? बच्चों को भी थोड़ा सोचना चाहिए। इतनी गर्मी नहीं दिखानी चाहिए। उसके भीतर की पत्नी ने सिर उठाया तो एक आहत स्त्री ने तुरन्त ही उसका गला पकड़ लिया, "दूसरी स्त्री के लिए उसने तुम्हारे साथ क्या अत्याचार नहीं किया, भूल गईं?"

"बहक तो कोई भी सकता है।" पत्नी ने दलील दी। तभी स्त्री ने कराहकर उसे हरि राम द्वारा की गई पिटाई से लगे घाव दिखाए। वह कराह उठी।

उठकर कमरे में जाने लगी तो दरवाज़े से ठोकर लगी तो चौंक कर देखा, गली में रामू और मोनू पिता को साथ लिए घर की ओर आ रहे थे। वह झटके से उठकर बाहर के कमरे का दरवाज़ा खोलकर वहाँ पड़ी खाट पर का बिस्तर ठीक करने लगी। तभी वह घायल स्त्री फिर फुफकार उठी। अब तक तीनों कमरे में पहुँच चुके थे।

"पटक दो इसे यहीं।"

वह बेटों की ओर घूमी, "इसे कह दो, अंदर आने की कोशिश न करे और इसके लिए पानी वगैरह रख दो। इसे लगा होगा कि हम इसके बिना भूखे मर जाएँगे। पर यह भूल गया था कि हमारे भी हाथ तो हैं।" और उसने आँगन का दरवाज़ा धड़ाक से बंद कर दिया।

000

खेल

प्रगति गुप्ता

"अंजलि! मेरी प्यारी-सी छोटी बहना।.. मेरी दोनों उँगलियों में से आँखें बंद करके एक उँगली पकड़ न..."

"क्या दीदी! आप भी न... दिन में न जाने कितनी बार अपने इसी खेल को दोहराती हो।... मुझे आपकी कोई भी उँगली नहीं पकड़नी। मुझे बहुत पढ़ाई करनी है। सवेरे से न जाने कितनी बार आपकी उँगली पकड़ चुकी हूँ। जब तक आपको अपने मन का सा ज़वाब नहीं मिलता, आप बार-बार ही इस खेल को दोहराती हो। पहले आप यह बताओ, इन उँगलियों में क्या छिपाकर रखा है?....नहीं तो आप जीतू से पकड़वाओ।.. मुझे ढेर-सा होम-वर्क करना है।"... अंजलि तो अपनी बात बोलकर होम-वर्क में जुट जाती मगर मंजरी का उदास मन फिर से छोटे भाई जीतू की मनुहार करने के लिए तैयार हो जाता।

"जीतू! मेरा लाड़ला भाई है न तू। मेरे पास आ... मेरी दोनों उँगलियों में से एक उँगली पकड़ न। आज तेरी पसंद का खाना बनाऊँगी। मेरा छोटा-सा राजा भैया है न।"... जीतू को उँगली पकड़वाते समय मंजरी हमेशा ही सोचा करती कि छोटे बच्चे ईश्वर के साक्षात् रूप होते है। वह उसके मन के जवाब से जुड़ी उँगली का ही चयन करेगा।

"नहीं दीदी! प्लीज़ अभी नहीं।... मुझे दोस्तों के साथ खेलने जाना है। मैं लौटकर आपकी उँगली ज़रूर पकड़ूँगा।... सच्ची प्रॉमिस।" बोलकर जीतू भी मंजरी के पास से उड़न छू हो जाता और वह उसे पुकारती रह जाती।

मंजरी दिन में न जाने कितनी बार अपने भाई-बहन की मान-मनुहार करती, ताकि दोनों पहले उँगली पकड़कर, उसके मन का सा ज़वाब दें। फिर अपना कुछ भी काम करें। न जाने कितनी ही बार वह इस खेल को अपने दोस्तों के बीच भी दोहराती। जब छोटे भाई-बहन या कोई भी पूछता..."इन उँगलियों में क्या छिपा कर रखती हो?... कभी यह भी बताओ। क्यों आपका मुस्कुराना और उदास हो जाना इन्हीं उँगलियों में छिपा है?... कभी इस भेद को भी खोलो।" मंजरी यही कहती 'एक दिन ज़रूर बताऊँगी'.. और पूछी हुई बातों को टाल जाती।

जब कभी मन का सा उत्तर मिल जाता, घंटों उसके होठों पर प्रेम गीत थिरकते। जब कोई मन वाली उँगली नहीं पकड़ता, एक घनी उदासी उसके चेहरे पर छा जाती। माँ इस खेल को बार-बार दोहराते हुए देखती तो मुस्कराकर कहती 'बावरी लड़की... कहीं सच में पागल न हो जाना बेटा।'... बग़ैर पूछे भी माँ कितना कुछ समझती थी। हर इंसान को वजह जाननी होती थी, पर माँ को मानों सब ही पता था। उनका विश्वास ही मंजरी का आत्मविश्वास बनता था। मन मुताबिक़ जवाब मिलना ही मंजरी को अनंत खुशियाँ दे जाता था। मंजरी को लगता कि सुवास ने चुपके से पास आकर ख़ुद को, उसके साथ होना महसूस करा दिया हो। जब भी मौक़ा मिलता सुवास मंजरी के हाथों को घंटों अपने हाथों में लेकर बैठा रहता। जिसकी हरारत उसकी हथेलियों को हरदम महसूस होती थी। तभी तो अक़्सर रात के अँधेरे में उसका अपना ही हाथ अहसासों को महसूस करने के लिए, दूसरे हाथ को पकड़ लेता।... और दूर बैठे सुवास को क़रीब ले आता। कॉलेज ख़त्म होने के बाद आख़िरी दिन मिलने पर सुवास ने बहुत प्यार से कहा था...

'मंजरी! मेरी जान हो तुम।... तुमसे मेरी साँसें चलती हैं।... जब भी मुझे याद करोगी... अपने बहुत क़रीब पाओगी। अब मैं और तुम अलग नहीं हैं। जब भी तुम्हें याद करता हूँ... अपने बहुत

प्रगति गुप्ता
58, सरदार क्लब स्कीम, जोधपुर - 342001
मोबाइल- 07425834878
ईमेल- pragatigupta.raj@gmail.com

क़रीब महसूस करता हूँ। तुम मुझमें बसी हुई हो। बिलकुल अपने नाम की ही तरह। दीवानों-सा इश्क़ करने लगा हूँ। तुम्हारे बग़ैर जीने की कल्पना करना, अब मेरे बस में नहीं।'

सुवास की अनुपस्थिति में उसकी बातों के आग़ोश में लिपटे रहना, मंजरी को सकून महसूस करवाता था। कॉलेज में संग बिताए चार सालों में दोनों बहुत क़रीब आ गए थे। मंजरी को भी सुवास के बग़ैर अपने जीवन की कल्पना अधूरी ही लगती थी। कॉलेज में गुज़ारा हुआ समय पढ़ाई का हो या दूसरे क्रिया-कलापों का दोनों का एक साथ गुज़रता था। एक दूसरे से आत्मीय जुड़ाव होना बहुत स्वाभाविक था।

कॉलेज के दिनों से शुरू हुआ उँगलियों यह खेल अब तो मंजरी के जाने के बाद ही ख़त्म होना था। न जाने कितनी ही बार वह उँगलियों के इस खेल को खेलकर, सुवास को अपने पास बुला लेती थी। कभी बहुत खुश हो जाती तो कभी उँगलियों के ग़लत चयन पर मन को समझाती कि सुवास उसके साथ ही है। खुश रहने के लिए इसी क्रम को बार-बार दोहराती।

कॉलेज के बाद आगे की पढ़ाई और नौकरियों के सिलसिले में उनका अलग-अलग शहरों को निकलना हुआ। ज़िन्दगी ने एक नई रफ़्तार पकड़ ली। शुरू-शुरू में तो हर रोज़ ही दोनों की फ़ोन पर बातें होती थी। फिर व्यस्तताओं के चलते बातों का सिलसिला, महीने में दस-पंद्रह बार की बातचीत में बदल गया। दोनों के बीच एक विश्वास था कि हमेशा साथ रहना है। अभी जो बातचीत में गैप हो रहा है, वह क्षणिक है।

समय की अदृश्य चाल बहुत शांत होती है। उससे जुड़े अनजान अंदेशों का आभास समय आने पर ही होता है। तब स्वीकारने के अलावा किसी के पास कोई विकल्प नहीं होता। ऐसे में सब इतना चुपचाप और स्वत: होता है कि आगे बढ़ने के बाबजूद भी एक कसक उम्र भर के लिए रह जाती है।

मंजरी को समय की इस चाल का आभास, एक रोज़ सुवास के सवेरे चार बजे अचानक आए हुए फ़ोन से हुआ। सुवास ने इतनी जल्दी कभी भी फ़ोन नहीं किया था।... मंजरी के दो-तीन बार हेलो बोलने के बाद भी जब वह सिर्फ़ हेलो बोलकर मौन हो गया; घबराहट और बैचेनी ने मंजरी को घेर लिया।

"कुछ बोलोगे सुवास।"... उस रोज़ मंजरी को शरीर में एक अजीब-सा रोंगटे खड़े कर देने वाला कम्पन महसूस हुआ। उसकी छठी इंद्री चैतन्य हो गई थी। सुवास ने ऐसा कभी भी नहीं किया था। वह जब भी बात करता, उसकी आवाज़ में प्रेम के अलावा गहरी आत्मीयता महसूस होती थी। उस रोज़ तो मंजरी को उसके शब्द कहीं शून्य में खोते हुए महसूस हुए।

काफ़ी देर बाद वह ख़ुद के मौन को तोड़ते हुए बोला... 'कैसी हो तुम?'...जैसे ही सुवास की आवाज़ कैसी हो तुम तक पहुँचकर थरथराई... मंजरी की आँखों की नमी कोरों तक पहुँच गई।

"बोलो न सुवास क्या हुआ है?... तुम ठीक हो न?" अनायास ही उसकी आँखें सामने दीवार पर टंगी, दुर्गा माँ की तस्वीर के आगे नतमस्तक हो गई। वह मन ही मन बड़बड़ा उठी... 'हे भगवान् सब ठीक हो।'

"तुम्हें याद है मंजरी... पिछले हफ्ते मैंने बताया था कि माँ-पापा से मिलने भोपाल जा रहा हूँ।... कल देर रात तक उनसे हुई बातों ने मुझे बहुत परेशान कर दिया है।... सारी रात नहीं सो सका।... कल तुम्हारी कमी का एहसास बहुत हुआ। काश! तुम मेरे पास होती; भींचकर गले लगा लेता।.. तभी थोड़ी राहत मिलती।... मंजरी! ऐसा लग रहा है....जैसे किसी ने मेरी जान शरीर से ज़बरदस्ती खींचकर ज़मीन पर पटक दी हो।... और मेरी भावनाओं को रौंदकर निकल गया हो।"

"सुवास! क्या हुआ है? बताओ न।"... मंजरी की धड़कनों ने भी धौंकनी-सी रफ़्तार पकड़ ली थी।... ऐसा लग रहा था मानों उसकी धड़कनों ने साथ छोड़ने का निर्णय ले लिया हो।

"मंजरी! तुम्हारे बग़ैर कैसे रहूँगा? गुज़री हुई रात ने मुझे बहुत बैचेन कर दिया है। समझ नहीं आ रहा कहाँ से बात शुरू करूँ। हाल-फिलहाल सब बिखरता हुआ महसूस हो रहा है।"... अपनी बात बोलकर वह रोने लगा। सुवास का रोना मंजरी को भी रुला गया।

"बोलो न क्या हुआ है सुवास? सब ठीक हो जाएगा।..."

"अब शायद कुछ भी ठीक नहीं होगा मंजरी।... पापा के पुराने मित्र अग्रवाल अंकल और आंटी का महीना भर पहले एक सड़क दुर्घटना में देहांत हो गया। मैंने इस दुर्घटना का तुमसे ज़िक्र भी किया था। दुर्घटना के वक़्त उनकी बेटी वर्षा साथ थी। वह इस दुर्घटना में बच गई थी। पर मल्टीपल फ्रेक्चर होने से अभी तक रिकवर नहीं हुई है।... पापा ने अंकल-आंटी के मरने से पहले, उनकी बेटी का ख़याल रखने का प्रॉमिस कर दिया था।"

सुवास की आवाज़ अब टूटने लगी थी।... अपनी रुलाई को संयत कर सुवास बोला... "मैं कल रात जब पापा-मम्मी को तुम्हारे बारे में बता रहा था... पापा बोले...'बेटा! हमसे बहुत बड़ी भूल हो गई है।... अग्रवाल मेरे बचपन का मित्र था; मैं बहुत ज़्यादा सोच नहीं पाया। तुम आने ही वाले थे, हमने सोचा तभी यह बात बता देंगें। इस दुर्घटना के बाद वर्षा के एक पैर में लचक आ गई है। जब अस्पताल में उनके रिश्तेदारों को बात करते हुए सुना कि इसकी शादी में दिक़्क़त आएगी, भावनाओं में बहकर मैंने और तुम्हारी मम्मी ने वर्षा से तुम्हारी शादी का निर्णय ले लिया। वर्षा को हमने गोद में खिलाया है।... उसे आहत होने के लिए कैसे छोड़ देते बेटा?.. मगर हमें पहले तुमसे पूछना चाहिए था।'

"मंजरी! मैंने पापा इतना भावुक और परेशान होते हुए कभी नहीं देखा। वह ख़ुद को मेरा अपराधी महसूस कर रहे हैं।.. वह उम्र के साथ बहुत संवेदनशील होते जा रहे हैं।...पापा बहुत ही सीधे और सच्चे इंसान है। अब कहते हैं.. 'जैसा तुम कहोगे वैसा ही होगा बेटा..."

सुवास ज्यों-ज्यों बोल रहा था; मंजरी की आँखें बरस रही थी। मंजरी के होंठों ने चुप्पी साध ली थी। उसे समझ ही नहीं आ रहा था कि सुवास से क्या बोले? ख़ुद को तसल्ली दे या उसे। अभी तो उन्हें कोई हल नहीं सूझ रहा था। मंजरी का दिमाग़ भी सुवास के साथ-साथ

शून्य में चला गया था।

"सुवास! कैसे रहूँगी तुम्हारे बिना। कुछ है मेरे अन्दर, जो बैठा जा रहा है।"...मंजरी के फूट-फूटकर रोकर बोलने से सुवास एकदम ख़ामोश हो गया। उसके भी सुबकने की आवाज़ें मंजरी को लगातार सुनाई दे रही थीं।

"सुवास! हम कल बात करेंगे। अभी कुछ समझ नहीं आ रहा।"... मंजरी ने अपनी बात बोलकर फ़ोन डिसकनेक्ट कर दिया। वह न जाने कब तक अपने बिस्तर पर पड़ी-पड़ी रोती रही। नौकरी की वजह से घर से दूर थी। मंजरी को उस पल माँ के आँचल की सख्त ज़रूरत व कमी महसूस हुई।

सुवास और मंजरी के बीच ऐसा कुछ भी नहीं था, जो दोनों बीच में दूरी बनता। सिवाय उस पल के जिसमें सुवास ने इस घटना को साझा किया था। इसके बाद सुवास और मंजरी हर रोज़ फ़ोन लगाते मगर उनकी समझ नहीं आता कि एक दूसरे को क्या और कैसे समझाए या सांत्वना दें। दोनों की फ़ोन पर बातचीत कुछ शब्दों से शुरू होती और नि:शब्द ही बंद हो जाती। समय के साथ धीरे-धीरे जब दोनों संयत हुए तब उनकी बातचीत बढ़ी।...

"सुवास! अगर हम वर्षा से बात करें तो। शायद वह हमारी बातों को समझ पाए। क्या करती है वर्षा?..."

"मुझे नहीं पता। मैं तो दसवीं क्लास के बाद उससे कभी नहीं मिला।... मुझे नहीं पता उसकी क्या प्रतिक्रिया होगी? पापा ने बताया अभी तो वह पूरी तरह रिकवर भी नहीं हुई है। उसकी फिजिओथेरपी चल रही है। मंजरी! पापा इन हालात में अपने बेटे पर ही विश्वास कर सकते थे। तभी उन्हें हादसे के बाद वर्षा के लिए मैं ही नज़र आया। फिलहाल मेरे दिमाग़ ने काम करना बंद कर दिया है। तुम्हें कुछ सूझे तो मुझे ज़रूर बताना।"...

सुवास की बातों में कहीं पर भी छलना नहीं थी। अगर ऐसा मंजरी के साथ भी होता तो उसकी मन:स्थिति भी यही होती।... उनका जुड़ाव बहुत गहरा था। सेटल होते ही दोनों शादी का सोच रहे थे। संस्कारों की पकड़ जब बहुत मजबूत होती है तो समझौते ख़ुद को तोड़ने से ही जुड़े होते है। यह बात उस वक़्त दोनों को गहरे से महसूस हुई। इस घटना के बाद सुवास और मंजरी की आँखों में सिर्फ आँसू थे और निर्णय भी उन दोनों को ही लेना था।

एक रोज़ मंजरी ने ही ख़ुद को कड़ाकर सुवास से कहा....'मुझसे मिलने कब आओगे सुवास आख़िरी बार?'... मंजरी के 'आख़िरी बार' सुनते ही सुवास की रुलाई फूट पड़ी। उसको रोता हुआ सुनकर मंजरी फफक पड़ी। व्यक्ति को आगे बढ़ने के लिए कुछ फ़ैसले लेने ही पड़ते हैं।

"आज ही निकलूँगा... हम कल मिलेंगे मंजरी।"... सुवास ने बस इतना ही बोलकर फ़ोन रख दिया। अगर वह फ़ोन नहीं रखता तो मंजरी रख देती। दोनों की बात करने की हिम्मत फ़िलहाल ज़वाब दे गई थी।

सुवास नियत समय पर मंजरी से मिलने उसके फ्लैट पर आया। सुवास को देखते ही मंजरी उसके गले लग गई। दोनों न जाने कितनी देर अपने आँसुओं से एक दूसरे के कंधों को भिगोते रहे। दोनों के गले लगने का कसाव कुछ ऐसा था कि अलग होते ही कहीं दोनों की जान न निकल जाए। वे जिस वर्षा और माँ-पापा के मान के लिए अपने जीवन का इतना बड़ा निर्णय लेने वाले थे, उन्हें शायद इस रिश्ते की गहराई का आभास भी नहीं था।

"मंजरी! तुम हमेशा ही मेरे साथ रहोगी। तुम्हारे बग़ैर कैसे रहूँगा?... पता नहीं। जब भी याद करोगी...मुझे अपने पास पाओगी। न मैं तुम्हें धोखा दे सकता हूँ, न ही वर्षा को दे पाऊँगा। पर मेरा जीवन तुम्हारे साथ था मंजरी। ऐसा लग रहा है कहीं मैं मर ही न जाऊँ। तुम्हारा जुड़ाव मेरी जीवनी शक्ति है।"

"सुवास! अपने प्रिय को कैसे भूलते है?... मैं नहीं जानती।... कैसे किसी और को तुम्हारी जगह दे पाऊँगी?... यह भी नहीं पता।"... मंजरी इतना-सा बोलकर ख़ामोश हो गई।

सारी रात न जाने कितनी देर तक दोनों एक दूसरे को बोलते-समझाते रहे, पर अंतत: दोनों को एक दूसरे से दूर जाना था। यही नियति थी और इसे स्वीकारने के अलावा कोई दूसरा विकल्प भी नहीं था।

मंजरी को भोर की पहली किरण के साथ सुवास को इस रिश्ते के साथ विदा करना था। उसने आख़िरी बार सुवास को नाश्ता बनाकर खिलाया और ज्यों ही विदा करने के लिए खड़ी हुई... सुवास ने फ्लैट से निकलते वक़्त मंजरी को पुन: कसकर गले लगाकर कहा...

'मंजरी! तुम्हारे साथ गुज़ारी हुई रात, मेरे जीवन की पूँजी है। तुम्हारा उँगलियों वाला खेल अब मेरा भी साथी बन गया है। हमेशा सहेज कर रखूँगा।' अपनी बात बोलते-बोलते सुवास भावुक हो गया। मंजरी के शब्द तो मानों शून्य में जाकर गुम हो गए थे। विदाई की वो घड़ी शायद दोनों के ही जीवन में मज़बूती से ठहर गई थी।

ताउम्र दोनों अलग-अलग जगह विवाह होने के बाद, ख़ुश रहने की ही बस कोशिशें करते रहे। एक दूसरे से दूर होने की कसक हमेशा के लिए उनकी आँखों की नमी बनकर ठहर गई थी। जब भी कहीं मिले अपने-अपने रिश्ते का मान रखा।

बस परिवर्तन आया तो मंजरी के उँगली पकड़ने के खेल में ही आया।... पहले उँगलियों में से एक उँगली पकड़वाते समय, वह सवाल रखती थी..

"सुवास मुझे बहुत प्यार करता है या मैं उसे ज्यादा प्यार करती हूँ।.. अगर कोई सुवास के प्यार वाली उँगली को पकड़ता, तो प्रेम गीत थिरकते थे। आज जब भी वह उँगलियाँ पकड़वाती है तो मन में सवाल रखती है. "सुवास मुझे बहुत याद करता है या मैं उसे बहुत याद करती हूँ।... अगर कोई सुवास वाली उँगली पकड़ता है। तो मंजरी बहुत ख़ुश हो जाती है और फिर सुवास की सलामती के लिए दुआएँ पढ़ती है..... 'मेरे जीते जी उसका नाम सुनती रहूँ। बस मेरी चाहत को पूरा करना भगवान्।'....

उँगलियाँ वही थीं। जिनमें आज भी उनके प्रेम की छुअन बसी हुई थी। बस प्रश्नों में थोड़ा बदलाव आ गया था। अब एक दूसरे की सलामती की दुआएँ उनमें शामिल हो गई थी।

000

नन्हें दरख़्त

ज्योत्स्ना 'कपिल'

सुबह हो चुकी थी। शीतल, सुगन्धित समीर उसके भीतर एक नई ऊर्जा भर रही थी। मम्मी ने उसे स्नेह से सहलाया तो उसके होंठों पर मुस्कान बिखर गई। उसने माँ के हाथ के इर्द-गिर्द अपनी बाहें लपेट लीं। मम्मी ने उसके मस्तक पर स्नेह चिह्न अंकित कर, उसे दुलराया। अलस भाव से वह उठ खड़ा हुआ। थोड़ी देर बाद स्कूल के लिए तैयार होकर निकला तो उसका चेहरा दमक रहा था। तभी उसके बेस्ट फ्रेंड राहुल ने उसे आवाज़ लगाई। वह दौड़ता हुआ बाहर निकला। स्कूल बस आ चुकी थी। दोस्तों के साथ चहकता, कूदता, वह बस में सवार हो गया। सब अपनी- अपनी बातें, अपने अनुभव बता रहे थे। स्कूल आया तो उसने अपने दोस्तों के साथ, एक दूसरे को मज़ाक में हाथ मारते हुए क्लास की ओर दौड़ लगा दी। वह अंधाधुंध दौड़ा जा रहा था, कि अचानक उसकी क्लास टीचर ने उसे पकड़कर झिंझोड़ डाला।

"अथर्व बेटा उठ जा, लोकेशन आ गई।" मम्मी ने कहा तो वह स्वप्न से जाग गया। एक मीठा स्वप्न टूट गया था। उसने दृष्टि दौड़ाई तो पाया, कि उनकी कार, आर. आर. स्टूडियो के सामने खड़ी है। आसपास का जायज़ा लेते हुए, उसका खिला हुआ चेहरा मुरझा सा गया। उसके भीतर एक तीखी उदासी भरती चली गई।

"चल बेटा, गाड़ी से उतर" मम्मी ने उसे लाड़ से कहा, पर वह न जाने किस सोच में पड़ा था। उसका जी चाह रहा था कि वह कहीं गायब हो जाए, जहाँ उसके ख़ूब सारे दोस्त हों। वह उनके साथ स्कूल जाए, टिफ़िन शेयर करे। क्रिकेट, हॉकी, फुटबॉल, बैडमिंटन खेले। उनके साथ साइकिलिंग करे। पार्क में जाए, ख़ूब धींगामुश्ती करे। उसकी आँखों में मायूसी थी।

"अथर्व बेटा, क्या सोच रहे हो ? देर हो रही है, अंदर चलो।" मम्मी ने उसका हाथ पकड़कर बाहर की ओर खींचा, न चाहते हुए भी, वह बाहर आ गया। फ़िर मम्मी उसका हाथ पकड़े हुए उसे लेकर स्टूडियो के अंदर चल दीं। नायक के साथ फिल्माए जाने वाले दृश्य की शूटिंग चल रही थी। वह यंत्रचालित सा मम्मी के साथ चलता हुआ अपनी कुर्सी पर बैठ गया। एक असिस्टेंट उसे दृश्य समझा रहा था, परन्तु अथर्व का ध्यान न जाने कहाँ था।

"क्या बात है बेटा ? कोई परेशानी है ?" मम्मी ने पूछा तो उसने इंकार में सर हिला दिया।

"मेरा राजा बेटा आइस्क्रीम खाएगा ?" उन्होंने पुन: पूछा। उसने अस्वीकृति में सिर हिला दिया।

"चाकलेट खाएगा ?" उसने फिर से इंकार कर दिया। मम्मी ने उसे स्पर्श करके देखा, तो देह का तापमान भी सामान्य निकला। उन्हें लगा कि शायद वह कहीं घूमने जाने को बेचैन है।

"बेटा अभी शूटिंग निबटा लो, फिर हम आपको घुमाने चलेंगे।" उसने जवाब न दिया। बस सूनी नज़रों से उन्हें ताकता रहा।

शॉट रेडी होने पर अथर्व को बुलाया गया। वह अन्यमनस्क सा मम्मी के साथ चल दिया। फ़िल्म में वह नायक का पुत्र बना था। दृश्य में उसके पिता उसके लिए, उसका मनपसंद रिमोट वाला हेलीकॉप्टर लेकर आते हैं और वह प्रसन्नता से उछल पड़ता है। क्लैप के बाद शॉट शुरू

ज्योत्स्ना 'कपिल'
18- ए, विक्रमादित्य पुरी, स्टेट बैंक कॉलोनी, बरेली - 243005
मोबाइल- 9412291372
ईमेल- jyotysingh.js@gmail.com

हुआ, परन्तु अथर्व के चेहरे पर प्रसन्नता के भाव न आ सके। वह निरुत्साहित सा अपना पात्र अभिनीत कर रहा था। एक के बाद एक रीटेक हो रहे थे। हर रीटेक के बाद उसकी ऊर्जा समाप्त सी होती लग रही थी। सब आश्चर्य से उसे देख रहे थे। जो बच्चा बड़े उत्साह से दो तीन बार में अपना शॉट ओके करवा लेता था, आज एकदम भावशून्य लग रहा था। वहाँ उपस्थित पूरी यूनिट हैरान थी, अथर्व को आज क्या हो गया ? इतना मायूस और निरुत्साहित क्यों हो रहा है ? उसकी मम्मी से पूछा तो उन्होंने अनभिज्ञता ज़ाहिर कर दी। एक बार पुनः दृश्य प्रारम्भ किया गया। नायक समीर खान जैसे ही हेलीकॉप्टर लेकर आता है और बेटे की ओर बढ़ाता है, अथर्व की आँखों से अश्रु टपक पड़े। यह देखकर समीर ने उसे हृदय से लगा लिया

"क्या बात है दोस्त, आज इतने उदास क्यों हो ?" वह फूट फूटकर रो पड़ा। समीर ने उसे गोद में उठा लिया। जितना उसे चुप कराने का प्रयास किया, वह उतना ही बिलखने लगा। अंत में उस दिन का शॉट अगले दिन फिल्माने का निर्णय लिया गया। अथर्व की माँ स्मिता उसे लेकर चिंतित सी गाड़ी में आकर बैठ गई। अथर्व उदास सा माँ से चिपका बैठा था। गाड़ी दौड़ी जा रही थी।

स्मिता हैरान परेशान सी बैठी थी। उसके नेत्रों में कुछ वर्ष पूर्व के दृश्य घूम रहे थे। पाँच वर्ष का अथर्व, टीवी और फिल्मों में जो देखता, उसे हूबहू दोहरा देता था। उसकी इस अदा पर सभी रीझ जाते थे। जहाँ जाता, सब उसे अभिनेता, अभिनेत्री की, नकल उतारने को कहते। वह भी खुश होकर तुरन्त नकल उतारने लगता। लोगों के द्वारा की गई, तीव्र करतल ध्वनि, उसे उछाह से भर देती थी। माता-पिता को अपनी इस विलक्षण संतान पर बहुत गर्व था। ऐसे में टेलीविज़न पर अन्य रियलिटी शो की तरह, बच्चों के लिए, एक रियलिटी शो शुरू होने वाला था, "कौन बनेगा कलाकार"। जिसके लिए ऑनलाइन रजिस्ट्रेशन व उसके बाद ऑडिशन होना था। स्मिता व उसके पति के मन में भी अपने बेटे को कलाकार बनाने का सपना पलने लगा। क्यों न हम भी एक बार भाग्य आजमाकर देखें ! पति-पत्नी दोनों ने एक दूसरे को सपनीली दृष्टि से देखा। शायद उनके स्वप्न सच हो जाएँ! अथर्व के भाग्य के सितारे कुछ ज़्यादा ही प्रबल थे। उसका रजिस्ट्रेशन भी आसानी से हो गया और फिर ऑडिशन में भी चुन लिया गया।

माता-पिता के सपनों को पंख लग गए और नन्हा अथर्व अचानक ही सेलिब्रिटी बन गया। शो की, एक के बाद एक पायदान, को अपने नन्हें कदमों से नापते हुए, वह अंतिम चरण तक पहुँच गया और शो का खिताब हासिल कर लिया। रातों रात वह शहर का सबसे चर्चित और चहेता बच्चा बन गया, जिसके हुनर व भोले चेहरे को देखकर हर कोई मोहित हो उठता। बस फिर अथर्व को अवसर मिल गया, सबके चहेते स्टार, अजय कुमार के साथ काम करने का। अथर्व के अभिनय ने सबका ध्यान खींचा और उसे एक के बाद एक फ़िल्म, और ढेर सारे विज्ञापनों के प्रस्ताव मिलते चले गए।

कुछ ही समय में वह सबका दुलारा, बाल कलाकार बन गया। कई हिट फिल्में खाते में आ जाने से, अच्छी कमाई भी होने लगी और स्मिता व उसके पति के सपने, बच्चे के माध्यम से पूरे होने लगे। ढेर सारा पैसा, लोगों के मध्य महत्त्वपूर्ण हो जाना, यह सब उन दोनों को अति महत्वाकांक्षी बना रहा था। अब धन के सिवा बाकी सभी चीज़ों का महत्त्व उनकी दृष्टि में गौण हो गया था। शुरू में तो अथर्व के स्कूल का इतना नुकसान नहीं होता था। परन्तु जैसे-जैसे काम बढ़ता गया, उसका स्कूल छूटता सा चला गया। एक ट्यूटर लगा दिया गया। जिससे उसकी पढ़ाई तो सुचारू रूप से चल रही थी, पर उसे खेलने या दोस्तों से मिलने का समय नहीं मिलता था। अथर्व अक्सर स्कूल के दिनों को याद करके उदास हो जाता। अब उसे दोस्तों के साथ खेलने का समय भी नहीं मिलता। जब समय मिलता, तो फ़िल्म के सेट पर, वह अपना होमवर्क व पढ़ाई करता।

उसका मन बहलाने के लिये मम्मी-पापा ने उसे महँगा वाला टैबलेट दिला दिया था। जिसमें कई गेम पड़े हुए थे। शुरू में तो वह टैबलेट पाकर निहाल हो गया था। उसमें पड़े गेम खेलने में बहुत मज़ा आता था। जब गेम से ऊब जाता, तो यूट्यूब पर कार्टून देख लेता। पर गुज़रते समय के साथ वह ऊबने लगा था। उसके भीतर गहरी उकताहट व खीज भरने लगी थी। अब उसे अपने दोस्तों की याद आने लगी थी। उसका मन उनके साथ भागने-दौड़ने को करने लगा था। वह उनके साथ आसमान में बहुत ऊँची पतंग उड़ाना चाहता था। रेस लगाना चाहता था। तितली पकड़ना चाहता था। वह हरे सुकोमल पत्तों पर थमी ओस की बूँद इकट्ठी करना चाहता था। पंछियों की अठखेलियाँ देखना चाहता था।

पापा ने उसे बैटरी वाली कीमती बाइक दिला दी थी। पर उसे चलाने में वह मज़ा कहाँ, जो दोस्तों के साथ साइकिल चलाने में आता। अब उसके चेहरे की मुस्कान गायब होने लगी थी। उसका बचपन, उसकी शरारतें, न जाने कहाँ गुम हो गई थीं। अब अचानक ही वह वयस्क हो गया था। घर का सबसे ज़्यादा कमाने वाला सदस्य। सबके सपने पूरे करने वाला, उनकी ख्वाहिशों को ऊँची परवाज़ देने वाला। उसके भीतर का बच्चा, धीरे-धीरे मुरझा रहा था, दम तोड़ रहा था। उसके अभिभावक सब कुछ भूलकर दोनों हाथों से धन व प्रसिद्धि बटोर रहे थे। एक अंधी दौड़ थी, जिसमें वह अंधाधुंध भागे जा रहे थे। उन्हें दम लेने की फुर्सत न थी। वे जानते थे कि बाल कलाकार की अभिनय यात्रा, बस कुछ ही समय की होती है। अथर्व दस वर्ष का हो चुका था। इसलिए जितना हाथ बढ़ाकर हासिल कर सकते हो, कर लो। बाद में कोई पूछने वाला नहीं होगा। इतिहास गवाह है कि कोई भी बाल कलाकार, बड़ा होकर सफलता का मुकाम नहीं हासिल कर सका है। इसलिए बस यही थोड़ा समय है। जिसे वह कसकर अपनी मुट्ठी में बाँध लेना चाहते थे। अथर्व उनका मनपसंद खिलौना था। जो उनकी मर्ज़ी से सब कुछ करता था।

कई बार वह नींद में होता पर मम्मी-पापा उसे लाड़ से कहते कि बेटा अपना एक्ट करो, और वह नींद भूलकर कठपुतली की तरह

उनके आदेश का पालन करने लगता। उसके आसपास के बच्चे, यूनिफॉर्म पहनकर स्कूल जाते, पार्क में खेलते- कूदते, मस्ती करते, और अथर्व उन्हें ललचाई नज़रों से देखता रहता। उसे वह सब बच्चे बहुत खुशकिस्मत लगते। उसे यह भी हैरानी होती कि वे बच्चे कमाते नहीं हैं, बल्कि बेफिक्र होकर मस्ती करते हैं और काम पर उनके 'पिता' जाते हैं।

अभी उस दिन की ही तो बात है। शूट पर जाते हुए बारिश हो रही थी। एक जगह झुग्गी झोंपड़ी के इलाके में थोड़ा पानी जमा हो गया था। मैले, जीर्ण वस्त्रों में कुछ बच्चे, उस पानी में धमाचौकड़ी मचा रहे थे, एक दूसरे पर पानी उछाल रहे थे। अथर्व का मन एकदम से उन बच्चों के साथ पानी में छपाक-छपाक करने को मचलने लगा, पर यह किसी भी कीमत पर संभव नहीं था। अगर वह अपनी यह ख्वाहिश मम्मी पर जता भी देता तो वह उसे झिड़क देतीं। वह कहतीं कि वे सब गंदे बच्चे हैं, वह उनके साथ खेलने की सोच भी कैसे सकता है ! उसने दृढ़ता से अपने होंठ भींच लिये। मम्मी ने उसे अपने आप से चिपका रखा था। उसने स्वयं को उनकी पकड़ से छुड़ाया और अलग होकर बैठ गया।

मम्मी ने एक बार उसे हैरानी से देखा, कुछ कहने को हुईं, फिर मौन रह गईं। घर पहुँचा तो सीधा अपने कमरे में चला गया। वहाँ जाकर उसने न कपड़े बदले और न जूते उतारे, ऐसे ही बिस्तर पर पड़ गया। उसे पुराने दिन याद आ रहे थे। वे दिन जब वह फिल्मों में काम नहीं करता था। तब कितना मज़ा आता था दोस्तों के साथ। एक बार सनी ख़ूब सारे टैटू लेकर आया था, फिर उन सबने अपने हाथों पर टैटू बनाए थे। वह सभी टैटू सुपर हीरोज़ के थे। अथर्व ने आयरन मैन का टैटू लगाया था। उस समय वह स्वयं को वास्तव में आयरन मैन ही समझ रहा था। पापा का हेलमेट लगाकर वह बात करता हुआ, झूठमूठ की लड़ाई कर रहा था और दुश्मनों को धूल चटा रहा था।

बारिश होती थी, तो भीगने में कितना मज़ा आता था। वह बारिश के पानी में नहाता था। अब तो कभी भीगना चाहता है, तो मम्मी मना कर देती हैं। वह कहती हैं, कि भीग कर वह बीमार पड़ जाएगा, फिर शूटिंग पर नहीं जा पाएगा। इससे ख़ूब सारे पैसों का नुकसान होगा। मम्मी-पापा को तो अब पैसे के सिवा कुछ सूझता ही नहीं। यह तो है, कि अब उसके पास महँगे- महँगे ढेरों खिलौने हैं, पर उन्हें अकेले खेलने में कोई मज़ा नहीं। अब वह मनपसंद चीज़ नहीं खा सकता। हर वक़्त बीमार होने का डर। गला खराब होने की चिंता। मम्मी-पापा को अब उसकी नहीं, बस पैसे की चिंता ही रहती है। उसे कुछ नहीं चाहिए, बस अपना स्कूल, अपने दोस्त चाहिए। दूसरे बच्चों की तरह उसे खेलना, पढ़ना, उछल कूद करना है। पतंग उड़ानी है, बारिश के पानी में नहाना है। अगर कहीं वह चुपके से गायब हो जाए, और मज़े से खेले कूदे, तो मम्मी-पापा को कैसा लगेगा ? उसने स्वयं से प्रश्न किया। तभी मम्मी के आने की आहट हुई। उसका उनसे बात करने का मन नहीं था, इसलिए उसने आँखें बंद कर लीं और सोने का नाटक करने लगा। मम्मी ने उसके सिर पर हाथ फेरा।

"लगता है बहुत थक गया है, आज जूते भी नहीं उतारे।" वह बुदबुदाई और उसके जूते खोलकर यथास्थान रख दिये। फिर वह वहाँ से निकल गईं। अथर्व ने फिर से अपनी दृष्टि छत की ओर गड़ा दी। फिर मम्मी-पापा के, बातें करने के स्वर से उसकी तन्द्रा भंग हुई। मम्मी कह रही थीं-

"आजकल अथर्व बहुत उदास हो जाता है। वह अपने स्कूल, अपने दोस्तों को बहुत मिस करता है। कई बार तरस आता है उस पर।" मम्मी का वाक्य सुनकर वह आगे की बात सुनने को उत्सुक हो गया।

"ऐसा चांस किस्मत वालों को ही मिलता है। सोचो हमारा अथर्व कितना किस्मत वाला है। हर जगह उसे रास्ता मिलता गया और वह आगे बढ़ता गया।" पापा ने जवाब दिया।

"पर वह नॉर्मल बच्चों जैसी लाइफ तो नहीं जी पा रहा।"

"तो ज़रूरत भी क्या है ? वह नॉर्मल बच्चा नहीं है। गिफ्टेड चाइल्ड है। नाम और पैसा उसके हाथ की रेखाओं में है।"

"जिसकी कीमत वह अपना बचपन खो कर चुका रहा है।" मम्मी ने दार्शनिक स्वर में कहा।

"तुम ओवररिएक्ट कर रही हो स्मिता। अब किया भी क्या जाए। काम तो उसे करना ही पड़ेगा। उसके चक्कर में, अब मेरी नौकरी भी चली गई। अगर वह काम करना छोड़ देगा तो हमारा घर कैसे चलेगा ?" पापा ने कठोर स्वर में कहा। यह सुनकर अथर्व सोच में पड़ गया।

"अब तो हमारी छुटकी भी पाँच साल की हो गई है। क्यों न हम उसे भी अब चाइल्ड आर्टिस्ट के तौर पर लॉन्च कर दें। अपने भाई की तरह वह भी मशहूर हो जाएगी और घर में डबल पैसा आने लगेगा।" मम्मी ने सुझाव दिया।

"हाँ, कह तो तुम ठीक ही रही हो। वैसे भी अथर्व को मुश्किल से दो साल तक काम और मिल जाएगा। उसके बाद क्या होगा ?"

सुनते हुए थोड़ी देर में वह गहरी नींद में गुम हो गया।

सुबह नाश्ते के समय मम्मी छुटकी को कह रही थीं-

"अब मेरी गुड़िया भी भैया की तरह काम करेगी, और टीवी पर आएगी, है न ?" उन्होंने गोद मे बैठी गुड़िया उर्फ छुटकी उर्फ सान्या से कहा। उत्तर में सान्या ने स्वीकृति में सिर हिला दिया।

यह सुनते ही नाश्ता करते हुए अथर्व का हाथ रुक गया। उसने एक नज़र मम्मी, पापा और फिर सान्या पर डाली।

"गुड़िया, बस स्कूल जाएगी, अपने दोस्तों के साथ खेलेगी म... मैं तो अब बड़ा हो गया हूँ।" यह कहकर उसने जैसे स्वयं को सांत्वना दी और नाश्ता छोड़कर उठ गया। मम्मी ने उसके चेहरे की तरफ़ देखा, तो उन्हें महसूस हुआ जैसे उसके चेहरे पर अचानक एक नया बुर्जुआ चेहरा उग आया है और उसके नाज़ुक कंधे फौलाद में तब्दील होते जा रहे हैं। उधर अथर्व सिर उठाए हुए दृढ़ कदमों से चला जा रहा था। सचमुच एक रात में ही वह बहुत बड़ा हो गया था।

000

खिड़की

डॉ. संध्या तिवारी

एक-एक रद्दा सीमेंट लगा कर कमरे की खिड़की ऐसे बंद की जा रही थी जैसे अनारकली को बीच में खड़ा करके उसके चारों ओर दीवार चिनी जा रही हो।

मैं उसे सूखी आँखों से अपलक देख रही थी। उस खिड़की की मौत पर मैंने न आँसू बहाये और न छाती कूटी। लेकिन उसकी मौत पर दिल हज़ार-हज़ार मौत मरा। नामुराद दिल है कि एक बियावान कब्रिस्तान जहाँ सैकड़ों इच्छाएँ दफन हैं और हज़ारों की लाशें दफनाए जाने की कतार में हैं।

"शेफाली दी, यहाँ क्यों खड़ी हो चलो न उधर। आप जब भी मायके आती हो यहीं इस पुराने पोर्शन में आकर खड़ी हो जाती हो। आख़िर हम भी तो जाने यहाँ आपका कौन सा खज़ाना गड़ा है...घर के इस टूटे-फूटे हिस्से में आपकी यादें भी और आपकी नाल भी, लेकिन ऐसा क्या कि सबको छोड़कर जब भी मौका लगता है तब आप यहीं आकर खो जाती हो। अरे भई! बंटवारा हो तो इस हिस्से को आप ही रख लेना। अब तो सरकारी हुकुम भी है।" बात हँस कर कही गई थी लेकिन बात का फलक़ धारदार था, सीधा दिल को चीरते हुए गया। भाभी मुझे क्या करना है इस हिस्से का। जितना भाग्य ने दिया है उसी में खुश हूँ। यह सब कहना चाह के भी नहीं कह पाई; क्योंकि जैसे महिषासुर अपने भैंसे के शरीर से आधा निकल पाया था तभी भगवती का त्रिशूल उसकी छाती छेद गया ठीक वैसे ही मैं भी अतीत के खोल से बाहर निकल ही रही थी कि भाभी के व्यंग्य बाणों से बिंध गई।

अम्मा जिस खिड़की के पास बैठी थीं वह एक लोहे के फ्रेम वाली ख़ूबसूरत खिड़की थी। उसके पल्ले दूध से सफ़ेद शीशे के थे और उन पल्लों की फ्रेमें भी सफ़ेद पेंट से सजी हुई थीं; जिसमें एल्युमीनियम की छोटी-छोटी सिटकनियाँ लगी हुईं थीं। उसके ग्रिल का मोटिफ़ बर्फी के आकार का था और गली में खुलती उस खिड़की पर महीन जाली भी लगी हुई थी। इस खिड़की पर आसमानी रंग के बेस पर सुर्ख गुलाब के फूलों की और उन पर रंग बिरंगी उड़ती तितलियों का डिज़ाइन बना था। नीले निरभ्र पर्दे आसमान और अपनी संपदा पर मुस्कराती धरती का अहसास करा रहे थे।

पच्चीस साल पहले मेरी वाली खिड़की इतनी समृद्ध क्यों न थी...? क्यों उसमें लोहे की ग्रिल नहीं थी? क्यों उसके आर-पार की सीमा सिर्फ लोहे की छड़ों से तय होती थी? क्यों उसे रद्दों से ही बन्द होना था? क्यों उसमें जाली नहीं लग सकती थी ?

पच्चीस साल की सीलन और दमघोंटू हवाएँ मेरे और उस ईंट, सीमेंट जड़ी खिड़की के बीच ऐसे पसरी हुई थीं जैसे कोई बदबूदार स्कंक हाइबरनेशन में हो...।

"शेफाली चल जल्दी देर हो गई।" अन्वी दरवाज़े से ही शोर मचाती हुई घर में दाखिल हुई।

"हाँ चल रही हूँ, ज़रा चोटी गूँथ लूँ" मैंने कहा।

डॉ. सन्ध्या तिवारी
श्री राजेश तिवारी, 38, बेनी चौधरी, निकट वाटर वर्क्स, पीलीभीत, 262001, उप्र
मोबाइल- 7017824491
ईमेल- sandhyat70@gmail.com

"अरे! तेरी चोटी... पहला पीरियड मिस हो गया तो खान सर कच्चा चबा जाएँगे।" अन्वी ने बेचैनी भरे शिकायती लहज़े में कहा।

"चल भई... लेकिन एक मिनट, आज तो प्रोज़ का पीरियड है न देख तो मैंने पोएट्री की किताब रख ली।" मैंने जल्दी से अपनी चेन लगी फाइल खोली और पोएट्री की बुक मसहरी पर फेंक प्रोज़ की बुक रख ली। पैरों में स्लीपर फँसाते हुए घर के बाहर दौड़ ही तो लगा दी थी, यदि अम्मा ने पीछे से पुकारा न होता तो अब तक गली के मुहाने पर होती।

"शेफू टिफिन..." उन्होंने ऊँचे स्वर में पुकारा।

मैं वापस घर की ओर मुड़ी ही थी कि अन्वी ने मेरी कलाई थाम कर लगभग घसीटते हुए कहा, "रहने दे, पहले ही देर हो गई है... चल कॉलेज कैंटीन से समोसे मँगा कर खा लेंगे।"

मेरा को-एड कॉलेज घर से लगभग दो किलोमीटर दूर बसाहट के एक सूनसान छोर पर स्थित था। कॉलेज के सामने बने गिरजाघर का बड़ा सा घण्टा समाधिस्थ मुनि सा अडिग अडोल एक लोहे के मुड़े हुए खंभे के छोर से लटका ग्रीष्म, वर्षा, आतप एक ही मुद्रा में सहन करता था या शायद उसे रविवार को कोई बजाता होगा, जब कॉलेज छह दिनों की दौड़-धूप के बाद एक गहरी नींद सोता होगा।

मैं और अन्वी पहली बार गर्ल्स इंटर कॉलेज से को-एड में आगे की पढ़ाई करने पहुँचे थे। नई वय में नया जोश, नई उमंग, नई उम्मीदें, दुनिया की हर चीज़ जादुई मालूम होती थी। यूनिफॉर्म की छूट, आने-जाने की छूट,पीरियड लेना है या नहीं लेना इसकी छूट। आज़ादी ही आज़ादी। लड़के लड़कियाँ एक साथ क्लास अटेंड करने के नाम से ही एक गुदगुदी सी दौड़ जाती। कभी वे हम लड़कियों की कॉपी माँगेंगे, कभी हम उनकी। और इसी बहाने... सोच में ही मन पुलक से भर जाता था। पलकें कल्पना में ही लजाकर झुक जाती थीं। मन में ऐसा रोमांच होता कि रोएँ खड़े हो जाते। तिस पर भी महाविद्यालय का पसारा बीघों में... कला संकाय, वाणिज्य संकाय, विज्ञान संकाय की अगल-अलग बिल्डिंगें। सबके आगे उनके अपने हरे भरे मैदान, करीने से किनारे-किनारे सजी अंग्रेज़ी गुलाब की क्यारियाँ। सभी संकायों की इमारत के खंभों से लिपटी खुशबूदार रंग-बिरंगे फूलों की बेलें। ज्ञान के गर्व से उन्नत मस्तक तिमंज़िला लाइब्रेरी। लाइब्रेरी में विश्व साहित्य का ज़खीरा। कॉलेज के आस-पास के खेत खलिहानों से आकर टहलते मोर। महाविद्यालय प्रागंण में ऐसे गिन-गिन के क़दम रखते कि एक पंक्ति याद आ जाती-

ख़ुदा जब हुस्न देता है नज़ाकत आ ही जाती है।

क़दम गिन-गिन के पड़ते हैं कमर बल खा ही जाती है।।

उनकी आगे पीछे होती गर्दन मानों कॉलेज का जायज़ा कर रही हो। तिस पर कभी-कभार यदि पंख फैला दें तो बस यों लगता था कि कॉलेज का दीक्षांत समारोह आज अभी इसी क्षण सम्पन्न हुआ चाहता है।

मेरा महाविद्यालय ख़ूबसूरती और ज्ञान का मणि कांचन संगम सरीखा था। कॉलेज में एडमिशन हुए महीना भर बीत गया था लेकिन मन अब भी हर दिन भय मिश्रित गुदगुदी से भरा रहता। कॉलेज गेट पर खड़े लड़कों को देख हम लड़कियाँ सहम जातीं और बिना कुछ कहे सुने हमारे कान लाल हो जाते थे शर्म, हया और डर पोर-पोर से टपकने लगता था। यह उन दिनों की बात हुआ करती थी जब तलक शर्मो हया एक गहने की तरह पहनी जाती थी।

...लेकिन इस शाइस्ता सी झिझक के पीछे एक अबूझी अनचिह्नी प्रेम की दुनिया बसी थी जो हर दिन इस उफनती नदी को पार करवाती।

मेरे बाल चूँकि घने लम्बे काले थे इसलिए मैं कॉलेज में भी दो चोटी गूँथ कर जाती और अन्वी अक्सर पोनी बनाती या कांधों पर खुले छोड़ देती। उस दिन हम दोनों कॉलेज के गेट पर पहुँचे ही थे कि एक ने कहा यह दो चोटी वाली तुम सबकी भाभी है। बाकी खड़े लड़के बेहयाई से हँसने लगे।

अन्वी और मेरी आँखें ज़मीन में गड़ी जा रही थीं। कान की लौरें लाल सुर्ख हो गई थी। कपोलों पर जैसे किसी ने गुलाल मल दिया हो। हाथ कँपकँपाने से हाथ में दबी फाइल गिरते-गिरते बची। न मैंने और न अन्वी ने उसका चेहरा देखा और न हिम्मत हुई कि नज़र उठाकर देखें कि किसने ऐसी फब्ती कसी है।

आषाढ़ की उमस में रंगीन तितलियाँ पेड़ पौधों के आस-पास एक दूसरे का पीछा कर अपना प्रेम निवेदन कर रही थीं। कुछ पेड़ों की पत्तियाँ पीली होकर जीवन के क्षरण का अहसास भी दिला रही थीं। मैं और अन्वी अपने झुंड की लड़कियों के साथ अपनी फैकल्टी के बाहर कतर ब्योंत कर संभारी हुई हरी दूब पर बैठे पढ़ने का अभिनय भर कर रहे थे। पढ़ने के लिए कॉलेज कौन आता था, कॉलेज तो उन दिनों दिलजोई का अड्डा लगता। अन्वी ने मेरे कान में कहा; "देख वह सफेद शर्ट वाला लड़का तुझे कैसे घूर रहा है।"

मैंने मुड़कर पीछे देखना चाहा तो अन्वी ने मेरी जाँघ पर चिकोटी काटकर मुझे ऐसा करने से रोक दिया। शिकारी को भी तो धोखे में रहना ही चाहिए कि शिकार को अभी उसकी आहट नहीं मिली या कि अन्वी मुझसे कहीं ज़्यादा सयानी थी, जिसे यह पता था कि मुड़कर देखने से देखने वाला या तो मग़रूर हो जाएगा या भाव खाने लगेगा।

मैंने ज़रा उकसा निकसी करके उसे देखा तो देखती ही रह गई। ऊँचा कद, पीछे को कढ़े हुए राज बब्बर स्टाइल के हल्के घुंघराले स्याह काले बाल, उठी हुई नाक, सफेद शर्ट के कफ से झाँकती मजबूत कलाइयाँ, कसा हुआ जबड़ा, नीली पैंट और तस्में वाले शूज। कनखियाँ और कुछ महीन पड़ताल कर पातीं कि अन्वी ने उठकर अपना कुर्ता झाड़ते हुए कहा,

"चल जल्दी सिक्थ पीरियड लगने वाला है। पीछे जगह मिलेगी और सिंह सर इतना धीमे और स्पीड में बोलेंगे कि पूरा लेक्चर सिर के ऊपर से निकल जाएगा। और फिर ये काले-काले बादल देख रही है अब बरसे कि तब बरसे।" अन्वी के साथ मैं भी जल्दी से किताबें समेटती हुई उठ खड़ी हुई।

"हिन्दी की क्लास में तो लड़कों के नाम पर दलिद्दर भरा है। यह तो अंग्रेज़ी है कि एक आधा स्मार्ट चेहरा दिख जाता है।" अन्वी ने जुमला उछाला तो हम दोनों के अलावा साथ चलती लड़कियाँ भी ठठाकर हँस पड़ीं। हमने आगे की रो में दो सीटें घेर ली थीं। अन्वी अपनी किताबें रखकर पानी पीने चली गई तो मुझे उसकी दलिद्दर वाली बात याद आ गई और मैं अनायास ही मुस्कुरा उठी।

"क्या मैं यहाँ बैठ सकता हूँ ?"

उस सफेद शर्ट वाले लड़के ने मेरी सीट के पास खाली पड़ी सीट को देख मेरी मुस्कराहट में अपनी मुस्कराहट घोलते हुए पूछा, जैसे किसी ने मुझे चोरी करते हुए पकड़ लिया हो, मैं सिर से पाँव तक काँप गई। पूछे गए सवाल के जवाब में जैसे मुझे काठ मार गया। मैं सनाका खाए इंसान सी गूँगी बनी बैठी रही।

पाँच मिनट के इंतज़ार के बाद जब उसे उत्तर नहीं मिला तो वह क्लास की पिछली सीट की ओर बढ़ गया। मुझे ऐसा लगा जैसे मेरे ऊपर से मन भर का बोझ उतर गया हो।

अन्वी जो पानी पीने गई थी आकर मेरे पास वाली सीट पर बैठ गई। फिर मेरे उड़े हुए रंग वाले चेहरे को देखते हुए बोली, "क्या हुआ, तुम्हारा रंग क्यों उड़ा हुआ है?"

मैंने बिना पीछे देखे उसे पूरी बात बताई। ऐसा करते हुए वह सफेद शर्ट वाला लड़का शायद हम दोनों को ही देख रहा होगा, ऐसा मैंने अनुमान लगाया, क्योंकि मुझे हमेशा ही कुछ अजनबी आँखें अपनी पीठ पर चिपकी हुई दिखती थीं...मेरी असहजता का एक कारण यह भी था।

"अटेन्शन गाइज़" एक सौम्य सी आवाज़ क्लास में गूँजी। उसी के साथ सिंह सर ने हाथ में लिया रजिस्टर, चॉक और डस्टर मेज़ पर रख दिया और ख़ुद पोडियम पर जाकर खड़े हो गए।

फिज़िकली सिंह सर एक आकर्षक व्यक्ति थे। गोरा रंग तीस बत्तीस की उम्र, दरमियाना कद गठा हुआ बदन, काले रेशमी बाल, भूरी आँखें, यूनानी देवता सी सुतवाँ नाक, क्लीन शेव बाएँ हाथ की चौड़ी सी कलाई में टाइटन की घड़ी, गोल्डन फ्रेम चश्मा, शर्ट की जेब में लगा पार्कर पेन उनके व्यक्तित्व को नफासत बख़्शता था। उनके रंग रूप पर न जाने कितनी लड़कियाँ मरती थीं उनमें से एक अन्वी भी थी, और यह बात मैं अच्छी तरह जानती थी।

आज काले रंग की शर्ट और बादामी पैंट में सिंह सर का गोरा रंग और निखर आया था।

अन्वी ने उन्हें देखा तो देखती रह गई। मैंने उसे टोहका दिया तो मेरे कान में फुसफुसाई, "शेफू..., हाय...सर तो आज क़यामत ढा रहे हैं... ये मुझे मिल जाएँ तो मैं इन्हें खा लूँ।" ओह तो प्रेम खाने के रूप भी धरता है...मैं सोचने लगी। "सच्ची बात है सर मुझे ख़ूबसूरत ग़ज़ल लगते हैं जिन्हें एकांत में एक जाम की सोहबत में सुना जाए।" ओह तो प्रेम मौसिकी के रूप में भी छलता है... मैंने सोचा। इसके बाद मैंने उसके होठों पर उँगली रख दी और कहा; "बस इसके आगे कुछ न बोलना, न जाने मैं और क्या क्या अनाप शनाप सोचने लगूँ।" मुझे ऐसे भयभीत सा देख वह मुस्कराई और मुझे इशारे से किताब खोलने को कहा, जो अब तक मेरे सामने बंद पड़ी थी।

सिंह सर ने आते ही अपनी नाक पर चढ़ा चश्मा अपने सिर पर सींगों की तरह जमा लिया और दाएँ हाथ से बाएँ हाथ की हथेली को रगड़ते हुए कहा-

"तो आज हम शेक्सपियर के नाटक "ऐज़ यू लाइक इट" का सेन्ट्रल आइडिया देखेंगे। यह नाटक विलियम शेक्सपियर ने 1599 या 1600 ईस्वीं के आरम्भ में लिखा। यह पहली बार 1623 में फोलियो में प्रकाशित हुआ था। यह एक पैस्टोरल कॉमेडी है। ऐज़ यू लाइक इट की कहानी नायिका रॉसलिंड के इर्द-गिर्द घूमती है। जो अपने शोषण के डर से अपनी चचेरी बहन सीलिया और महल के विदूषक टचस्टोन के साथ, अपने चाचा के महल से आर्डेन के जंगल में सुरक्षा और अंतत: प्यार पाने के लिए भाग जाती है... ."

"सर...आज नहीं पढ़ेंगे...." क्लास के एक छात्र नेता अरुण ने हौसले को इकट्ठा करते हुए कहा था। क्लास में सब एक-दूसरे को देखते हुए खुसर-पुसर करने लगे।

"क्यों ?आज क्या है...?" सिंह सर ने नरमी से पूछा।

क्योंकि विद्यार्थी यदि न पढ़ना चाहें तो शिक्षक अपने पढ़ाने के नैतिक दायित्व से बच जाते हैं और फिर डिग्री में कोर्स कंप्लीट कराने की ज़िम्मेदारी अध्यापक के सिर पर भी नहीं...ऐसा सुअवसर कोई शिक्षक हाथ से जाने देना नहीं चाहता।

"सर, आज मौसम बहुत सुहाना है। हम सब आज समोसे खाएँगे और अन्त्याक्षरी खेलेंगे..." एक स्वर में कई स्वर आ मिले। मेजॉरिटी का असर था कि सर ने अपनी किताबें समेटी और कक्षा से बाहर निकल गए।

बाहर झीनी-झीनी फुहार पड़नी शुरू हो गई थी। एक लड़का सभी से पैसे कलेक्ट कर कॉलेज कैंटीन से समोसे ले आया और कैंटीन वाले छोटू को बीस चाय के लिए भी बोल आया।

अन्त्याक्षरी शुरू हो गई, एक तरफ लड़कियाँ एक तरफ लड़के। ह अक्षर से गाने की बारी लड़कों की थी। उस सफेद शर्ट वाले ने बहुत ही सधे हुए स्वर में मेरी ओर देखते हुए गाया था "हमदम मेरे मान भी जाओ कहना मेरे प्यार का... " "वाह! कमल... यार क्या सुर हैं तुम्हारे, बिल्कुल सच्चे सधे हुए।" क्लास के लड़कों ने उसे दिल से दाद दी। और मैं जान गई कि उस सफेद शर्ट वाले लड़के का नाम कमल है।

"कभी-कभी मेरे दिल में ख़याल आता है कि जैसे तुझको बनाया गया है मेरे लिए...।" मैंने गाया था नज़रें झुका कर। मेरे सुर सधे हुए न थे और झिझक की वजह से आवाज़ भी थरथरा रही थी। लेकिन मैंने जैसे- तैसे एक लाइन गाकर अपना हाले दिल बयाँ कर ही दिया। गाने और भी बहुत हुए इसके बाद न उसने कुछ गाया और न मैंने कुछ...न मैंने कुछ सुना न उसने कुछ... हम वहाँ थे ही कहाँ ? केवल हमारे शरीर थे वहाँ। हम दोनों ने शायद एक दूसरे के दिल की बात सुन ली थी।

क्लास से निकलते समय उसने मेरे नोट्स की कॉपी ली थी। अगले दिन कॉपी वापस भी की थी। उसमें एक खुशबू से महकता बहुत

ख़ूबसूरत छोटा सा गुलाबी लिफाफा था। जिसे शायद गुलाबी कागज़ से ख़ुद ही तैयार किया गया था। मैंने कॉपी को उलटते पलटते समय यह देख लिया था।

पसलियों के पिंजर में दिल धाड़-धाड़ बज रहा था। अब तक की ज़िंदगी में ऐसा मैंने कभी महसूस न किया था। मेरा मन कॉलेज की भीड़ में भी निस्संग था। मैं आसमान में उड़ना चाहती थी। धरती पर मेरे पाँव ठीक से नहीं पड़ रहे थे। मैं जल्द से जल्द लिफाफे के भीतर बसे तिलिस्म को अपने मन की सात तहों में छुपा लेना चाह रही थी... लेकिन कॉलेज में सबके बीच यह संभव नहीं हो पा रहा था। उस दिन की कक्षाओं में मुझे नहीं पता किसने क्या पढ़ाया। जहाँ अन्वी जाती मैं भी पीछे- पीछे चली जाती। जबकि मेरे और अन्वी के सब्जेक्ट एक नहीं थे। घड़ी- घड़ी हलक़ सूख रहा था। हाथ-पाँव झनझना रहे थे। बेवजह पसीने से लस्त हुई जाती थी। शरीर का तापमान बढ़ गया था। सब्र की इंतेहा पर मैंने अन्वी से कहा "मेरी तबीयत ठीक नहीं, मुझे घर जाना है तू चलेगी या अपने पीरियड लेगी...?"

"मैं पीरियड लूँगी और तू भी पीरियड मिस मत कर, बाद में तुझे कौन पढ़ाएगा और फिर दो ही पीरियड तो बचे हैं।" उसने मुझे समझाते हुए कहा, लेकिन मैं घर जाने की ज़िद पर अड़ी थी। बेचैनी और उत्कंठा से मैंने लगभग भागते हुए अपने कमरे में प्रवेश किया था।

"अम्मा मेरे सिर में दर्द है। कमरा बन्द कर थोड़ा सोऊँगी। आप मुझे उठाना मत प्लीज़।"

"अरे! पहले कुछ खा तो ले।" अम्मा ने कहा था।

"नहीं, सोकर उठूँगी तब खाऊँगी। अभी भूख नहीं।" कहते-कहते मैंने अन्दर से साँकल चढ़ा ली।

खुशबू से तर लिफाफा मैंने बहुत बेसब्रे तरीके से खोला। यह मेरे जीवन की पहली तहरीर जो थी, लिखा था-

शेफाली...कितना प्यारा नाम है आपका, और उससे भी प्यारी हैं आपकी आँखें। जो सब कुछ बिन बोले ही सुना देती हैं आपके दिल का हाल। और जान भी लेती हैं दिलों का हाल। मुझे नहीं पता कि मैं आपसे क्या कहूँ, कैसे कहूँ, कहाँ मिलते हैं वे शब्द मोती जिसका हार मैं अपने हाथों से पिरोकर आपके गले में पहनाऊँ। लेकिन इतना जानता हूँ कि आप मेरे ख़त का जवाब ज़रूर देंगी।

कमल

छोटी सी चिट्ठी के साथ लिफाफे में गुलाब की कोमल पंखुड़ियाँ भी विहँस रही थीं। मैंने गुलाब की पंखुड़ियों को मुँह में डाल लिया क्योंकि प्रेम तो खाने की शक्ल में भी आता है।

मुझ पर एक नशा सा तारी हो गया था। गोया कि वे शब्द न थे चरस थी जो मेरे कलेजे में बो दी गई थी। या कि पूरी देह पर केसर के नीले-नीले फूल उग आए थे उन्हें मैं दुपट्टे से ढँकते-ढँकते थक जाती। लेकिन वे कहीं न कहीं किसी न किसी अंग से निकल कर झाँकने लग जाते और देखने वाले झट ताड़ लेते। कुछ मज़ाक उड़ाते तो कुछ ताने कसते... लेकिन हवा में उड़ता जाए मेरा लाल दुपट्टा मलमल का...वाली फीलिंग लिए मैं गीली मिट्टी सी गली जा रही थी उसके प्यार में। हमने रोज़ एक-दूसरे को ख़त लिखे। लेकिन कभी घड़ी भर इकट्ठे न बैठे। कॉलेज में टीचर्स और लड़के लड़कियों का डर, कॉलेज के बाहर समाज और उसके ठेकेदारों की दहशत। बीते दिनों में ऐसी कोई जगहें भी न हुआ करती थीं जो दो घड़ी दो दिलों को दुनिया की नज़रों से अदृश्य कर दें। फिर भी वे दिन ज़िंदगी के शायद सबसे खुशनुमा दिन थे।

एक दिन अलस भोर में मेरी लुनाई लगी ईंटों की दीवार में रहने वाली जंग लगी खिड़की की चौड़ी पट्टी पर एक सफेद शफ़्फ़ाक लम्बा सा लिफाफा पड़ा था।

लिफाफा...? कमल ने यह कैसी हरकत की। क्या मैं कॉलेज न आती। कहीं मुहल्ले वालों ने उसे ऐसा करते देखा तो नहीं?अगर किसी ने देख लिया होगा तो वह मेरे बारे में क्या सोच रहे होंगे? निंदा और बदनामी के भय से मेरा अंतर्मन काँप उठा।

मन की प्रत्यंचा तनकर झंकार उठी। दुविधाओं और शंकाओं के बाण बिना लक्ष्य यहाँ वहाँ टकराने लगे। मैंने झपटकर लिफाफा उठाया। बाहर आँगन में अम्मा भजन गाते हुए बुहारी लगा रहीं थीं उनका नित्य का नियम था कि वह आँगन की बुहारी लगाकर मेरे कमरे में आतीं और मुझे जगातीं। लेकिन आज मेरी आँख अनायास ही खुल गई और यह लिफाफा...

इतने विचार भर से देह ने ढ़ेर सारा पसीना उगल दिया। मेरा मन दुर्निवार दुश्चिंताओं से भर गया।

"उठो, हाथ मुँह धोकर पढ़ने बैठो।" अम्मा ने कमरे में झाँकते हुए कहा। छोटा सा हुंकारा भरकर मैंने लिफाफा किताबों के बीच दबाया और फ्रेश होने के लिए उठ खड़ी हुई। मन में कोई गाँठ हो तो तन तुरंत प्रतिकार में खड़ा हो जाता है। फ्रेश होने के नाम पर मैं आधी अधूरी फ्रेश होकर अपनी पढ़ने की मेज़ कुर्सी पर बैठ गई। किताबों के बीच दबे लिफाफ में न कोई रंग था न खुशबू। उसमें स्याह अक्षरों जैसा काला भय समाया हुआ था। धड़कते दिल से उसे खोला कि अम्मा ने पुकारा -'चाय ले जा।' काँपती टाँगों को किसी तरह कंट्रोल कर हाथों में खड़खड़ाती प्याली से छलकती चाय लिए किसी तरह कुर्सी पर आकर बैठ गई।

चाय पर किसका ध्यान था सारा ध्यान तो उस खर्रे पर था जो उस कफ़न जैसे लिबास पहने था। उस फुल स्केप साइज़ के सफेद पन्ने पर लाल स्केच पेन से मोटा-मोटा लिखा था- आई लव यू!

इसके अलावा उसमें न कोई नाम था न पता। मैंने दो-तीन बार कागज़ उलट-पलटकर देखा लेकिन इन तीन अक्षरों के अलावा और कुछ न लिखा था। मैंने काँपते हाथों से कागज़ और लिफाफा सँभालकर रख दिया। मेरा सिर चकराने लगा था। संदेह के घेरे में बार-बार कमल को खड़ा करने के बाद भी मन उसकी पैरवी करने लगता। एक मन कहता

कमल का हौसला इतना बढ़ गया कि यह घर तक आ पहुँचा ...या यह मुझे बदनाम करना चाहता है... या कि इसके पीछे कोई साजिश है...दुविधा, द्वंद्व और अपरिभाषेय उद्दिगनता से मेरा चित्त अस्थिर हो उठा था।

"तुम मुझे बदनाम करना चाहते हो? " कॉलेज आते ही मैंने उसे चिट थमा दी।

"कैसे...? मैंने क्या किया?"उसने लिखा।

"तुमने मेरी खिड़की में लिफाफा क्यों छोड़ा?" मैंने लिखा।

"मैंने... ?"उसने अनभिज्ञता जाहिर करते हुए लिखा।

"हाँ... तो और किसने?" मैंने डबडबाई आँखों से लिखा।

"मेरा भरोसा करो। मैंने ऐसा कुछ नहीं किया जिससे तुम्हारी बदनामी हो।"

इतने सवाल-जवाबों के आदान-प्रदान में दो चार दिन और बीत गए। कमल ख़ुद को निर्दोष बताता रहा। और मैं कमल को दोषी मानती रही। मेरे दिन विश्वास-अविश्वास के बीच झूलते और रातें दुस्वप्न सी बीतने लगीं। एक सुबह फिर वैसा ही उजला सा बेनामी लिफाफा पड़ा था। लेकिन वह उजला लिफाफा किसी प्रेतबाधा से कम न था। मैंने खिड़की की निगरानी में कई रातों को रतजगा किया। लेकिन घने जंगल में मचान पर घात में बैठे शिकारी को जैसे नहीं पता कि कब अचानक से बाघ सम्मुख होगा और वह एक अचूक निशाना लगाकर उसे धराशायी कर देगा वैसे ही मुझे नहीं पता था कि लिफाफा कब डाला जाएगा और मैं उसको कब रंगे हाथों पकड़कर उससे अपने मुरझाये दिन और बेचैन रातों का हिसाब किताब बराबर करुँगी।

एक अलस भोर जाने कैसे आँख लग गई और जाने कब गली से गुज़रने वाले ने अपनी आशिकी लिफाफे में बंद कर खिड़की के रास्ते मुझ तक पहुँचा दी। ख़ौफ़ खाये काँपते हाथों से मैंने लिफाफा खोला और मुँह अंधेरे ख़त पढ़ा...लिखा था-

शेफाली,

मेरी जान

आइ लव यू

तुम मुझे नहीं जानती लेकिन मैं तुम्हें स्कूल के ज़माने से जानता हूँ। तुम्हें शायद याद नहीं होगा एक बार तुमने एक बूढ़े आदमी की मदद करते हुए उसे सड़क पार करवाई थी। उस दिन सबसे पहले मैंने तुम्हें देखा था। फिर एक दिन किसी औरत का कुछ सामान सड़क पर फैल गया तो तुमने सामान उठाने में उसकी मदद की थी, तब मैंने तुम्हें जी भर देखा था। कॉलेज में जब तुम दो चोटी बनाकर आई थीं तो मैंने तुम्हें अपना दिल दे दिया था। एक दिन जब तुम माली की अँगुली से काँटा निकाल रही थीं तो मैंने तुम्हें अपना मान लिया। अब तुम्हें न देखूँ तो मेरा दिल छलनी हो जाता है। तुम सिर्फ मेरी हो और किसी की नहीं हो सकती। मैं सब जानता हूँ, मैं मेरे अलावा तुम तक जाने वाले सब रास्ते बन्द कर दूँगा। इतना जान लो। अगर सबकी खैर मंज़ूर हो तो कॉलेज में सबसे दूर रहो।

तुम्हारा

शुभचिंतक

ख़त पढ़कर मुझे रोना आ गया। मैं बुरी तरह काँपने लगी, लेकिन मैं अपना दुख किससे कहूँ और कौन मुझे ठीक तरह समझेगा समझ नहीं आ रहा था।

सुबह-सुबह रोने बैठने का मतलब है अम्मा के हज़ार प्रश्न और उन प्रश्नों का मेरे पास कोई जवाब नहीं था। अगर सच बता दिया तो पढ़ाई छुड़ाकर घर बैठा लिया जाएगा और नहीं बताया तो बदनामी का डर। दोनों ओर से मेरा ही नुकसान था। पढ़ाई मैं किसी कीमत पर छोड़ना नहीं चाहती थी और बिना किसी अपराध के दंडित होना भी नहीं। इसलिए दिल पर पत्थर रखकर मैं उठी और नल से छप्पे मारकर आँखों को तर किया कि कहीं एकाध बूँद आँसू की आ भी जाए तो पानी की बूँदों में पहचानी न जा सके।

एक बड़ी समस्या आन पड़ी उन ख़तों को छुपाने की। यदि घर के किसी सदस्य की नज़र पड़ गई तो सबसे पहले चारदीवारी की कैद मिलेगी। फिर लानते मलामतें। उसके बाद जिस-तिस के साथ शादी के नाम पर दूसरी जेल।

दिन विकलता भरे और रातें शोकगीत का उच्छ्वास बन गई थीं। भीतर की बेकली बाहर चिड़चिड़ाहट में तब्दील हो चुकी थी। सहज होना और दिखाना दो अलग बातें थीं। दिन रात ख़ुद से लड़ते-लड़ते बुखार में तपने लगी। सबको लगा यह ज्वर था मैं जानती थी यह मन का ज्वार भाटा है।

खिड़की से ख़त फेंकने वाले को कभी देखा नहीं, पहचानती नहीं, उसे कुछ कह नहीं सकती, सुन नहीं सकती। कुछ न कर पाने की घुटन ने खीझ और खीझ ने झगड़ों को जन्म दिया। मैं घर में एक अजनबी की तरह सब से कटी-कटी रहने लगी। पढ़ाई से मन पूरी तरह उचट गया था। मैंने कॉलेज जाना भी इस डर से बंद कर दिया कि यदि मेरे पीछे लिफाफा डाला गया तो घर के किसी व्यक्ति के हाथ लग जाएगा और उसके बाद...

चार दिन बाद एक और लिफाफा खिड़की के रास्ते मेरे कमरे में था। मैं वाशरूम में। स्याह तहरीरों से भरा सफेद बेदाग लिफाफा अम्मा के हत्थे चढ़ गया। उसकी बेदागी के एवज़ में मेरे शरीर को दाग़दार बनाया गया। मैं उस अपराध के लिए सज़ा पा रही थी जो अपराध मैंने किया ही नहीं। मैं जितना ही बेगुनाही का सबूत देती उतना ही कोंची जाती। अम्मा ने उस लिफाफे के मजमून से कमल के बारे में भी जान लिया।

दोहरे अभियोग की सज़ा सबसे पहले पढ़ाई छुड़ाकर दी गई। उसके बाद घर नोंकदार भालों में तब्दील हो गया। अब मुझे कोई भी किसी भी हद तक भला बुरा कह सकता था और यह उसका अघोषित अधिकार बन गया था। प्रतिकार करने पर मारपीट भी उसी अधिकार के तहत आती थी। आनन -फानन में एक तसला रेत और आधा तसला सीमेंट मिला कर मेरे कमरे की खिड़की को ईंटों से चिन दिया गया। साथ ही मुझे भी एक ऐसी चारदीवारी में चिना गया जिसमें कोई खिड़की न थी।

मैं जब भी मधुबाला को अनारकली के रोल में दीवारों में चुनता हुआ देखती, तब- तब मुझे ख़याल आता कि अनारकली को सबकी नज़र बचाकर अपने पैर के अँगूठे से गीले सीमेंट में छेद कर देना चाहिए था। ताकि वह साँस तो ले पाती घुटकर तो न मरती। वैसी ही सोच कुछ-कुछ अपने लिए भी हावी हो जाती, कि काश! मैंने भी नज़र बचाकर गीले सीमेंट में कोई छेद बना दिया होता तो ज़िंदगी का दम यूँ तो न घुटता।

000

देवदार के आँसू

डॉ. रामकठिन सिंह

सिंचाई विभाग में सहायक अभियन्ता के पद से रिटायर हुए थे, अस्थाना साहब। आदमी तो भले थे ही, ईमानदार भी बहुत थे। उन्होंने कभी किसी से एक भी पैसे की रिश्वत नहीं ली। थोड़े में गुज़ारा करने वाले अस्थाना साहब किसी तरह के दिखावे में विश्वास नहीं रखते थे। कई वर्षों तक उनकी पोस्टिंग एक छोटे- से पहाड़ी शहर में रही थी। तभी उन्होंने वहाँ एक छोटा-सा प्लाट खरीद लिया था। रिटायरमेण्ट के बाद वहीं जाकर बसने का मन बहुत पहले ही बना लिया था। और यही किया भी उन्होंने। दो कमरों का एक छोटा-सा मकान बना कर वे वहीं रहने लगे थे। ज़िंदगी बड़े चैन से कट रही थी। एक बेटा और एक बेटी, दोनों की शादियाँ रिटायरमेण्ट से पहले ही कर दी थीं। दोनों बच्चों का जीवन भी सुचारु रूप से चल रहा था। वे दूर किन्हीं अलग-अलग शहरों में नौकरी कर रहे थे और ठीक-ठाक कमा-खा रहे थे। इस तरह देखा जाए तो अस्थाना साहब अपनी सभी ज़िम्मेदारियों से मुक्त हो चुके थे। कुछ समय पहले बेटे की एक बिटिया हो गई थी, जिससे उनकी खुशियाँ और भी बढ़ गई थीं।

पेड़-पौधों से लैस, हरियाली में डूबा वह शहर उन्हें ख़ूब रास आता। सुबह-शाम दूर तक घूमने निकल जाते। कभी-कभी वे अपनी पत्नी को भी साथ ले लेते और चले जाते पास के देवदार के जंगलों में।

दिन-भर पेड़ों से बोलते-बतियाते। भूख लगती तो वहीं किसी पेड़ के नीचे बैठकर कुछ खा-पी लेते। उम्रदराज़ देवदार के पेड़ों को देखकर आश्चर्य करते, सोचते इतनी उम्र के बावजूद वे कितने हरे-भरे और स्वस्थ हैं। ऐसा एहसास होता, मानों वे उन्हें भी बढ़ती उम्र के साथ खुश रहने की प्रेरणा देते हों। पतझड़ के महीनों में ज़मीन पर पत्तियों का ढेर बिछ जाता जो बरसात के पानी के साथ सड़कर खाद बन जाता और उन्हीं पेड़ों का भोजन बनता। आत्म-निर्भरता की एक अद्‌भुत मिसाल! छोटी-छोटी गिलहरियों का पूँछ उठा-उठा कर मटकना, चिड़ियों का चहचहाना, हवा के झोंकों के साथ देवदार के पेड़ों की पत्तियों से निकलती धुन उन्हें मंत्र-मुग्ध कर देती। प्रकृति का यह नज़ारा देखते-रहने में कितना समय बीत जाता, इसका उन्हें अन्दाज़ा तक नहीं होता।

पति-पत्नी दोनों ही बड़े सवेरे उठ जाते। नित्य-क्रिया से निवृत्त होकर टहलने निकल जाते। लौटकर आते तो अस्थाना साहब अखबारों के पन्नों में खो जाते। श्रीमती जी चाय बनाकर रख जातीं जो अक्सर ठंडी पड़ जाती। जब कभी पत्नी जी उधर से गुज़रतीं और ठंडी पड़ी चाय को देखतीं तो गुस्सा होतीं। दुबारा चाय बनाकर लातीं और तब उनके साथ बैठकर ख़ुद भी चाय पीतीं। अख़बार से ध्यान हटाने के उद्‌देश्य से वे उनसे अख़बारों में छपी खबरों के बारे में पूछतीं।

डॉ. रामकठिन सिंह
1, देवलोक कालोनी, चर्च रोड, विष्णुपुरी,
अलीगंज, लखनऊ- 226022,
मोबाइल- 9721719736
ईमेल- rksingh.neford@gmail.com

फिर वे बड़े चाव से उन्हें नई ताज़ा खबरों के बारे में बताते। कभी-कभी किसी विषय पर उनकी आपस में बहस भी हो जाती। लगभग यही उनका रोज़ का किस्सा था। चाय पीने के बाद अस्थाना साहब नहाने-धोने चले जाते तथा उनकी मिसेज़ किचन में नाश्ता बनाने चली जातीं। नाश्ते के बाद दोनों कुछ घड़ी आराम करते।

दोपहर के बाद दोनों के अलग-अलग सुनिश्चित प्रोग्राम थे। अस्थाना साहब अपनी मित्र-मंडली के साथ घूमने-फिरने चले जाते और उनकी श्रीमती किसी सत्संग में। वे बड़े धार्मिक विचार की महिला थीं। पूजा-पाठ सत्संग आदि कार्यों में उनका बहुत मन लगता था। दोनों लगभग छह बजे शाम को ही घर वापस लौटते। उसके बाद वे ख़ुद को अपने घर के अंदर जैसे बंद-सा कर लेते। टी.वी. चालू हो जाता और दोनों वहीं बैठकर कभी चाय, कभी पकौड़े, तो कभी मैगी का स्वाद लेते। मिसेज़ अस्थाना खाना बनाने में निपुण तो थीं ही, उन्हें आलस्य तनिक भी न था। इधर अस्थाना साहब की फर्माइश हुई नहीं कि उधर उनकी मनचाही 'डिश' तैयार। उनकी हर शाम इसी तरह कटती। रात के दस बजते-बजते उनके सोने का समय हो जाता।

मिस्टर और मिसेज़ अस्थाना की इस खुशनुमा शान्त ज़िंदगी से तो उनके बच्चों को भी ईर्ष्या होती थी। वे कभी-कभी मज़ाक में ऐसा कहते भी रहते थे। पर एक दिन तो अचानक जैसे सचमुच ही किसी की नज़र लग गई। वे अभी टी.वी. बन्द करके बत्तियाँ बुझाकर बिस्तर पर जाकर लेटे ही थे कि फ़ोन की घण्टी घनघना उठी। अस्थाना साहब ने बत्ती जलाई। पति-पत्नी ने एक दूसरे को प्रश्नभरी नज़रों से देखा-उनके बच्चे तो कभी दस बजे के बाद फ़ोन करते नहीं ? फिर यह किसका फ़ोन आया है इतनी रात गए?

डरते-सहमें अस्थाना साहब ने फ़ोन उठाकर 'हेलो' कहा कि उधर से एक भर्रायी-सी आवाज़ आई, 'पापा' और फिर ज़ोर-ज़ोर से रोने की आवाज़।

'अरे, यह तो अर्चू का फ़ोन है।'अर्चू यानी अर्चना, उनकी बहू।

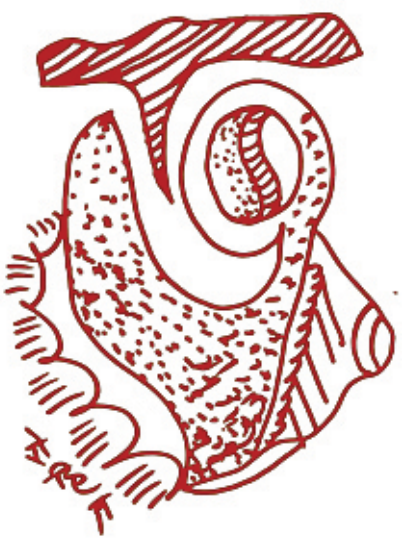

उन्होंने थोड़ी देर तक कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। सोचा, रो लेगी तो, मन शांत हो जाएगा और तब ठीक से बता पाएगी कि आख़िर बात क्या है? यद्यपि उनके मन में किसी अनहोनी का डर तो घर कर ही गया था। जब अर्चू की रोने की आवाज़ सिसकियों में बदल गई, तो उन्होंने पूछा, 'क्या बात है, अर्चू बेटा? तुम ऐसे रो क्यों रही हो? क्या उर्मिल को, या समीर को कुछ... ?'

'नहीं, नहीं, पापा, बात कुछ और है।'

'अच्छा, तो पहले तुम रोना बंद करो और फिर बताओ कि हुआ क्या है?'

उसके बाद उसने जो कुछ बताया, वह बेहद हैरान कर देने वाला था। समीर उसको तलाक देने की बात कर रहा है। उसका किसी अन्य लड़की से 'अफेयर' हो गया है। किसी तरह अपने को संयत करते हुए अस्थाना साहब ने अर्चना से कहा? 'बेटी, यह बात इतनी आगे बढ़ गई और तुमने हमें कभी कुछ बताया नहीं, क्यों? खैर, अब तुम शान्त हो जाओ। मैं समीर से बात करता हूँ। वह भला ऐसा कैसे कर सकता है?'

किसी तरह उसे समझा-बुझाकर उन्होंने फ़ोन रख दिया। सर्वदा शान्त रहने वाले अस्थाना साहब के मन में जैसे एक भूचाल-सा आ गया था। अपने को संयत रखने में उन्हें वक्त लगा। फिर उन्होंने सारी बातें अपनी पत्नी को बताईं, तो वे भी परेशान हो गईं। वे दोनों थोड़ी देर तक आपस में बतियाते रहे। फिर अस्थाना साहब ने समीर को फ़ोन मिलाया। तब तक रात के साढ़े ग्यारह बज चुके थे। समीर गहरी नींद में था। बड़ी देर तक फ़ोन की घण्टी बजती रही।

अर्चना जगी थी। उसे पता था कि पापा का ही फ़ोन होगा। पर उसने जान-बूझ कर फ़ोन नहीं उठाया।

आख़िर समीर की नींद खुली और वह कुछ बड़बड़ाते हुए, फ़ोन उठाकर बोला, 'हेलो, कौन?' उधर से आवाज़ आई। समीर जैसे हड़बड़ा-सा गया।

'पापा, आप? इतनी रात को फ़ोन? सब ठीक तो है न, वहाँ?'

'हाँ यहाँ तो सब ठीक है। पर क्या तुम्हारे यहाँ भी सब कुछ ठीक है?' और फिर उन्होंने अर्चू के फ़ोन के विषय में बताया।

समीर ने उन्हें आश्वस्त करते हुए कहा, 'पापा, कुछ थोड़ी समस्या ज़रूर है, मगर इतनी भी नहीं कि आप को आधी रात में परेशान किया जाए। आप शान्त हो जाएँ, परेशान न हों, सुबह आराम से इस विषय में बात करेंगे।'

'ठीक है' अस्थाना साहब ने कहा और फ़ोन रख दिया।

समीर की बातों से उन्हें थोड़ी तसल्ली ज़रूर हुई। पर नींद तो न जाने कहाँ फुर्र हो गई थी। तरह-तरह के विचार मन में आते रहे और उन्हें अशान्त करते रहे। किसी तरह रात बीती। सुबह उठकर मिसेज़ अस्थाना ने चाय लाकर दिया और ख़ुद भी उनके पास ही बैठकर चाय पीने लगीं। दोनों चुप थे। इंतज़ार था तो बस समीर के फ़ोन का। खैर, उन्हें ज़्यादा देर तक इंतज़ार नहीं करना पड़ा। समीर ने फ़ोन पर विस्तार से सारी बातों का ज़िक्र करते हुए यह ज़रूर कहा कि उसका अर्चू के साथ एक पल भी रह पाना मुश्किल हो गया है। अस्थाना साहब ने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की, बल्कि उसे तुरन्त आकर उनसे मिलने की बात कही, तो वह तैयार हो गया। समीर से बात करने के बाद उन्होंने अर्चना को फ़ोन मिलाया और बताया कि समीर से उनकी बात हो गई है। उन्होंने उसको अपने पास बुलाया है और वह २-३ दिन में यहाँ आ रहा है। वे उसे समझाएँगे और साफ़-साफ़ कह देंगे कि यदि

वह उनकी बात नहीं मानेगा, तो वे उससे अपना रिश्ता तोड़ लेंगे और उसकी तथा उर्मिल की पूरी ज़िम्मेदारी वे ख़ुद उठाएँगे। अत: तब तक वह चुप रहे और कोई ऐसा कदम न उठाए जिससे बात और बिगड़े। अर्चना को उनकी बात से काफ़ी तसल्ली हुई और उसने अस्थाना साहब को यह विश्वास दिलाया कि वह ऐसा कुछ नहीं करेगी जिससे बात और बिगड़े।

अस्थाना साहब के फ़ोन-काल के तीन दिन बाद ही समीर घर आ गया। दो दिन घर रहने के बाद वह वापस अपने काम पर चला गया। पर इन दो दिनों में उसने पूरी बात अपने माँ-बाप को बता दी थी। उसने यह स्वीकार किया कि अर्चना के साथ उसके रिश्ते बहुत बिगड़ गए हैं। यहाँ तक कि उन दोनों में तलाक की बात भी हो गई है। पर अर्चना की यह बात कि उसका किसी अन्य लड़की से संबंध हो गया है, एकदम झूठ है। यह उसके दिमाग का फ़ितूर है और कुछ नहीं। समीर की बातें सुनकर अस्थाना साहब को बड़ा धक्का लगा। अर्चना के व्यवहार से वे भी अपरिचित नहीं थे। पर इसके बावजूद वे कतई नहीं चाहते थे कि उनकी शादी टूटे। सबसे बड़ी चिन्ता तो उन्हें उर्मिल की थी। उन्होंने समीर को बहुत समझाया,अपने बुढ़ापे का वास्ता दिया, घर-परिवार-समाज का वास्ता दिया। समीर एक अच्छा लड़का था। उसमें किसी तरह का दुर्गुण या दुर्व्यसन नहीं था। उसे भी उर्मिल की कम चिन्ता नहीं थी। चिन्ता तो उसे अर्चना की भी थी। पर वह करे भी तो क्या करे? धीरे-धीरे स्थिति ऐसी उत्पन्न हो गई थी कि अब उनका साथ रहना मुमकिन नहीं लग रहा था। तभी तो बात तलाक तक पहुँच गई थी। खैर? पापा के समझाने-बुझाने के बाद समीर अर्चना को एक और मौका देने को तैयार हो गया था। उसने चार महीने का समय दिया और पापा से साफ़-साफ़ कह दिया था कि मैं चार महीनों तक इंतज़ार करूँगा? पर यदि स्थितियाँ सुधरती नहीं है, तो वह अर्चना से अलग होने में तनिक भी देर नहीं करेगा। अस्थाना साहब ने ये सारी बातें अर्चना को फ़ोन पर बता कर उसे अच्छी तरह समझा दिया था कि वह भी अपना रिश्ता

सुधारने की कोशिश करे और ऐसा कुछ भी न करे जिससे उनके संबंधों में और खटास आए। उन्होंने उससे यह भी कहा था कि यदि समीर की ग़लती से तलाक हुआ तो वे लोग उसका और उर्मिल का साथ देंगे, समीर का नहीं। पर यदि ग़लती उसकी होगी तो वे फिर उसकी कोई मदद नहीं कर पाएँगे।

अर्चना अपने माँ-बाप की इकलौती सन्तान थी। बचपन से ही लाड़-प्यार में पली वह एक ज़िद्दी और मनबढ़ू लड़की के रूप में बड़ी हुई। देखने में भी वह काफी सुंदर थी। कॉलेज में लड़के उसे 'नकचढ़ी' कहकर बुलाते थे। समीर भी सुन्दर और स्मार्ट लड़का था। कॉलेज़ के दिनों में ही समीर और अर्चना की दोस्ती हो गई थी जो समय के साथ और प्रगाढ़ होती गई। वे एक दूसरे को बहुत चाहने लगे थे। आगे चलकर यही दोस्ती उनके शादी के बंधन में बँधने का कारण भी बनी। समीर अर्चना के स्वभाव से भली-भाँति परिचित था। पर प्यार की दीवानगी ऐसी थी कि तब अर्चना के नाज़-नखरे, बात-बात पर उसका रूठ जाना या हर हाल में अपनी ज़िद मनवाना, समीर को अच्छा लगता था। शायद यह बात तब उसके दिमाग में कभी आई ही नहीं कि शादी के बाद स्थितियाँ बदल जाती हैं। पति-पत्नी में एक नया समीकरण विकसित होता है जिसके लिए दोनों को जीवन के कई मुद्दों पर कम्प्रोमाइज़ करना पड़ता है, अन्यथा अनबन पैदा होती है जो आगे चलकर निराशा को जन्म देती है, असन्तोष पैदा होता है और फिर विश्वास टूटने लगता है। पति-पत्नी के रिश्तों में पैदा हुआ अविश्वास बड़ी आसानी से शादी के बन्धन को कमज़ोर कर देता है, यहाँ तक कि शादी टूट भी जाती है। और यही सब तो हुआ था समीर और अर्चना के बीच। दुर्भाग्यवश, वे अपने को सँभाल नहीं पाए। बात बिगड़ती चली गई और तलाक तक पहुँच गई।

समीर एक प्राइवेट फ़र्म में नौकरी करता था। ऐसे फ़र्मों में टारगेट पूरा करने का दबाव हमेशा बना रहता है। कर्मचारी हो या अफ़सर, सबके सिर पर काम का हथौड़ा लटकता रहता है। थोड़ी-सी ढिलाई हुई नहीं कि सिर पर हथौड़ा गिरा, यानी छुट्टी। अत: शाम को देर तक काम करना मज़बूरी होती है। समीर के साथ भी ऐसा ही था। शाम को घर आने में देर हो ही जाती थी। पर घर आते ही, थका हुआ होने के बावजूद वह अर्चना को बाहर घुमाने ले जाता। अक्सर वे लोग बाहर से ही खाना खाकर घर लौटते। इस तरह सुबह से लेकर देर रात तक समीर या तो काम के सिलसिले में ऑफ़िस में होता या अर्चना के साथ सड़कों, पार्कों या रेस्त्राँ में। वह इतना थक जाता कि बिस्तर पर पड़ते ही सो जाता और फिर सुबह अलार्म की आवाज़ सुनकर ही उठता। अर्चना को लगता जैसे समीर उसे 'इग्नोर' कर रहा है। वह कभी-कभी शिकायत भी करती। पर समीर उसे समझा-बुझाकर मना लेता। इस तरह उनकी ज़िंदगी के दो साल बीत गए।

फिर उर्मिल पैदा हुई। ज़िंदगी ने एक दूसरा रुख लिया। बच्ची के पैदा होने की खुशी तो दोनों को बहुत थी। पर दुर्भाग्य देखिए, बच्ची का एक पैर हल्का हो गया था। जैसे उसमें जान ही नहीं थी। इस कारण उनका अस्पताल के चक्कर काटने का सिलसिला शुरू हो गया। समीर को तो ऑफ़िस जाने की मज़बूरी थी, अत: यह काम अर्चना को ही करना पड़ता। घर से लेकर अस्पताल तक और फिर हर क्षण बच्ची का ख़याल रखना आदि जैसे ये ही बस अर्चना के जीवन के उद्देश्य रह गए थे। कुछ समय तक वह इसे पूरी निष्ठा के साथ निभाती रही। पर धीरे-धीरे उसे अपना जीवन जैसे एक अभिशाप-सा लगने लगा,

मन में एक वितृष्णा-सी पैदा होने लगी। वह शाम को समीर के घर आने की राह देखती रहती। जैसे ही समीर घर आता, वह उर्मिल को उसे पकड़ा देती और यह कह कर कि वह बहुत थक गई है, बेडरूम में जाकर लेट जाती। उसको इसकी भी फ़िक्र नहीं होती कि समीर ऑफ़िस से आया है तो उसे पहले एक गिलास पानी और एक कप गर्म चाय दे दे। समीर को बड़ी झुँझलाहट होती। वह भी दिन भर काम करके ही आता था, तो थका तो वह भी कम नहीं होता। पर क्या करता! उसे उर्मिल को सँभालना ही पड़ता।

उसे याद आते अपने बचपन के वे दिन जब माँ-बापू के अलावा दादा-दादी, चाचा-चाची, बुआ और बहनों से उसका घर भरा होता। ख़ुद उसके माँ-बापू ने तो शायद ही कभी उसे दिन में अपनी गोदी में उठाया हो। वह तो कभी दादी के पास, तो कभी बुआ के साथ या किसी और के साथ। दादा जी तो उसे अपने कंधे पर बिठा कर पूरे मुहल्ले में घूम आते। माँ-बापू के ऊपर उसे पालने-पोसने का कतई कोई भार नहीं था। और आज- उर्मिल या तो उसके पास या अपनी माँ के पास। वैसे दिनभर तो वह घर के बाहर ही रहता है, फिर उर्मिल को अकेले ही तो सँभालना पड़ता है, अर्चना को। वह समझता था कि अर्चना के ऊपर भार बहुत है, पर कोई विकल्प भी तो नहीं था। कितनी बार कहा कि वह उर्मिल को लेकर कुछ महीनों के लिए उसके दादा-दादी के पास चली जाए। उन्हें भी बहुत खुशी होगी। वे भी तो चाहते हैं कि वे अपनी पोती को कंधे पर बिठाकर छाती फुलाकर घूमें। पर उनके साथ रहने के नाम पर तो अर्चना को जैसे बुखार-सा चढ़ जाता है। शादी के बाद वह अपनी ससुराल में रही कहाँ?

ज़्यादा-से-ज़्यादा एक रात या एक दिन। छुट्टियों में जब हम अपने शहर जाते हैं तो वह पूरा समय अपने मायके में ही तो बिताती है। माँ-बापू उसे कितना बुलाते हैं, घर आने पर उसका कितना ध्यान रखते हैं, पर इन बातों की तो उसे कोई अहमियत है ही नहीं।

एक बच्ची को पैदाकर उसे पाल-पोसकर बड़ा करना कोई एक-दो दिन, हफ़्ता या महीने

का काम नहीं है। यह एक लंबी प्रक्रिया है और इस प्रक्रिया में माँ-बाप को सुख तो मिलता है, पर बहुत कुछ खोना भी पड़ता है। एकल परिवार की सोच वाली नई पीढ़ी के लिए यह बड़ी चुनौती है और उनके धैर्य की परीक्षा भी। जो लोग इस चुनौती का सामना नहीं कर पाते और बीच में ही धैर्य खो बैठते हैं, उनका वैवाहिक जीवन अक्सर छिन्न-भिन्न हो जाता है। और ठीक वही तो हुआ था, समीर और अर्चना के साथ।

ऑफ़िस में काम का दबाव और घर में अर्चना के व्यवहार ने समीर को चिड़चिड़ा बना दिया था। बात-बात पर उसे गुस्सा आ जाता और घर जैसे लड़ाई का मैदान बन जाता। घर के भीतर के प्रतिकूल वातावरण के कारण अब वह शाम को अधिकतर देर से ही घर आता। काम न रहने पर भी वह ऑफ़िस में बैठा रहता। उसका बदला हुआ व्यवहार उसके साथियों से भी छिपा नहीं रहा। एक दिन शाम को जब सभी ऑफ़िस से जा चुके थे, तो मीनाक्षी उसके पास आकर उसके सामने की कुर्सी पर बैठ गई। मीनाक्षी उसी के ग्रुप में काम करती थी। मीनाक्षी ने पूछा, 'समीर ऐसी क्या बात है जो तुम आजकल रोज़ देर तक ऑफ़िस में बैठे रहते हो! ऐसा कौन-सा काम आ गया है जो तुम दिन में पूरा नहीं कर पाते?' मीनाक्षी ने कटाक्ष करते हुए पूछा। इसके पहले कि समीर कुछ बोले, मीनाक्षी ने कहा, 'अच्छा उठो, चलो। आज हम 'कॉफ़ी-डे' में कॉफ़ी पीने चलते हैं।' समीर ने कंप्यूटर बन्द किया और चुपचाप उठकर मीनाक्षी के साथ ऑफ़िस से बाहर निकल गया।

'काफ़ी-डे' के एक कॉर्नर में अच्छी-सी जगह देखकर दोनों बैठ गए। वेटर आया तो मीनाक्षी ने उसे दो कॉफ़ी और दो ब्राउनी का आर्डर दे दिया। मज़ेदार बात यह थी कि वे लोग लगभग दो घण्टे तक कॉफ़ी-डे में बैठे बातें करते रहे, पर मीनाक्षी ने समीर से एक भी व्यक्तिगत सवाल नहीं किया। वे बस इधर-उधर की बातें करते रहे। कभी ऑफ़िस के किसी स्टाफ़ की, तो कभी किसी फिल्म की या फिर कभी किसी अख़बारी ख़बर की। बीच-बीच में हँसी के गुब्बारे भी फूटे। बातों-बातों में कब दो घण्टे बीत गए, उन्हें पता ही नहीं चला। मीनाक्षी के आग्रह के बावजूद समीर ने ही बिल चुकाया। वेटर ने बचे हुए पैसे और रसीद लाकर समीर को दिया तो उसने वह सब अपनी कमीज़ के सामने की पॉकेट में रख लिया। मीनाक्षी से विदा होकर समीर जब अपने घर की ओर चला तो वह बहुत हल्का महसूस कर रहा था। बहुत दिनों बाद उसे अन्दर से खुशी का एहसास हो रहा था। घर पहुँचा तो उसकी सासु-माँ किचन में चाय बना रही थीं। उन्होंने समीर से चाय के लिए पूछा तो उसने यह कहकर मना कर दिया कि वह अभी-अभी कॉफ़ी पीकर आया है।

अर्चना और उसकी माँ ने भी यह महसूस किया कि समीर आज बड़े अच्छे मूड में है। पर उनमें से किसी ने भी इसके बारे में समीर से कुछ नहीं पूछा। दूसरे दिन सुबह रोज़ की भाँति तैयार होकर समीर अपने ऑफ़िस चला गया। अर्चना कपड़े धोने के लिए जब समीर की कमीज़ की जेब खाली कर रही थी तो उसे पैसों के साथ 'कॉफ़ी-डे' की एक रसीद मिली। उसने उसे ध्यान से देखा तो वह समझ गई कि समीर बीती शाम को 'कॉफ़ी-डे' से ही कॉफ़ी पीकर आया था। रसीद में कॉफ़ी के दो और दो ब्राउनी के आर्डर थे, अर्थात् उसके साथ कोई और भी था। उसने रसीद को ड्राइंग-टेबुल पर पेपर-वेट से दबाकर रख दिया। शाम को समीर जब ऑफ़िस से घर आया, तो अर्चना ख़ुद चाय लेकर आई। समीर को कुछ अटपटा ज़रूर लगा, क्योंकि रोज़ तो

चाय उसकी सासु-माँ ही देती थीं। अर्चना उसके सामने ही सोफ़े पर बैठ गई और पूछा कि वह कल 'कॉफ़ी-डे' में किसके साथ कॉफ़ी पीने गया था, तो समीर ने बता दिया कि 'मीनाक्षी के साथ।'

अर्चना ने तब कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। बात वहीं-की-वहीं ख़त्म हो गई। दूसरे दिन ऑफ़िस में ग्यारह बजे के आस-पास मीनाक्षी समीर के पास आई और रुआँसी होकर बोली, कि अर्चना का फ़ोन आया था। उसने मुझ पर तुम्हें बरगलाने का आरोप लगाया। इतना कहकर मीनाक्षी सिसक पड़ी। समीर ने किसी तरह उसे शान्त किया और अर्चना के उस दुर्व्यवहार के लिए मीनाक्षी से क्षमा भी माँगी।

इस खबर से समीर बहुत आहत महसूस कर रहा था। वह सोच रहा था कि यदि उसके मन में तनिक भी खोट होती तो वह अर्चना को बताता ही क्यों कि वह मीनाक्षी के साथ कॉफ़ी पीने गया था। पर समीर को कहाँ पता था कि उसकी यही साफ़गोई उसके लिए गरल बन जाएगी।

मीनाक्षी को समझा-बुझाकर समीर अभी अपने को संयत करने की कोशिश कर ही रहा था कि उसके,'बॉस' का बुलावा आ गया। उसका 'बॉस' कुछ देर तक समीर से ऑफ़िस के काम के संबंध में बातें करता रहा, फिर उसने समीर से पूछा, 'समीर! क्या तुम्हारे घर में कुछ पारिवारिक समस्या चल रही है?'

'कैसी समस्या, सर!, ऐसी कोई बात तो नहीं है। पर आप यह सवाल क्यों पूछ रहे हैं, सर!' तब उसके बॉस ने बताया कि उसकी पत्नी फ़ोन पर उसको और मीनाक्षी को लेकर कुछ बातें कह रही थी। मैंने उसको समझाया भी कि ऐसा कुछ नहीं है, क्योंकि यदि ऐसा कुछ होता तो उसे भी ज़रूर पता चलता। पर वह हमारी बात मानने को कतई तैयार नहीं थी। समीर को तो जैसे काटो तो खून नहीं। वह एकदम स्तब्ध विस्मय-भरी आँखों से बॉस की ओर देखता रहा। पर कुछ बोल नहीं पाया। बॉस ने समीर के कंधे पर हाथ रख कर उसका ढाँढ़स बँधाया और कहा कि वह अपनी पत्नी के साथ बैठकर इस ग़लतफ़हमी को शीघ्र दूर

कर ले। अन्यथा इसका परिणाम बड़ा भयानक हो सकता है। समीर चुपचाप उठकर अपने चैम्बर में आ गया और दोनों हाथों में अपना सिर पकड़कर बैठ गया। न जाने कितनी देर तक वह यों ही बैठा रहा।

ऑफ़िस के सभी लोग जा चुके थे। अन्त में जब गॉर्ड ने ऑफ़िस बन्द करने की बात समीर को बताई, तो वह उठकर ऑफ़िस से बाहर चला गया।

समीर सीधा अपने घर जाने के बजाय 'कॉफ़ी-डे' में जाकर बैठ गया और कॉफ़ी का ऑर्डर दे दिया।

कॉफ़ी पी लेने के बाद भी वह बहुत देर तक वहीं बैठा रहा। रात को दस बज गए। 'कॉफ़ी-डे' के बन्द होने का समय हो गया था। समीर ने पेमेण्ट दिया और बाहर निकल आया।

समीर उस घटना से आहत तो बहुत हुआ, पर वह शान्त रहा। उसने अपने पिता को यह भरोसा दिलाया था कि वह अपनी शादी बचाने का भरसक प्रयास करेगा। अर्चना और उसकी माँ यह उम्मीद कर रही थीं कि वह घर पहुँचकर हंगामा करेगा अथवा अपनी इस ग़लती के लिए माफ़ी माँगेगा। पर उसने ऐसा कुछ नहीं किया तो शायद उन्होंने यह सोच लिया कि मीनाक्षी और समीर के बीच सचमुच ही कुछ चल रहा है। पर उन्होंने भी इस विषय में आगे कोई चर्चा नहीं की। सब शांतिपूर्वक चल रहा था। समीर खुश था कि शायद अब उनके बीच सब कुछ ठीक हो रहा है। और तभी---।

समीर उस दिन शाम को लगभग छह बजे ही घर पहुँच गया। उसे घर जल्दी आने के लिए अर्चना ने ही कहा था। दरवाज़ा बन्द था। उसने घण्टी बजाई, पर किसी ने दरवाज़ा नहीं खोला। दुबारा घण्टी बजाई तो अर्चना ने दरवाज़ा खोला। समीर ने देखा कि ड्राइंगरूम में कई लोग बैठे हुए हैं। वह घर में घुसा ही था कि अर्चना ज़ोर-ज़ोर से रोने-चिल्लाने लगी। उसने अपनी साड़ी और ब्लाउज़ भी फाड़ लिये। समीर यह सब देख कर स्तब्ध रह गया। इसके पहले कि वह कुछ समझ पाता, कि पुलिस आ गई। पुलिस को घर आया देख वह और भी हैरान हो गया। अर्चना रो-रो कर पुलिस को बता रही थी कि समीर ने उसे मारा-पीटा है तथा उसके परिवार वालों के सामने उसकी इज़्ज़त उतारने की कोशिश की है। समीर कुछ बोल नहीं पाया। पुलिस वालों ने वहाँ बैठे उसके चाचा से दो-एक प्रश्न किये और फिर समीर को अपने साथ चलने को कहा। उसने एक बार अर्चना की ओर देखा और बिना कुछ कहे पुलिस वालों के साथ बाहर निकल गया।

पुलिस थाने पहुँचकर उसने पुलिस को सारी बातें साफ़-साफ़ बता दीं और यह भी कि अर्चना के परिवार वालों के आने की तो उसे कोई खबर भी नहीं थी। उसने पुलिस को यह भी बताया कि उस दिन ऑफ़िस जाने से पहले अर्चना ने ही उसे ठीक छह बजे घर आने के लिए कहा था। पुलिस समीर से पूछताछ कर ही रही थी कि अर्चना के साथ उसके चाचा और मामा भी पुलिस-थाने पहुँच गए। उनकी बातचीत से पुलिस को यह बात समझ में आ गई थी कि अर्चना ने झूठ-मूठ का उसे फँसाया है। थानेदार ने यह कहकर कि यह उन दोनों के आपस का मामला है, अत: अपने घर जाकर ख़ुद ही इसे सुलझा लें, उन्हें घर भेज दिया।

अर्चना जिस टैक्सी से पुलिस थाने आई थी उसी टैक्सी से वापस लौट गई। समीर पल-पल दूर जाती टैक्सी को तब तक देखता रहा जब तक कि वह आँखों से ओझल नहीं हो गई। पुलिस थाने से निकलकर वह पैदल ही चल पड़ा। बिना सोचे-समझे कि आख़िर उसे

जाना कहाँ है? उस उजाली रात में भी उसे सब तरफ अँधेरा-ही-अँधेरा दिख रहा था।

रात को लगभग ९ बज रहे थे। सितम्बर महीने की हल्की ठंडी हवा उसके शरीर को तो राहत दे रही थी, पर मन में जो तूफ़ान चल रहा था, वह कैसे शान्त होता? आज जो कुछ घटित हुआ था उसकी तो वह सपने में भी कल्पना नहीं कर सकता था। बड़ी देर तक वह यों ही सड़क पर भटकता रहा। वह अपने को बहुत थका हुआ महसूस कर रहा था। मन से भी और तन से भी।

संयोग से तभी एक थ्री- व्हीलर आता दिखाई दिया। उसने उसे रोका और ८, स्टैनली रोड चलने को कहा। लगभग २० मिनट बाद वह अपने दोस्त शहज़ाद के घर के सामने खड़ा था। क्या इतनी रात गए उसे जगाना ठीक रहेगा? पर वह जाए भी तो कहाँ जाए? देर रात गए समीर को अपने घर आया देख शहज़ाद के मन में चन्द पलों में ही अनेक सवाल घूम गए। पर उसने कोई सवाल नहीं किये। शहज़ाद को देखकर समीर के धैर्य का बाँध टूट गया। उसने उसे बाहों में भर लिया और ज़ोर-ज़ोर से रोने लगा। कुछ देर रो लेने के बाद समीर का मन कुछ हल्का हुआ। फिर उसने उसे पूरी घटना सुनाई जिसे सुनकर शहज़ाद को भी बेहद दुःख हुआ। शहज़ाद ने समीर को समझाया कि वह अपने माँ-बापू से इस विषय में कल सुबह ही बात करे, तो अच्छा रहेगा।

दूसरे दिन सुबह ही समीर ने अपने पापा को फ़ोन मिलाया। फ़ोन पर जब पापा की आवाज़ सुनाई दी तो वह अपने को सँभाल नहीं पाया और फूट-फूट कर रोने लगा। धीरे-धीरे जब वह शान्त हुआ तो अस्थाना साहब ने पूछा, 'समीर बेटे! ऐसी क्या बात हो गई कि तुम इस तरह रो रहे हो?' समीर ने एक-एक कर अर्चना की सभी करतूतों का वर्णन करते हुए उसकी मंशा उजागर की। समीर की बातें सुनकर अस्थाना साहब बहुत दुःखी हुए। उन्होंने बस उसे इतना दिलासा दिलाया कि वह अभी शांत रहे। वे ख़ुद कल शाम तक वहाँ पहुँच जाएँगे और फिर इस नई परिस्थिति से निपटने का उपाय निकालेंगे। समीर से बात करने के बाद उन्होंने अर्चना से बात की। पर अर्चना का रुख तो आज एकदम बदला हुआ था। उसने उन्हें बीच में ही टोकते हुए कहा, 'पापा! अब समझौते की कोई गुंज़ाइश नहीं बची है। अब तो बस आर या पार।'

'क्या मतलब है तुम्हारा, अर्चना', अस्थाना ने पूछा तो उसने अपनी मंशा स्पष्ट करते बताया कि अब वह उन्हें या तो कोर्ट में मिलेगी या फिर उन्हें उसकी शर्तें माननी पड़ेंगी', फिर उसने एक-एक कर अपनी शर्तें गिनाईं।

उसकी पहली शर्त थी डेढ़ करोड़ रुपये कैश, दूसरी शर्त हरिद्वार वाला अस्थाना साहब का मकान उर्मिल के नाम और तीसरी शर्त थी पुणे का मकान उसके नाम। अर्चना की बात सुनकर अस्थाना साहब को बड़ा झटका लगा। पर उन्होंने उसकी शर्तों को लेकर कुछ नहीं कहा। उन्होंने अर्चना को समझाया कि इतना बड़ा समझौता फ़ोन पर तो हो नहीं सकता। इसलिए वे कल वहीं आ रहे हैं, ताकि दोनों परिवार बैठकर आराम से इन बातों पर गौर कर निर्णय ले सकें।

'तो ठीक है, पापा',अर्चना ने कहा और फ़ोन रख दिया।

अस्थाना साहब दूसरे दिन सुबह ही हवाई मार्ग से वहाँ पहुँच गए। शहज़ाद ने उनके ठहरने का इंतज़ाम अपने घर पर ही कर रखा था। दूसरे दिन ११ बजे के आस-पास वे लोग अर्चना के घर पहुँचे।

जैसा कि समीर ने बताया था, अस्थाना साहब ने देखा कि वहाँ अर्चना की माँ, उसके मामा, उसके चाचा तथा उसका कज़िन गणेश जैसे पूरी तैयारी के साथ विद्यमान हैं। बातचीत का सिलसिला शुरू हुआ और अस्थाना साहब ने अर्चना को समझाने की कोशिश की तो उसने उन्हें बीच में ही टोकते हुए कहा, 'पापा! अब इन सब बातों का कोई मतलब नहीं है। मैंने तो आप को उस दिन ही फ़ोन पर स्पष्ट कर दिया था कि या तो आप लोग मेरी शर्तें मानकर समझौता कर लें, अन्यथा मैं आप लोगों को कोर्ट में घसीटूँगी।'

'फिर ठीक है', अस्थाना साहब ने थोड़ा कड़ा रुख अपनाते हुए कहा, 'तुम्हें कोर्ट में जाना है, तो जाओ; हम भी देखते हैं कि कोर्ट तुम्हें क्या दिलवा पाता है! पर हाँ, उसके पहले तो तुम्हें यह मकान छोड़कर जाना होगा, क्योंकि इस मकान का मालिकाना हक समीर के पास है। जहाँ तक हरिद्वार वाले मकान की बात है, तो मैंने वह मकान अपने खून-पसीने की कमाई से अपने रहने के लिए बनवाया है, न कि किसी और के लिए। उसे तुम्हारे या तुम्हारी बेटी के नाम करने का सवाल ही नहीं उठता। अब रही समीर के मकान की बात, तो जब तक कोर्ट ऐसा आदेश नहीं देता, तब तक तुम्हारा इस मकान पर कोई हक नहीं बनता। रही डेढ़ करोड़ रुपये की तुम्हारी तीसरी शर्त, तो तुम्हें यह पता ही होगा कि समीर ने अब तक कितने करोड़ रुपये कमाये हैं और उसका बैंक-बैलेंस कितना है? यदि वह तुम्हें डेढ़ करोड़ रुपये दे पाने की हालत में है तो उस पर चर्चा अवश्य की जा सकती है।' अस्थाना साहब की तर्कभरी बात सुनकर वे सब सकते में आ गए। बात बिगड़ती देख, अर्चना के मामा ने बात सँभालने के उद्देश्य से कहा, 'नहीं, अस्थाना साहब! यह आपस की बात है, यहाँ कोर्ट-कचहरी की बात करना बेमानी है। अर्चना अभी बच्ची है जो इस तरह की बात कर रही है। हम आपस में बातचीत के द्वारा ही कोई-न-कोई सर्वमान्य हल निकाल लेंगे।'

'खैर', अस्थाना साहब ने आगे कहना शुरू किया, 'अब जब यह निश्चित हो गया है कि अर्चना और समीर एक साथ नहीं रह सकते, तो उचित यही होगा कि हम लोग तलाक की प्रक्रिया शुरू कर दें। जब तक तलाक नहीं हो जाता, अर्चना चाहे तो समीर के साथ इसी मकान में रहे। समीर उसका तथा उर्मिल का खर्च यथावत् उठाता रहेगा। तलाक के बाद कोर्ट द्वारा निर्धारित सुविधाएँ अर्चना तथा उर्मिल को मिलती रहेंगी।'

अर्चना और उसके परिवार वालों को यह बात भली-भाँति मालूम थी कि समीर के पास न तो कोई बड़ा बैंक-बैलेंस है और न ही उसकी इतनी बड़ी सैलरी कि उसके आधार पर कोर्ट द्वारा निर्धारित सुविधाओं से अर्चना अपना तथा उर्मिल का खर्च उठा पाएगी। उनकी धमकी तो अस्थाना साहब पर कोई

असर दिखा नहीं पाई थी। अत: जरूरी था कि बातचीत के द्वारा ही कोई ऐसा हल निकले कि अर्चना का काम चलता रहे और उसकी बेटी का लालन-पालन भी ठीक से हो सके। इसलिए उसके मामा ने उर्मिल का वास्ता देकर आपसी-समझौते पर बल देते हुए, बात को आगे बढ़ाया और कहा, कि ''कोर्ट का जो भी फैसला होगा वह तो सबको मान्य होगा ही, पर उसके अतिरिक्त कुछ ऐसी व्यवस्था पर भी विचार करना चाहिए जिससे उर्मिल का भविष्य सवँर सके।'

अस्थाना साहब को भी उर्मिल की कम चिन्ता नहीं थी। इसीलिए वे अन्त तक प्रयासरत रहे थे कि अर्चना-समीर का अलगाव न हो। पर वे सफल नहीं हो पाए थे। उन्होंने बिना बात को आगे बढ़ाये अपना फ़ैसला सुना दिया। उन्होंने कहा कि वे दस लाख रुपये उर्मिल के नाम से बैंक में फ़िक्स करा देंगे और कोर्ट के फ़ैसले के अतिरिक्त वे अपनी तरफ़ से प्रतिमाह दस हज़ार रुपये उनके खर्च के लिए आजीवन देते रहेंगे। समीर को अपने पापा की दरियादिली बहुत अच्छी नहीं लगी, पर वह चुप रहा। अर्चना के घर वालों को तो मानों उनके मन की मुराद मिल गई हो।

दूसरे दिन कोर्ट में उनके तलाक का केस दाखिल कर दिया गया। लगभग छह माह लगे, तलाक होने में। उस दिन अस्थाना साहब भी कोर्ट में मौजूद थे। कोर्ट से बाहर निकलकर उन्होंने उर्मिल को एक लिफ़ाफ़ा पकड़ाया। उस लिफ़ाफ़े में दस लाख रुपये की एफ़-डी- का एक सर्टिफ़िकेट के साथ उस महीने के खर्च के लिए दस हज़ार रुपये का एक चेक रखा था।

उर्मिल जब वह लिफ़ाफ़ा उनके हाथ से ले रही थी कि उसकी हथेली पर आँसू की कुछ बूँदें आकर गिरीं। उर्मिल ने सिर उठाकर अपने दादा जी की ओर देखा। उन्होंने अपना मुँह दूसरी तरफ़ फेर लिया था। वह उन्हें लम्बे-लम्बे डग भरते हुए, देवदार के जंगलों की ओर जाते हुए देख रही थीं। ओंस की बूँदों की तरह उसके आँसू टप-टप गिर रहे थे।

000

गीत

गीत

दीपक शर्मा दीप

राम का चाकर महँगी कर के बैठा है यूँ चून
राम राज में राम न पाएँ रोटी दोनों जून
राम नाम से राम भगत जी खाएँ रोज़ मलाई
खाली डिब्बे देख के रोएँ लक्ष्मण की भौजाई
जब खलिहर चाचा का काजू ख़तम होय गुलफ़ाम!
मुँह में गुठली डाल के तब ललकारें जय श्री राम
कूकुर खाए कुरुई-परऽई, चिरई खाए कौआ
सत्यनारायण कथा है लेकिन देंगे नहीं बुलौआ
लड़िका माँगे ठोर्रा-मकुनी अम्मा दें दस गारी
पूड़ी-पूड़ा सपना है अब जय भोले भंडारी
संसद भवन में झालर झूमे मंत्री भवन में दारू
धनतेरस पर चप्पल जुड़वा लायी है मेहरारू
बसें कह रहीं आएँ मुसाफ़िर झोला वहाँ रखाएँ
जेब कह रही ससुर के नाती हिम्मत हो तो जाएँ
डेंगू से बचकर रहना है नगरपालिका गाए
मच्छरदानी तीन कोस से पाँच रोज़ हो जाए
कवियों से छूटी कविताई महँगी हुई दवात
सबसे महँगे कविवर सिसकें खाएँ सूखा भात
लल्लन जी का ललना रोए पल्लन जी का पलना
ठग्गन जी का ठिंगना गाए चल गोरी संग सजना
करवाचौथ पे मँझली माँगे परजौटी इक साड़ी
मँझला उचक के आँख नचाएँ फिर से पीए ताड़ी
परजा मतलब मूरख समझें करजा मतलब सोना
खोद निपोर किया ज़्यादा तो लगवा देंगे टोना
राम अवधपति राम सीयपति राम जगतपति राम
राम राम ख़ुद राम गोहारें कैसा है कोहराम
मजनू देखे पूड़ी-सब्जी लैला ख़ाब में पूआ
इश्क़ विश्क़ सब भाड़ में जाए बूआ आईं बूआ
उठा दहिज़रा कूटर ले के निकला लेने तेल
तेल की क़ीमत देख के घूमा और हो गया खेल
मास्टर बोलें 'ग' से गुझिया 'अ' से आलूबंडा
मुखिया बोले 'ठ' से बच्चों ठगिनी जी का झंडा
गैस कनिक्शन यहाँ सेत में दे के चल दी चाल
वहाँ सिलिंडर महँगा कर के हो गए मालामाल
कुतिया चाटा बर्तन पाए जूठा खाए जच्चा
पैदा होने से डरता है होने वाला बच्चा
घण्टी समय समय पे बजती होती नहीं पढ़ाई
विद्यालय है शौचालय के बूते हाई-फाई

000

दीपक शर्मा दीप, 343 पेप्टिक सिटी कॉलोनी, सोहावल, सतना (म.प्र.) पिन - 485441, संपर्क- 9540749166

सुश्री फ़ोर्ब्स की सुखद गर्मियाँ

लातिन अमेरिकी कहानी

मूल लेखक : गैब्रिएल गार्सिया मार्खेज़
अनुवाद : सुशांत सुप्रिय

गैब्रिएल गार्सिया मार्खेज़
लातिन अमेरिकन उपन्यासकार, कहानीकार, पटकथाकार और पत्रकार।
(मार्च 6, 1927-अप्रैल 17, 2014)

सुशांत सुप्रिय
A-5001, गौड़ ग्रीन सिटी, वैभव खंड,
इंदिरापुरम्, ग़ाज़ियाबाद-201014 उ. प्र.
मोबाइल- 8512070086
ईमेल : sushant1968@gmail.com

जब दोपहर में हम मकान पर वापस लौटे तो हमने एक विशाल समुद्री साँप को दरवाज़े के चौखटे पर गले से कील से जड़ा हुआ पाया। वह साँप काला और चमकीला था। अपनी अब भी चमकदार आँखों और खुले जबड़े में मौजूद आरे जैसे दाँतों की वजह से यह साँप किसी कंजर के अभिशाप की तरह लग रहा था। उस समय मैं लगभग नौ वर्ष का था और सन्निपात जैसे हालात में देखे गए उस दृश्य के कारण मैं इतना ज़्यादा डर गया कि कुछ देर के लिए मेरी घिग्घी बँध गई। लेकिन मुझसे दो वर्ष छोटा मेरा भाई ऑक्सीजन टैंक, नक़ाब और मीनपक्ष फेंक कर डर के मारे चिल्लाता हुआ वहाँ से भाग खड़ा हुआ। पत्थर की सीढ़ियों पर खड़ी सुश्री फ़ोर्ब्स ने उस आवाज़ को सुना। ये पथरीली सीढ़ियाँ चट्टानों के साथ-साथ चलती हुई गोदी से घर तक आती थीं। ज़र्द चेहरा लिए वे दौड़ती और हाँफती हुई हमारे पास आईं। लेकिन जैसे ही उन्हें दरवाज़े पर कील से जड़ा वह विशाल साँप दिखा, वे हमारे भयभीत होने का कारण समझ गईं। वे हमेशा कहती थीं कि जब दो बच्चे इकट्ठे होते हैं तो एक के अकेले किए गए कारनामे के लिए वे दोनों ही ज़िम्मेदार होते हैं। इसलिए मेरे भाई के चीखने-चिल्लाने पर उन्होंने हम दोनों को ज़ोर से डाँटा और हमारे आत्म-नियंत्रण में कमी के कारण वे हमें देर तक फटकार लगाती रहीं। वे जर्मन भाषा में हमें डाँट रही थीं, न कि अंग्रेज़ी में, जिसमें हमें पढ़ाने के अनुबंध पर उन्होंने हस्ताक्षर किए थे। शायद ऐसा इसलिए था क्योंकि वे भी उस विशाल साँप को देखकर डर गई थीं, लेकिन वे इस बात को स्वीकार नहीं करना चाहती थीं। पर जैसे ही वे थोड़ा सहज हुईं, वे वापस अपनी कठोर अंग्रेज़ी और शैक्षणिक सनक पर लौट आईं।

"इसे 'मुरेएना हेलेना' कहते हैं," उन्होंने हमें बताया।" यह जानवर प्राचीन ग्रीक-वासियों के लिए पवित्र था।"

तभी अचानक स्थानीय लड़का ओरेस्ते एगेव पौधों के पीछे नज़र आया। वह हमें गहरे पानी में तैरना सिखाता था। अपने माथे पर उसने गोताखोरी वाला नक़ाब पहन रखा था। साथ ही उसने तैरने की एक छोटी पोशाक पहनी हुई थी। उसकी कमरबंद में विभिन्न आकारों के छह चाकू बँधे हुए थे। दरअसल पानी के भीतर अपने शिकार से भिड़ते समय वह उन पर बेहद क़रीब से वार करता था। वह लगभग बीस वर्ष का था और वह ज़मीन पर समय बिताने की बजाए अपना अधिकांश समय पानी के भीतर समुद्र-तल पर बिताता था। वह अपनी देह पर हमेशा इंजन का तेल मल लेता था जिसके कारण वह पानी के भीतर किसी समुद्री जीव जैसा दिखता था। जब सुश्री फ़ोर्ब्स ने उसे पहली बार देखा तो उन्होंने मेरे माता-पिता को बताया कि उससे सुंदर इंसान की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। लेकिन उसकी सुंदरता भी उसे सुश्री फ़ोर्ब्स की सख़्ती से नहीं बचा पाई। उसे भी इतालवी भाषा में उनकी झिड़की सहनी पड़ी क्योंकि उसने मोरे ईल को दरवाज़े पर टाँग दिया था। उसका एकमात्र उद्देश्य यही था कि हम बच्चे उस विशाल सर्पाकार जीव को देख कर डर जाएँ। तब सुश्री फ़ोर्ब्स ने उसे उस जीव को वहाँ से उतार कर हटा देने के लिए कहा। उनकी आवाज़ में उस पौराणिक जीव के लिए सम्मान का भाव था। फिर उन्होंने हमें भोजन करने के लिए कपड़े बदल कर आने का आदेश दिया।

हमने बिना देर किए ऐसा ही किया। हम कोशिश करते रहे कि हमसे कोई ग़लती न हो। सुश्री फ़ोर्ब्स के अधीन दो हफ़्ते बिताने के बाद हम समझ गए थे कि जीने से अधिक मुश्किल और कुछ नहीं था। गुसलखाने की मद्धिम रोशनी में नहाते समय मैं जान गया कि मेरा छोटा भाई अब भी उसी मोरे ईल के बारे में सोच रहा था। "उसकी आँखें लोगों की तरह थीं," उसने कहा। मैं उससे सहमत था लेकिन मैंने इसके ठीक विपरीत बात कही और कपड़े धोने तक मैं बातचीत का विषय बदलने में कामयाब हो गया। लेकिन जब मैं स्नान करने के बाद गुसलखाने से बाहर आया तो छोटे भाई ने मुझे रुक कर साथ चलने के लिए कहा।

"अभी तो दिन का समय है।" मैं बोला।

मैंने पर्दे हटा दिए। वह अगस्त के बीच का महीना था और खिड़की में से आप द्वीप के दूसरी

ओर तक का समूचा पथरीला मैदान देख सकते थे। सूरज जैसे बीच आकाश में रुका हुआ था।

"इसलिए नहीं। दरअसल मैं डर जाने से डर रहा हूँ।" छोटा भाई बोला।

लेकिन जब हम भोजन की मेज़ तक आए तो वह शांत हो चुका था। उसने इतने ध्यान से सब कुछ किया कि सुश्री फ़ोर्ब्स ने विशेष रूप से उसकी तारीफ़ की और उसे हफ़्ते के 'अच्छे व्यवहार' वाली तालिका में दो अंक प्राप्त हुए। दूसरी ओर उसी तालिका से मेरे पाँच में से दो अंक कट गए। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि मुझे देर हो रही थी और मैं बिल्कुल अंत में भाग कर भोजन-कक्ष में पहुँचा, जिसके कारण मेरी साँस चढ़ी हुई थी। तालिका में अपने नाम के नीचे पचास अंक जुड़ने पर हमें दुगनी मिठाई मिलती थी। लेकिन हम दोनों भाइयों में से किसी के भी पंद्रह से ज़्यादा अंक नहीं जुड़े थे। यह वाक़ई अफ़सोस की बात थी क्योंकि सुश्री फ़ोर्ब्स के द्वारा बनाई गई मिठाइयों से ज़्यादा स्वादिष्ट चीज़ हमें फिर कभी खाने के लिए नहीं मिली।

भोजन शुरू करने से पहले हम सब खड़े होकर प्रार्थना करते थे। सुश्री फ़ोर्ब्स कैथोलिक धर्म को मानने वाली महिला नहीं थीं लेकिन उनके करार में यह लिखा हुआ था कि उन्हें दिन में छह बार प्रार्थना करनी होगी। उन्होंने करार की शर्त पूरी करने के लिए हमारी प्रार्थना सीख ली थी। उसके बाद हम तीनों बैठ जाते और हम अपनी साँस रोके रहते जबकि सुश्री फ़ोर्ब्स हमारे पूरे आचरण पर विचार करतीं। जब उन्हें सब कुछ बिलकुल सही लगता, तभी वे घण्टी बजाती थीं। तब रसोइया फ़ुल्विया फ़लैमिनिया गर्मियों का घृणास्पद सेवइयों का शोरबा ले कर कक्ष में आती।

शुरू में जब हम अपने माता-पिता के साथ होते थे, तब भोजन करना किसी त्योहार की तरह होता था। फ़ुल्विया फ़लैमिनिया मेज़ के चारों ओर खिलखिलाते हुए हमें खाना परोस रही होती। वहाँ फैली अव्यवस्था से हम ख़ुश हो जाते। फिर वह हमारे साथ बैठ कर सबकी थाली में से कुछ-न-कुछ ले कर खाती। लेकिन जब से सुश्री फ़ोर्ब्स ने हमारी क़िस्मत की ज़िम्मेदारी सँभाल ली थी, वह एक मनहूस चुप्पी के साथ खाना परोसती थी जहाँ हमें केवल परात में शोरबे के उबलने की आवाज़ आती थी। हम अपनी रीढ़ की हड्डियाँ कुर्सियों पर टिकाए, दस बार दाईं और दस बार बाईं ओर से खाना चबाते रहते थे। हमारी आँखें उस सख़्त, निरुत्साही, ठंडी महिला पर टिकी रहतीं जो हमें शिष्टाचार के रटे हुए नियम सुनाती रहती। यह सब लगभग रविवार की सामूहिक प्रार्थना की तरह होता लेकिन यहाँ प्रार्थना-गीत की सान्त्वना नहीं होती।

जिस दिन हमें अपने दरवाज़े से टँगी मोरे ईल मिली, सुश्री फ़ोर्ब्स ने हमारे देशभक्तिपूर्ण दायित्वों के बारे में हमसे बात की। शोरबे के बाद फ़ुल्विया फ़्लैमिनिया हमारे लिए ख़ुशबूदार, गर्म कबाब के कतले ले कर आई। वह जैसे हमारी शिक्षिका की आवाज़ से विरल बना दी गई हवा पर तैर रही थी। मुझे ज़मीन पर या हवा में किसी और खाद्य-पदार्थ की बजाए मछली ज़्यादा पसंद है और गुआकैमायाल के हमारे घर की याद आते ही मुझे चैन आ गया। लेकिन मेरे भाई ने चखे बिना ही उस व्यंजन को खाने से इंकार कर दिया।

"मुझे यह पसंद नहीं।" उसने कहा।

सुश्री फ़ोर्ब्स ने अपना प्रवचन बीच में रोक दिया।

"तुम यह कैसे कह सकते हो ? तुमने अभी इसे चखा भी नहीं।"

उन्होंने आँखों के इशारे से रसोइये को धमकी दी लेकिन तब तक देर हो चुकी थी।

"मोरे विश्व की सर्वश्रेष्ठ मछली होती है, मेरे बच्चे।" फ़ुल्विया फ़्लैमिनिया ने कहा। "चख कर देखो तो सही।"

सुश्री फ़ोर्ब्स शांत बनी रहीं। उन्होंने अपने बेदर्द तरीक़े से हमें बताया कि पुरातन काल में मोरे ईल राजाओं द्वारा खाए जाने वाला एक स्वादिष्ट व्यंजन था। यहाँ तक कि योद्धा भी इसके पित्त को खाने के लिए आपस में लड़ते थे। माना जाता था कि इसे खाने से योद्धाओं में अलौकिक साहस का संचार होता था। फिर उन्होंने थोड़े समय में अपनी पुरानी बात को दोहराया कि अच्छा स्वाद महसूस करना स्वाभाविक योग्यता नहीं है। इसे किसी ख़ास उम्र में सिखाया नहीं जाता, बल्कि यह तो बचपन से आरोपित किया जाता है। इसलिए हमारे पास उसे नहीं खाने का कोई वैध कारण नहीं। मैंने पहले भी मोरे ईल का स्वाद चखा हुआ था। तब मैं यह भी नहीं जानता था कि वह क्या है। इसलिए मैं इस विरोधाभास को हमेशा के लिए याद रख सका, यह चिकना और फीके स्वाद वाला था, लेकिन दरवाज़े के चौखटे पर टाँग दिए गए साँप की छवि मेरी भूख से ज़्यादा विवश करने वाली थी। मेरे भाई ने पहला कौर खाने का भरपूर प्रयास किया पर वह इसे सहन नहीं कर सका। उसने उल्टी कर दी।

"तुम गुसलखाने में जाओगे और ख़ुद को साफ़ करके दोबारा यहाँ लौट कर खाना खाओगे," सुश्री फ़ोर्ब्स ने शांत बने रहते हुए कहा।

मैंने भाई के लिए तीव्र व्यथा महसूस की क्योंकि मैं जानता था कि उसे पूरे मकान को पार करके उस प्रारम्भिक अँधेरे में गुसलखाने में अकेले रहना कितना मुश्किल लगता था। लेकिन वह जल्दी ही एक साफ़-सुथरी क़मीज़ पहन कर वापस लौट आया। उसका रंग पीला पड़ गया था और वह हल्का-सा काँप रहा था। उसने सफ़ाई से सम्बंधित सुश्री फ़ोर्ब्स की कठोर निगाहों को ठीक से बर्दाश्त किया। तब सुश्री फ़ोर्ब्स ने मोरे ईल का एक टुकड़ा काटा और हमें खाना जारी रखने के लिए कहा। मैंने किसी तरह दूसरा टुकड़ा मुँह में डाला लेकिन मेरे भाई ने छुरी-काँटे को हाथ भी नहीं लगाया।

"मैं इसे नहीं खाऊँगा।" उसने कहा। उसकी दृढ़ता इतनी स्पष्ट थी कि सुश्री फ़ोर्ब्स अपनी बात से पीछे हट गईं।

"ठीक है," उन्होंने कहा, "लेकिन आज तुम्हें कोई मिठाई नहीं मिलेगी।"

मेरे भाई को मिली राहत ने मुझ में भी साहस भर दिया। खाना ख़त्म करने पर छुरी-काँटे को प्लेट में जैसे रखना सुश्री फ़ोर्ब्स ने हमें सिखाया था, मैंने ठीक वैसे ही किया और बोला, "मैं भी मिठाई नहीं खाऊँगा।"

"और तुम दोनों टेलीविजन नहीं देखोगे।" उन्होंने कहा।

"और हम दोनों टेलीविजन नहीं देखेंगे।" मैंने कहा।

सुश्री फ़ोर्ब्स ने अपना रुमाल मेज़ पर रखा और हम तीनों प्रार्थना करने के लिए खड़े हो गए। फिर उन्होंने इस चेतावनी के साथ हमें हमारे शयन-कक्ष में भेज दिया कि उनके भोजन समाप्त कर लेने तक हमें सो जाना है। हमारे सभी 'अच्छे व्यवहार' वाले अंक रद्द कर दिए गए। जब हम बीस अंक और अर्जित कर लेते, तभी हमें उनकी बनाई क्रीम-केक, वनीला की सुगंधित कचौरियाँ, और आलूबुख़ारे की उत्कृष्ट पेस्ट्री फिर से खाने के लिए मिलनी थी।

जल्द ही या बाद में हमें अवकाश तो मिलना ही था। पूरे साल हम सिसिली के दक्षिणी छोर पर स्थित पैंटेलेरिया द्वीप पर आज़ादी की गर्मियों की प्रतीक्षा करते रहे। पहले कुछ महीने, जब हमारे माता-पिता यहाँ मौजूद थे तब हमें ख़ूब मज़ा आया था। मैं अब भी वे दिन किसी सपने की तरह याद करता हूँ : ज्वालामुखी के पत्थरों से भरा धूप में तपता हुआ मैदान, अनंत समुद्र, ईंटों तक चूने से पुता मकान। जब रात में हवा नहीं चलती तब आप खिड़कियों में से अफ़्रीका के प्रकाश-स्तम्भों की चमकदार रोशनी की किरणों को देख सकते थे। अपने पिता के साथ द्वीप के चारों ओर के समुद्र के सुप्त तल पर खोज-बीन करते हुए हमने पीले रंग के टॉरपीडो की एक क़तार ढूँढ़ निकाली थी। वे पिछले युद्ध के समय से समुद्र-तल में आधे धँसे पड़े हुए थे। हम एक मीटर ऊँचे ग्रीस के एक दोहत्थे कलश को वहाँ से ढूँढ़ कर ऊपर ले आए थे। वहाँ गहराई में कुछ फूलमालाएँ थीं और अति-प्राचीन शराब की बोतलों के तल में थोड़ी ज़हरीली शराब भी मौजूद थी। वहाँ हमने गर्म पानी में स्नान भी किया था और वहाँ उबलते हुए पानी में इतनी घनी भाफ़ थी गोया आप उस पर चल सकते थे।

लेकिन हमारे लिए सबसे ज़्यादा चौंधिया देने वाला रहस्योद्घाटन तो स्वयं फ़ुल्विया फ़्लैमिनिया थी। वह किसी हँसमुख धर्माध्यक्ष की तरह लगती थी और जब वह चलती थी तो बहुत-सी उनींदी बिल्लियाँ उसके आगे-पीछे घूमती रहती थीं। लेकिन उसका कहना था कि वह बिल्लियों के प्रति किसी स्नेह की वजह से उन्हें सहन नहीं करती थी बल्कि ख़ूँख़ार चूहों द्वारा काट खाए जाने से ख़ुद को बचाने के लिए ऐसा करती थी। हमारे माता-पिता रात में टेलीविजन पर वयस्कों के लिए दिखाए जाने वाले कार्यक्रम देखने में व्यस्त रहते थे। उस समय फ़ुल्विया फ़्लैमिनिया हमें हमारे घर से सौ मीटर से भी कम दूरी पर स्थित अपने घर ले जाती थी। तब वह हमें टूनिस से बह कर आने वाली हवाओं के साथ सुनाई देने वाली दूरस्थ बड़बड़ाहट, गीतों और रुदन की आवाज़ों में फ़र्क़ करना सिखाती थी।

उसका पति उससे उम्र में बहुत छोटा था। वह गर्मियों में द्वीप के दूसरी ओर स्थित पर्यटकों से भरे होटलों में काम करता था और रात में केवल सोने के लिए घर आता था। ओरेस्टे अपने माता-पिता के साथ वहाँ से थोड़ी दूर ही रहता था। रात में वह हमेशा मछलियों की मालाएँ और समुद्री झींगों से भरी टोकरियाँ लिए हुए दिखाई देता था, जिन्हें वह रसोई में टाँग देता था। फ़ुल्विया फ़्लैमिनिया का पति उन्हें अगले दिन होटलों में बेच देता था। फिर ओरेस्टे अपने माथे पर गोताखोरी वाली पथ-प्रदर्शक बत्तियाँ बाँध कर हमें खेत के ख़रगोशों जितने बड़े चूहे पकड़ने के लिए ले जाता था। ये चूहे रसोई से निकलने वाली बची-ख़ुशी जूठन की ताक में वहाँ घूमते रहते थे। कभी-कभी हम अपने माता-पिता के सो जाने के बाद वापस घर आते थे। तब बची-खुची जूठन के लिए आँगन में चूहे इतना शोरगुल मचा रहे होते थे कि हमारा सोना दूभर हो जाता था। लेकिन यह मुसीबत भी हमारी सुखद गर्मियों का एक जादुई अंश थी।

एक जर्मन शिक्षिका की सेवा लेने का निर्णय केवल मेरे पिता ही कर सकते थे। वे एक कैरेबियाई देश के लेखक थे जिनमें योग्यता कम थी, परिकल्पना अधिक। उनकी आँखें यूरोप के प्रताप की राख से चौंधियाई हुई थीं। पिता अपनी किताबों और वास्तविक जीवन में भी अपनी उत्पत्ति के प्रति क्षमायाचना का भाव रखते थे। उन्होंने इस मोह-माया के आगे घुटने टेक दिए थे और वे चाहते थे कि उनके बच्चों में उनके अपने अतीत का लेशमात्र भी अंश न रहे। मेरी माँ अब भी उतनी ही विनीत थीं जितना वे अल्टा गुआज़िरा में शिक्षिका के रूप में काम करने वाले दिनों में रही थीं। उन्होंने कभी सोचा भी नहीं था कि उनके पति को कोई ऐसा विचार भी सूझ सकता है जो शुभ और समयोचित से कम हो। इसलिए वे दोनों अपने हृदय से नहीं पूछ सकते थे कि हम बच्चों का जीवन डोर्टमंड की एक हवलदार महिला के अधीन कैसा हो जाएगा। एक ऐसी महिला जो यूरोपीय समाज की सबसे प्राचीन और बासी आदतें ज़बर्दस्ती हमें सिखाने पर तुली हुई थी। किंतु दूसरी ओर वे तथा चालीस अन्य फ़ैशनप्रिय लेखक एजियन समुद्र में स्थित द्वीपों पर पाँच हफ़्तों के सांस्कृतिक मिलन का मज़ा ले रहे थे।

सुश्री फ़ोर्ब्स पैलेरमो से आने वाली नियत नाव से जुलाई के अंतिम शनिवार के दिन आईं। जैसे ही हमने उन्हें देखा, हम समझ गए कि हमारे मौज-मस्ती के दिन अब ख़त्म हो गए। वे गर्मी के मौसम में आईं और उन्होंने सैनिकों वाले जूते पहने हुए थे। उनकी कोट के गरेबान की 'लौट' का कुछ अंश ढँका हुआ था और टोपी के नीचे उनके बाल पुरुषों जैसे कटे हुए थे। उनमें से बंदर के पेशाब की गँध आ रही थी।

"सभी यूरोपीय लोगों से गर्मियों में ऐसी ही गंध आती है," हमारे पिता ने हमें बताया।

"यह सभ्यता की गंध है।" किंतु अपनी सैनिक वेश-भूषा के बावजूद सुश्री फ़ोर्ब्स में एक बेचारगी का भाव था। वे हमारे भीतर थोड़ी करुणा जगा सकती थीं यदि हम थोड़ी बड़ी उम्र के होते या वे थोड़े नरम स्वभाव की होतीं।

हमारी तो दुनिया ही बदल गई। समुद्र में हमारी कल्पना की उड़ान के छह घंटे अब एक कष्टदायक घंटे के बार-बार दोहराव जैसे हो कर रह गए। जब हम अपने माता-पिता के साथ थे, तब हमें ओरेस्टे के साथ तैरने के लिए पूरा समय मिलता था। हम उसकी हिम्मत और कला की दाद देते थे। वह ख़ून और स्याही से गंदले हुए पानी में ऑक्टोपस के

अपने पर्यावरण में बिना किसी अन्य हथियार के, केवल एक चाकू लेकर उनसे भिड़ जाता था। वह अब भी हमेशा की तरह अपनी इंजन वाली नाव ले कर ग्यारह बजे हमारे पास पहुँच जाता था। किंतु सुश्री फ़ोर्ब्स उसे उतना समय ही हमारे साथ बिताने देती थीं जितना हमें गहरे पानी में गोताखोरी सिखाने के लिए पर्याप्त होता था। उन्होंने हमें रात में फ़ुल्विया फ़्लैमिनिया के घर जाने से मना कर दिया था क्योंकि उन्हें नौकरों के साथ अधिक घनिष्ठता पसंद नहीं थी। जो घंटे हम पहले चूहों का शिकार करते हुए बिताया करते थे, अब हमें वे घंटे शेक्सपियर के नाटकों का विश्लेषणात्मक अध्ययन करते हुए बिताने पड़ते थे। हमें आँगनों से आम चुराने और गुआकैमायाल की बेहद गर्म सड़कों पर कुत्तों को पत्थर से मारने की आदत थी। किंतु अब कठोर अनुशासन में हम जो राजकुमारों जैसा जीवन जी रहे थे, वह हमारे लिए किसी यातना से कम नहीं था।

लेकिन हमें जल्दी ही यह पता चल गया कि सुश्री फ़ोर्ब्स जितनी सख़्ती हमारे साथ बरतती थीं, उतनी सख़्त वे ख़ुद के साथ क़तई नहीं थीं। यह उनके प्रभुत्व में पहली दरार थी। शुरू में वे सैनिक वेश-भूषा में समुद्र-तट पर एक रंगबिरंगी छतरी के नीचे लेटी रहती थीं। वे वहाँ शिलर के गाथा-गीत पढ़ती रहती थीं, जबकि उस समय ओरेस्टे हमें गोताखोरी सिखाया करता था। और फिर कई घंटों तक वे हमें सही व्यवहार के बारे में सैद्धांतिक व्याख्यान देती थीं जब तक कि दोपहर के भोजन का समय नहीं हो जाता था।

एक दिन उन्होंने ओरेस्टे से कहा कि वह उन्हें अपनी नाव पर होटल की उन दुकानों तक ले चले जहाँ पर्यटक आते थे। वे अपने साथ स्नान करते समय पहनने वाला छोटा-सा काला, चमकीला वस्त्र ले कर लौटीं। किंतु उन्होंने कभी पानी में प्रवेश नहीं किया। हम तैर रहे होते जबकि वे समुद्र-तट पर धूप-स्नान का मज़ा लेतीं। वे अपने बदन से निकलने वाले पसीने को एक तौलिये से पोंछ देतीं पर स्नान करने के लिए नहीं जातीं। तीन दिनों के बाद वे एक उबले हुए समुद्री झींगे जैसी लगने लगीं और उनकी सभ्यता की गंध में साँस लेना हमारे लिए असहनीय हो गया था।

रात में वे अपनी भावनाओं को खुली छूट दे देती थीं। जब से वे यहाँ आई थीं, तभी से हमें रात में मकान के कमरों में किसी के चलने की आवाज़ सुनाई देती थी। जैसे कोई अँधेरे कमरों में रास्ता टटोल रहा हो। मेरा छोटा भाई इस विचार से डर जाता था कि ज़रूर समुद्र में डूब गए किसी व्यक्ति की रूह मकान में भटक रही है। हमने इनकी कहानियाँ फ़ुल्विया फ़्लैमिनिया से सुनी थीं। लेकिन जल्दी ही हमने पाया कि वह दरअसल सुश्री फ़ोर्ब्स थीं जो रात में एक अकेली महिला का जीवन जीती थीं। एक ऐसी महिला जिसके व्यवहार की वे दिन में स्वयं निंदा करेंगी। एक दिन सुबह पौ फटने के समय हमने जल्दी उठ कर उन्हें रसोई में आश्चर्यचकित कर दिया। दरअसल वे वहाँ किसी विद्यालय की बालिका जैसी रात्रिकालीन पोशाक में भोजन के अंत में परोसी जाने वाली अपनी शानदार मिठाइयाँ बना रही थीं। उनके चेहरे और पूरी देह पर आटा लगा हुआ था और वे इतनी बेफ़िक्री से एक गिलास में पुर्तगाली शराब पी रही थीं कि यह देखकर वास्तविक सुश्री फ़ोर्ब्स को आघात पहुँचता।

तब तक हम यह जान गए थे कि जब हम सोने के लिए बिस्तर पर चले जाते थे तो वे अपने शयन-कक्ष में नहीं जाती थीं बल्कि गोपनीय तरीक़े से अकेले में समुद्र में तैरने चली जाती थीं। कभी-कभी वे बैठक में देर तक जगी रह कर टेलीविजन पर आवाज़ बंद करके ऐसी फ़िल्में देखती थीं जिन्हें देखना नाबालिगों के लिए प्रतिबंधित था। अन्य रातों में वे पूरा केक खा जाती थीं, यहाँ तक कि बोतल की उस विशिष्ट शराब को भी पी जाती थीं जिसे पिता ने बड़ी लगन से ख़ास मौक़ों के लिए बचा कर रखा हुआ था।

सादगी और आत्म-संयम अपनाने की अपनी सीख के विरुद्ध जा कर सुश्री फ़ोर्ब्स एक अनियंत्रित सनक के तहत सब कुछ डकार जाया करती थीं। बाद में हमने उन्हें अपने कमरे में ख़ुद से बातें करते हुए सुना। हमने उन्हें जर्मन भाषा में लय में ' डाइ युंगफ़्राउ वॉन ओरलीन्स ' के पूरे उद्धरणों का पाठ करते हुए सुना। हमने उन्हें गीत गाते हुए और अपने बिस्तर पर सुबह तक सिसकते हुए सुना। फिर वह सुबह के नाश्ते के लिए उपस्थित हो जातीं। उनकी आँखें आँसुओं की वजह से सूजी हुई होतीं। वे पहले से अधिक उदास लगतीं।

मेरा भाई और मैं तब जितने दुखी थे, उससे अधिक दुखी कभी नहीं हुए, लेकिन मैं उन्हें अंत तक सहने के लिए तैयार था। दरअसल मैं जानता था कि हम कुछ भी करें, अंत में हमें उनकी बात माननी ही पड़ेगी। लेकिन मेरा छोटा भाई अपने व्यक्तित्व की सम्पूर्ण ऊर्जा के साथ उनका विरोध करता था। इसलिए प्रसन्नता की वे गर्मियाँ हमारे लिए नारकीय बन गईं। मोरे ईल की घटना तो ताबूत में अंतिम कील साबित हुई। उसी रात जब हम अपने बिस्तर पर लेट कर उस सुप्त मकान में सुश्री फ़ोर्ब्स के लगातार कमरों में आने-जाने की आवाज़ें सुन रहे थे, मेरे भाई ने अपने भीतर भरी सारी घृणा निकाल कर बाहर रख दी।

"मैं उन्हें जान से मार दूँगा।" उसने कहा। मैं हैरान हो गया। मेरी हैरानी छोटे भाई के इस निर्णय को ले कर नहीं थी। मैं इसलिए हैरान हो गया क्योंकि रात के भोजन के समय से मैं भी यही सोच रहा था। किंतु मैंने भाई को ऐसा करने से मना किया।

"वे तुम्हारा सिर काट डालेंगे।," मैंने उससे कहा।

"सिसिली में उनके पास कर्तन-यंत्र नहीं है," उसने कहा। "इसके अलावा उन्हें यह पता ही नहीं चलेगा कि किसने उन्हें मारा।"

मैंने समुद्र-तल से निकाल कर बाहर लाए गए उस दोहत्थे कलश के बारे में सोचा जिसके तल पर घातक शराब अब भी मौजूद थी। मेरे पिता ने इस कलश को सँभाल कर रखा था क्योंकि वे इसमें मौजूद शराब का विश्लेषण करके ज़हर की प्रकृति के बारे में जानना चाहते थे। उनके मुताबिक़ केवल समय बीतने की वजह से यह शराब ज़हरीली हो गई हो, ऐसा नहीं था। सुश्री फ़ोर्ब्स को वह शराब पिला देना बेहद आसान होगा और कोई सोच भी नहीं सकेगा कि वह कोई दुर्घटना या आत्म-हत्या नहीं थी। सुबह पौ फटने के समय

हमने सुश्री फ़ोर्ब्स के थक कर बिस्तर पर लुढ़कने की आवाज़ सुनी। सारी रात जगे रहने के कारण वे थकान से चूर हो चुकी थीं। तब हमने कलश की ज़हरीली शराब को पिता की विशिष्ट शराब की बोतल में भर दिया। जहाँ तक हमने सुना था, उतनी ज़हरीली शराब एक घोड़े को मारने के लिए पर्याप्त थी।

हमने ठीक नौ बजे रसोई में सुबह का नाश्ता किया। सुश्री फ़ोर्ब्स ने स्वयं नाश्ते का वह सामान ला कर हमें खाने के लिए दिया जिसे फ़ुल्विया फ़्लैमिनिया सुबह-सुबह बना कर रसोई में रख गई थी। शराब की बोतल में हमारे द्वारा शराब बदल देने के दो दिन बाद जब हम नाश्ता कर रहे थे, मेरे छोटे भाई ने मायूस दृष्टि से मुझे बताया कि ज़हरीली शराब की उस बोतल को अब तक छुआ भी नहीं गया था। वह शुक्रवार की सुबह थी और वह बोतल अगले दो दिन भी अनछुई पड़ी रही। फिर मंगलवार की रात में सुश्री फ़ोर्ब्स ने उस बोतल की आधी ज़हरीली शराब टेलीविजन पर कामुक फ़िल्में देखते हुए पी डाली।

किंतु बुधवार को वे पहले की तरह ही ठीक समय पर हमारे साथ सुबह का नाश्ता करने के लिए आईं। हमेशा की तरह उनका चेहरा बता रहा था कि उनकी रात अच्छी नहीं कटी थी। मोटे शीशे वाले चश्मे के पीछे मौजूद उनकी आँखें हमेशा की तरह ही आशंकित और बेचैन लग रही थीं। और वे तब और घबराई हुई लगने लगीं जब उन्हें मेज़ पर जर्मनी का डाक-टिकट लगा हुआ एक लिफ़ाफ़ा दिख गया। वे कॉफ़ी पीते हुए वह पत्र पढ़ती रहीं, हालाँकि उन्होंने कई बार हमें बताया था कि खाना खाते समय हमें कोई और काम नहीं करना चाहिए। जब वे वह पत्र पढ़ रही थीं तो हमें ऐसा लगा जैसे हम लिखे हुए शब्दों से निकलने वाली रोशनी की कौंध को उनके चेहरे पर प्रतिबिंबित देख रहे हों। फिर उन्होंने लिफ़ाफ़े पर लगी जर्मन टिकटें उखाड़ लीं और मेज़ पर एक ओर रख दीं ताकि फ़ुल्विया फ़्लैमिनिया वे टिकटें अपने पति के लिए ले जा सके। वह डाक-टिकटें एकत्र करता था। हालाँकि उस दिन उनका शुरूआती अनुभव अच्छा नहीं रहा था, लेकिन इसके बावजूद वे समुद्र की गहराइयों की खोज में हमारे साथ रहीं। उस दिन हम समुद्र में तब तक गोताखोरी करते रहे जब तक हमारे ऑक्सीजन की टंकियों में मौजूद हवा ख़त्म नहीं होने लगी। उस दिन हम अच्छे व्यवहार के बारे में उनसे सीख लिए बिना ही घर चले गए। उस दिन सुश्री फ़ोर्ब्स न केवल सारा दिन रंगीन मनोदशा में रहीं बल्कि रात के भोजन के समय वे और अधिक जोश से भरी हुई लगीं। लेकिन मेरा भाई अपनी हताशा को और अधिक सहन नहीं कर सका। जैसे ही हमें भोजन शुरू करने का आदेश मिला, उसने एक भड़काऊ हरकत के साथ सेवइयों के शोरबे के कटोरे को पीछे धकेल दिया।

"यह कीड़े वाला पानी मेरी तबीयत ख़राब कर देता है, " उसने कहा। यह ऐसा था जैसे उसने मेज़ पर एक हथगोला फेंक दिया हो। सुश्री फ़ोर्ब्स का रंग पीला पड़ गया। उनके होंठ तब तक दबाव में कस गए जब तक उस काल्पनिक धमाके का धुआँ छँट नहीं गया। उनके चश्मे के शीशे आँसुओं से धुँधले हो गए। उन्होंने अपना चश्मा उतारा, अपने रुमाल से चश्मे के शीशे को पोंछा और एक लज्जास्पद हार की कड़वाहट के साथ रुमाल को मेज़ पर रखा। फिर वे खड़ी हो गईं।

"तुम लोगों का जो जी में आए, वह करो। अब यहाँ मेरा कोई अस्तित्व नहीं है।"

सात बजे के बाद से उन्होंने ख़ुद को अपने कमरे में बंद कर लिया। लेकिन अर्द्ध-रात्रि से पहले उन्होंने सोचा कि हम सब सो गए थे। तब हमने उन्हें किसी स्कूली छात्रा की रात्रिकालीन पोशाक जैसे कपड़े पहने, आधा चॉकलेट-केक और बोतल में बची चार अंगुल ज़हरीली शराब को अपने शयन-कक्ष में ले जाते हुए देखा। मुझे उनके प्रति सहानुभूति की थरथराहट महसूस हुई।

"बेचारी सुश्री फ़ोर्ब्स," मेरे मुँह से निकला। लेकिन मेरा छोटा भाई अब भी पहले वाली मनोदशा में ही था। "यदि वे आज रात नहीं मरीं तो बेचारे हम।" उसने कहा।

उस रात वे देर तक ख़ुद से बातें करती रहीं। ज़ोर-ज़ोर से शिलर की कविताओं का पाठ करती रहीं। ऐसा लग रहा था जैसे पागलपन के दौरे की वजह से वे उन्मत्त हो गई हों। उनकी अंतिम चीख़ सारे मकान में गूँज गई। फिर उन्होंने अपनी आत्मा की अतल गहराइयों से निकलनेवाली कई आहें भरीं और परास्त होकर बिस्तर पर गिर गईं, गोया वे इधर-उधर बहता कोई जहाज़ हों जो लगातार एक उदास भोंपू बजा रहा हो।

पिछली रात के तनाव से अब भी ग्रस्त जब हम सुबह उठे तो पर्दों के बीच से छनकर धूप कमरे के भीतर आ रही थी। किंतु ऐसा लग रहा था जैसे पूरा मकान किसी तालाब में डूबा हुआ हो। तब हमने पाया कि लगभग दस बज गए थे, लेकिन हमें सुश्री फ़ोर्ब्स की सुबह की दिनचर्या के मुताबिक़ नहीं जगाया गया था। हमें शौचालय में पानी के बहने की आवाज़ नहीं सुनाई दी। हमें नाली के पास टोंटी के चलने की आवाज़ नहीं सुनाई दी। हमें सुश्री फ़ोर्ब्स के कमरे में से पर्दों के खींचे जाने की कोई आवाज़ नहीं सुनाई दी। उनके चलने पर उनके जूतों की कठोर ठक्-ठक् की भी कोई आवाज़ हमें नहीं आई। हमने अपने दरवाज़े पर उनके हाथों की तीन दस्तक की आवाज़ भी नहीं सुनी। मेरे छोटे भाई ने अपनी साँस रोककर दीवार से अपना कान लगा दिया ताकि बग़ल वाले कमरे से आती जीवन की धीमी-सी आवाज़ को भी वह सुन सके। अंत में उसने आज़ादी की साँस ली।

"हाँ, सही है," उसने कहा। "आप केवल समुद्र की लहरों की आवाज़ सुन सकते हैं।"

ग्यारह बजे से कुछ पहले हमने सुबह का अपना नाश्ता बना लिया। इससे पहले कि फ़ुल्विया फ़्लैमिनिया बिल्लियों की फ़ौज के साथ मकान की सफ़ाई करने के लिए आती, हम ऑक्सीजन की चार टंकियाँ ले कर समुद्र-तट पर पहुँच गए। ओरेस्टे पहले से ही गोदी पर मौजूद था। उसने छह पाउंड की एक मछली पकड़ ली थी जिसकी आँखों के पास सुनहरी धारियाँ थीं। वह उसकी आँतें निकाल रहा था। हमने उसे बताया कि हमने ग्यारह बजे तक सुश्री फ़ोर्ब्स की प्रतीक्षा की थी। चूँकि वे तब भी सो रही थीं, हमने निर्णय लिया कि हम स्वयं ही समुद्र-तट पर चले आएँगे। हमने उसे यह भी बताया कि पिछली रात खाना

खाने के समय उन्हें रोने का दौरा पड़ा था। शायद वे रात में ठीक से सो नहीं पाई थीं, इसलिए वे अब भी बिस्तर पर आराम कर रही थीं।

जैसी कि हमें उम्मीद थी, ओरेस्टे की रुचि यह सब सुनने में नहीं थी। अगले एक घंटे तक समुद्र-तल पर नायाब चीज़ें खोजने के समय वह हमारे साथ रहा। फिर उसने हमें दोपहर के भोजन के लिए वापस मकान पर लौट जाने के लिए कहा। और वह अपनी नाव ले कर सुनहरी धारी वाली मछली को पर्यटकों से भरे होटलों में बेचने के लिए चला गया। पत्थर की सीढ़ियों पर पहुँच कर हम उसकी दिशा में तब तक हाथ हिलाते रहे जब तक कि उसकी नाव खड़ी चट्टान के दूसरी ओर ओझल नहीं हो गई। उसे यह लगा होगा कि अब हम सीढ़ियाँ चढ़ कर मकान में चले जाएँगे। पर हमने अपनी ऑक्सीजन की टंकियाँ लीं और बिना किसी की अनुमति के समुद्र में फिर से गोताखोरी करने लगे।

उस दिन आकाश बादलों से ढँका हुआ था और क्षितिज पर उमड़ते-घुमड़ते काले बादलों के गर्जन की आवाज़ सुनी जा सकती थी। किंतु समुद्र साफ़-सुथरा और सपाट था और उसकी अपनी रोशनी पर्याप्त थी। हम पानी की सतह पर पैंटेलेरिया प्रकाश-स्तम्भ की ओर एक सीधी रेखा में तैरते चले गए। फिर हम वहाँ दाईं ओर मुड़े और हमने सौ मीटर की दूरी और तय की। ठीक इस जगह पर हमने पानी के भीतर गोता लगाया। यह हमारे अंदाज़े से वह जगह थी जहाँ हमने गर्मियों के शुरू में समुद्र-तट पर गोताखोरी करते हुए जहाज़ को नष्ट कर देने वाले गोले पड़े हुए देखे थे। वे टॉरपीडो अब भी वहीं पड़े हुए थे : छह टॉरपीडो। वे पीले रंग में रंगे हुए थे और उन पर लिखी हुई क्रम-संख्या अब भी अक्षुण्ण थी। वे ज्वालामुखी वाले समुद्र-तल पर इतने साबुत थे कि यह आकस्मिक नहीं लगता था। हम प्रकाश-स्तम्भ के इर्द-गिर्द पानी में चक्कर लगाते रहे। दरअसल हम वहाँ वह डूब गया शहर ढूँढ़ रहे थे जिसके बारे में फ़ुल्विया फ़्लैमिनिया हमें अक्सर बताया करती थी। उसकी बातें हमें विस्मित कर देती थीं। लेकिन हमें वह डूबा हुआ शहर वहाँ नहीं मिला। दो घंटे बाद हमें पूरा यक़ीन हो चुका था कि अब यहाँ समुद्र-तल पर ढूँढ़े जाने के लिए कोई रहस्यमयी चीज़ नहीं बची थी। तब बहुत कम ऑक्सीजन बची होने के कारण हम हाँफ़ते हुए ऊपर पानी की सतह पर लौट आए।

जब हम समुद्र में तैर रहे थे, वहाँ गर्मियों में अक्सर आ जाने वाला तूफ़ान आ गया। समुद्र में ऊँची लहरें उठने लगीं। खून की प्यासी चिड़ियों का एक समूह वहाँ आ पहुँचा। ये चिड़ियाँ क्रोधी स्वर में चीख रही थीं और समुद्र-तट पर तड़प रही मरती हुई मछलियों पर झपट्टे मार रही थीं। लेकिन सुश्री फ़ोर्ब्स की अनुपस्थिति में दोपहर की रोशनी हमें बिलकुल नई लग रही थी और जीवन वाक़ई अच्छा लग रहा था। जब हम तेज़ हवा से जूझते हुए बड़ी चट्टान को काट कर बनाई गई सीढ़ियाँ चढ़ कर ऊपर आए, हमें अपने मकान के आगे लोगों की भीड़ दिखी। पुलिस की दो गाड़ियाँ भी मुख्य द्वार के पास ही खड़ी थीं। पहली बार हमें अपने किए का अहसास हुआ। मेरा छोटा भाई डर के मारे काँपने लगा और वह मुड़ कर वहाँ से भाग जाना चाहता था।

"मैं वहाँ भीतर नहीं जा रहा हूँ।" उसने कहा। दूसरी ओर मेरे मन में यह भ्रामक धारणा थी कि यदि हम मृत देह को देखने जाएँगे तो कोई हम पर शक नहीं करेगा।

"आराम से रहो," मैंने उससे कहा। "एक गहरी साँस लो और केवल एक बात सोचो, हमें इसके बारे में कुछ भी नहीं पता है।"

वहाँ किसी ने भी हमारी ओर ध्यान नहीं दिया। हमने गोताखोरी में इस्तेमाल की हुई अपनी टंकियाँ, नक़ाब तथा मीनपक्ष दरवाज़े पर ही छोड़ दिए और हम बग़ल वाले बरामदे में चले गए। वहाँ दो लोग एक तख़्ते के बग़ल में बैठकर सिगरेट पी रहे थे। तब हमने पाया कि पिछले दरवाज़े के बाहर अस्पताल ले जाने वाली एक गाड़ी खड़ी थी और वहाँ कई बंदूक़धारी सैनिक भी मौजूद थे। बैठक में इलाक़े की औरतें दीवार से लगी कुर्सियों पर बैठ कर उपभाषा में प्रार्थना कर रही थीं जबकि उनके पुरुष आँगन में भीड़ की शक्ल में खड़े हो कर मृत्यु को छोड़कर अन्य सभी विषयों पर बातचीत कर रहे थे। मैंने अपने छोटे भाई के ठंडे हाथ और ज़ोर से दबाए और हमने पिछले दरवाज़े से मकान में प्रवेश किया। हमारे शयन-कक्ष का द्वार खुला हुआ था और वह ठीक उसी अवस्था में था जैसा हम उसे सुबह छोड़ कर गए थे।।

हमारे कमरे के बग़ल में स्थित सुश्री फ़ोर्ब्स के कमरे के द्वार पर एक बंदूक़धारी सुरक्षाकर्मी तैनात था, लेकिन उस कमरे का दरवाज़ा खुला हुआ था। हम भारी मन से उस कमरे की ओर बढ़े। इससे पहले कि हमें उस कमरे में ध्यान से झाँकने का अवसर मिलता, फ़ुल्विया फ़्लैमिनिया बिजली की गति से रसोई में से बाहर आई और उसने एक डरावनी चीख के साथ उस कमरे का दरवाज़ा बंद कर दिया।

"ईश्वर के लिए, छोटे बच्चों, उनकी ओर मत देखो!"

पर तब तक देर हो चुकी थी। अपने शेष जीवन में हम वह दृश्य कभी नहीं भूल पाएँगे जो हमने तेज़ी से गुज़रने वाले पल में देखा। साधारण कपड़े पहने दो लोग बिस्तर से दीवार तक की दूरी नाप रहे थे। एक और व्यक्ति श्वेत-श्याम कैमरे से तस्वीरें खींच रहा था। बिस्तर पर सिलवटें पड़ी हुई थीं। किंतु सुश्री फ़ोर्ब्स उस पर नहीं थीं। वह सूखे खून के ताल में फ़र्श पर नग्न पड़ी हुई थीं। पूरे फ़र्श पर खून के निशान थे और उनकी देह पर छुरे के कई घाव थे। उनकी देह पर कटने के सत्ताइस जानलेवा निशान थे। घावों की संख्या और हमले की निर्दयता देख कर यह अंदाज़ा लगाया जा सकता था कि यह उन्मादी हमला किसी अतृप्त प्रेमी द्वारा किया गया होगा। सुश्री फ़ोर्ब्स ने भी बिना चिल्लाए या रोए हुए इस हमले को उसी भावावेश से सहा होगा। संभवत: उस समय वे किसी सैनिक की सुंदर आवाज़ में जर्मन कवि शिलर की कविताओं का पाठ कर रही होंगी। तब उन्हें यह पता चल गया होगा कि अपनी सुखद गर्मियों की क़ीमत उन्हें ऐसे चुकानी पड़ेगी।

000

तस्वीर का तिलिस्म

डॉ. दलजीत कौर

तस्वीरों का चलन इस क़दर बढ़ गया है समाज में कि आदमी से ज़्यादा उसकी तस्वीर चलती है। हर किसी की तस्वीर चले ऐसा भी नहीं है। लोग अपने माँ-बाप या भाई-बहन की तस्वीर छोड़ कर किसी बड़े आदमी की तस्वीर अपने ड्राइंगरूम में लगाते हैं। किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति के साथ अपनी तस्वीर खिंचवाकर वे धन्य हो जाते हैं और ड्राइंगरूम में उसे लगाकर उनके ड्राइंगरूम की शोभा बढ़ जाती है। घर आने -जाने वालों पर इसका प्रभाव पड़ता है। इससे समाज में रोब बनता है।

पिछले दिनों एक मतलबी मित्र ने मुझे अपने घर बुलाया। वे तभी बुलाते हैं जब उन्हें कोई काम हो। कुछ समय पहले ही उन्होंने घर बनाया था तो वे मुझे अपना घर दिखाने लगे। पूरे घर में कोई तस्वीर नहीं थी। हाँ! ड्राइंगरूम में प्रदेश के सी० एम० की तस्वीर लगी थी। जिसमें वे उन्हें हार पहना रहे थे। तस्वीर की ओर देखकर उन्होंने गर्व -दृष्टि से मेरी ओर देखा। मैंने चुटकी ली और भोला-सा मुँह बनाकर पूछा -" यह आपके पिता जी की तस्वीर है ?"

उनके चेहरे के भाव बदले। उसपर क्रोध की लालिमा आने लगी। अपने आप को सँभालते हुए उन्होंने कहा -"अरे ! नहीं ! नहीं !पिता जी क्यों ?उनकी तस्वीर नहीं। ये तो हमारे सी०एम० साहब हैं। हमारे अच्छे संबंध हैं उनसे। कोई भी कार्यक्रम हो। मेरे हाथों ही हार डलवाते हैं।"

वे खी-खी कर देर तक दाँत दिखाते रहे। मुझे लगा जैसे कह रहे हो -"अरे ! पिताजी की तस्वीर क्यों लगाएँगे ? उनकी इतनी औक़ात कहाँ। सी०एम ० को ही हमारे पिता समझो। इनके पिता होने से कुछ लाभ भी होगा।"

मेरी भी किसी सिलसिले में ईनाम लेते हुए गवर्नर के साथ तस्वीर खिंच गई। मैंने मौक़ा जाने नहीं दिया। उस तस्वीर को बाहर मुख्यद्वार पर टाँग दिया। जैसे घोड़े की नाल लगाते हैं लोग। घर आने वाले क्या, गली से गुज़रने वाले भी उस तस्वीर को देखकर मेरा दबदबा मानते हैं। घर के अंदर या बाहर तस्वीर लगाने का फ़ायदा कुछ कम मिल रहा था। इसलिए लोग अब फ़ेसबुक पर ऐसी तस्वीरें लगाने लगे हैं। ताकि ज़्यादा लोग इसे देख सकें और समाज में उनका रुतबा बढ़ जाए। न किसी के घर जाना, न आना। मुफ़्त की पब्लिसिटी।

कुछ दिन हुए एक प्रसिद्ध लेखक महोदय का निधन हो गया। उनसे अपनी निकटता सिद्ध करने के लिए लोग प्रमाण के रूप में उनके साथ अपनी तस्वीर फ़ेसबुक पर डालने लगे। लोगों ने तस्वीरों के साथ उनकी रचनाएँ और संबंधित जानकारियाँ भी ढूँढ़-ढूँढ़ कर फ़ेसबुक पर चिपका दी। बैठे -बैठे मुझे ख़याल आया कि कहीं यमराज ने इनकी फाइल माँग ली तो उसमें इनकी रचनाएँ व तस्वीरें न पाकर इन्हें नरक में न भेज दे। मुझे तो आजकल किसी के साथ तस्वीर खिंचवाते हुए डर लगने लगा है।

एक दिग्गज अभिनेता अल्लाह को प्यारे हो गए। खबर मिलते ही लोगों ने अपने एलबम खंगालने शुरू किए। ढूँढ़-ढूँढ़ कर अभिनेता के साथ अपनी व अपने लोगों की तस्वीरें फ़ेसबुक पर डालने लगे। एक सज्जन को अपनी फ़ोटो नहीं मिली तो अपनी पत्नी की फ़ोटो ही डाल दी। नीचे लिखा -"मेरी पत्नी महान् अभिनेता के साथ।" मैं यह पढ़ कर अपने पति को सुना रही थी कि पास बैठी इनकी बुआजी बोली -"भाग गई?"

लोग कमेंट करने लगे। किसी ने आँख मरता इमोजी भेजा। किसी ने चुम्मी फेंकता। किसी ने

डॉ. दलजीत कौर
2571/ सेक्टर -40 सी, चंडीगढ़
(160036)
मोबाइल- 9463743144
ईमेल- drdaljitkaurthind@icloud.com

मुबारकबाद दी। किसी ने लिखा -"ख़ूबसूरत तस्वीर। " किसी ने लिखा -"वाह ! क्या कहने!" किसी ने लिखा -"गर्व की बात!" किसी ने लिखा -"अदभुत", किसी ने लिखा -"सुपर" किसी ने लिखा -"ज़बरदस्त।"

बेचारे अभिनेता को किसी ने श्रद्धांजलि नहीं दी। मेरा मन हुआ कि नमन लिखूँ। फिर घबरा गई कि सज्जन कहीं बुरा न मान जाएँ। समझ लें कि मैंने उनकी पत्नी को नमन कर दिया।

एक राजनीतिज्ञ की मौत पर भी ऐसा ही हुआ। तरह -तरह के कमेंट। जिसने नेता के साथ अपनी तस्वीर लगाई थी। उसके किसी मित्र ने लिखा -"यार ! पहले बताते। इनके इतने निकट हो। अब क्या फ़ायदा ? ज़िंदा थे तो कुछ काम निकलवा लेते।" मुझे लगा कि कहीं कमेंट पढ़कर मुर्दा उठ न खड़ा हो कि पहले इसका काम निकलवा दूँ मर तो फिर जाऊँगा।

हमारे एक परम मित्र हैं। उन्हें जानी -मानी हस्तियों के साथ तस्वीर खिंचवाने का शौक़ है। हो सकता है बीमारी भी हो। वे तस्वीर खिंचवाने के लिए किसी स्तर पर भी जा सकते हैं। काम मामा के दामाद के भाई के साले का होगा। पर वे साथ चल पड़ेंगे और दाँत निपोरते हुए हर तस्वीर में नज़र आएँगे। सबसे बड़ी बात कि यह तस्वीर वे अपने फ़ेसबुक पर ज़रूर चिपकाएँगे और दुनिया को बताएँगे कि वे कितनी पहुँची हुई चीज़ हैं।

मुझे कई बार ऐसी हस्तियों से मिलने का मौक़ा मिलता है। बात भी होती है। तस्वीरें भी खिंचती हैं। पर मैं उनका आटोग्राफ लेने नहीं जाती। न ही साथ खड़ी हो कर ज़बरदस्ती तस्वीर खिंचवाती हूँ। शायद किसी को लगता हो मुझमें अकड़ है।

एक बार एक पद्मश्री विजेता से मुलाक़ात हुई। बातें होती रहीं। जब चलने लगे तो उनके चमचे ने कहा -"आप इनके साथ फ़ोटो खिंचवा लो।" मैंने इंकार करते हुए कहा -" मुझे इस तस्वीर के तिलिस्म से दूर ही रहने दो। " मेरी बात सुनकर कई लोगों के चेहरे का रंग बदल गया।

000

लघुकथा

तर्क

डॉ.अनामिका अनु

उसने हाथ पकड़ा और समुद्र को आँखों में समेटने लगा। वह तर्क लेकर आया है। सुंदर और अकाट्य तर्क। लड़की उसे काटने का अस्त्र शस्त्र ढूँढ़ने लगी।कुछ अस्त्र दर्शन ने दिया, कुछ मज़बूत शस्त्र विज्ञान ने। मगर लड़की लड़के के तर्कों को अकाट्य ही रहने देती है। चुपचाप देखती है नारियल के पेड़ को, उसके पत्तों के ऊपर कौवे का झुंड मँडरा रहा है। कितना भी भाग लो, ऊँचा उठ जाओ समस्याएँ सिर पर मंडराना नहीं छोड़ती।

मुक्तिबोध ठीक ही कहते हैं भूमि के गर्भ में है प्राचीन सरोवर। मैं कहती हूँ कई सरोवर है पृथ्वी के पेट में। एक इंच कदम बढ़ाओ तो डर लगता है पैर लटक न जाए उसमें। तैरना नहीं आता। डूबने का मन नहीं करता। लड़का नमक की डिबिया खटखटाता है टेबल पर,लड़की ध्यान का पट खोलती है।

लड़का पूछता है-हम दोनों के बीच क्या है?

लड़की कहती है -तर्क

लड़का गर्व और कौतूहल से पूछता है -मेरे अकाट्य तर्क?

लड़की कहती हैं -तुम्हारे अलक्षित तर्क

लड़का चिढ़ कर कहता है -अलक्षित!

लड़की नमक की डिबिया को सही जगह पर रखते हुए कहती है- हाँ अलक्षित। लक्षित किया तो यह निश्चय ही खंडित हो जाएगी।

लड़का पूछता है -कौन करेगा इसे खंडित?

लड़की मुस्करा कर कहती है -मैं निहत्थी नहीं हूँ। मैं इसे ध्वस्त कर सकती हूँ। तुम मुझे निरस्त नहीं कर सकते।

लहरें तट पर से लौट जाती हैं एक नई यात्रा पर।

000

डॉ. अनामिका अनु, अनामिका विल्ला, हाउस नंबर 31,कावुलेन, श्रीनगर, वल्लाकाडावु, त्रिवेंद्रम, केरल, पिन 695008

मोबाइल- 8075845170

टिकट का चुनाव

मूल रचना – इब्ने इंशा
लिप्यंतरण – अखतर अली

चुनाव में टिकट मिलना तो सब ने सुना है लेकिन यह टिकट सब को नहीं मिल पाता है। जिन्हें चुनाव में खड़े होने के लिये किसी पार्टी का टिकट नहीं मिलता वह ख़यालों में अपने टिकट का चुनाव कर लेते है। इन टिकटों पर चुनाव तो नहीं लड़ा जा सकता लेकिन उसकी कल्पना तो की ही जा सकती है।

रेल्वे से रिटायर्ड गार्ड साहब ने ऐलान कर दिया कि वह रेल्वे की टिकट पर चुनाव लड़ेंगे और उन्होंने अपना चुनाव प्रचार आरंभ कर दिया – उनका भाषण इस प्रकार था –

भाइयो और बहनों मैं रेल्वे की टिकट पर चुनाव में हिस्सा ले रहा हूँ। यह मेरी रिटर्न टिकट है, रिटर्न टिकट का यह लाभ है कि आदमी वापस अपने घर आ सकता है। मैंने ऐसे टिकट पर चुनाव लड़ने वाले भी देखे है जो न घर के रहते है न घाट के। मैं चुनाव में हिस्सा क्यों ले रहा हूँ यह सवाल सब के दिमाग़ में आया होगा। भाइयो मैंने रेल्वे की नौकरी में जीवन भर प्लेटफार्म देखा है, अब मैं योग्य लेकिन उपेक्षित लोगों को एक प्लेटफार्म पर एकत्रित करना चाहता हूँ। गार्ड साहब का चुनावी अभियान छुक-छुक करता हुआ छका-छक तेज़ रफ़्तार से आगे बढ़ रहा है। उनका भाषण सुन कर बड़े-बड़े जंक्शन मुँह तकते रह जाते हैं। गार्ड साहब जन समुदाय को संबोधित करते हुए कहते हैं – यह दुनिया एक यात्री प्रतीक्षालय है और हम सब यात्री हैं। जब तक जीवन की गाड़ी चल रही है प्रेम और सौहाद्र का सिग्नल डाउन रखिये तथा नफ़रत और हिंसा को लाल झंडी दिखाते रहें। अमीरी और गरीबी पर बात करते हुए गार्ड साहब कहते अमीरी प्रथम श्रेणी के वातानुकूलित बोगी में सीटी बजाते हुए ज़िंदगी का सफ़र तय कर रही है और गरीबी रेल्वे के अनारक्षित डब्बे में यात्रा करने के लिये अभिशप्त है। सभा के बीच में किसी ने आवाज़ लगाई – इस्लाम ख़तरे में है। गार्ड साहब ने उसे बीच सभा में डाँटते हुए कहा – इस्लाम सुपर फ़ास्ट ट्रेन की तरह तेज़ी से अपनी मंज़िल की तरफ़ बढ़ रहा है अपने फ़ायदे के लिये उसे पटरी पर से मत उतारो और न ही अपने नापाक इरादों की ख़ातिर चेन पोलिंग कर उसे आउटर पर रोकने की कोशिश करो।

रेल्वे टिकट पर चुनाव लड़ने की ख़बर सुनी तो एक साहब ने एयर लाइंस की टिकट पर चुनाव लड़ने का ऐलान कर दिया। उन्होंने अपने घोषणा पत्र में लिखा – प्यारे मतदाताओं, इस चुनावी उड़ान पर आपका स्वागत है, आप अपने-अपने सुरक्षा बेल्ट बाँध लीजिये क्योंकि मैं आप को प्रगति की पैतीस हज़ार फुट ऊँचाई पर लेके जाऊँगा, जहाँ से आपको पहाड़ जैसी

अखतर अली
निकट मेडी हेल्थ हास्पिटल, आमानाका,
रायपुर (छत्तीसगढ़)
मोबाइल- 9826126781
ईमेल-akhterspritwala@gmail.com

दिखने वाली समस्या भी चींटी जैसी नज़र आएगी। बुलंदी पर उड़ान भरते हुए और ख़याली पुलाव खाते-खाते अपना चुनावी प्लेन सीधा विधान सभा के मुख्य कक्ष में लैंड करेगा।

रेल्वे और एयर लाइंस की टिकट पर चुनाव लड़ते देख हफ़ीज़ ड्राइवर ने बस की टिकट पर चुनाव लड़ने का ऐलान कर दिया। उन्होंने अपने अन्य उम्मीदवारों को स्पष्ट कह दिया था कि – जगह मिलने पर साइड दी जाएगी। उन्होंने अपनी पीठ पर पोस्टर चस्पा कर दिया था जिस पर लिखा था – बुरी नज़र वाले तेरा मुँह काला, जलो मत बराबरी करो। ड्राइवर साहब ने अपने चुनाव अभियान का आगाज़ करते हुए धाँसू भाषण दिया – भाइयो और बहनों मैं ड्राइवर हूँ और कार चला सकता हूँ। याद रखना जो कार चला सकता है वही सरकार चला सकता है। मेरे को चैन और सुकून के सभी रास्ते मालूम है, मेरे को अपने हर मुसाफ़िर की मंज़िल का पता ज्ञात है। मेरे देशवासियों मेरी ड्राइविंग पर भरोसा रखिये जो रास्ता भूल जाए मै वो चालक नहीं हूँ। मेरे को वोट दीजिये मैं वादा करता हूँ कि आपको पायदान पर लटकने नहीं दूगा सब को सीट मिलेगी। दूसरी पार्टी की आलोचना करते हुए हफ़ीज़ ड्राइवर भड़क जाते और कहते – ये सब धुआँ उगलने वाली बसें है, इनकी बॉडी कंडम हो गई है; जिसका ब्रेक लगता नहीं हार्न बजता नहीं। सवारी वोट कतरों से सावधान रहे और अपने वोट की देखभाल स्वयं करे।

डाक घर के रिटायर्ड पोस्ट मास्टर भी जोश में आ गए उन्होंने कहा वह डाक टिकट पर चुनाव लड़ेंगे। उन्होंने सभी डाकियों को कहा कि उन्हें एक-एक घर तक संदेश पहूँचाना है कि हमारे थैले में सब के लिये शुभ संदेश है। पोस्ट मास्टर जी ने लोगों से अपील की कि दूसरे उम्मीदवारों पर ज़रा भी भरोसा न करे ये सब बिन पते के लिफ़ाफ़े है, ये सब बैरंग पोस्ट है और मैं हूँ जवाबी पोस्टकार्ड। मेरे निवेदन को ख़त नहीं तार समझे और पोलिंग के दिन अपने नज़दीकी लैटर बाक्स में अपना कीमती वोट डाल कर मेरे को प्रचंड मतों से विजयी बनाएँ।

एक मोहन कुमार थे। यह साहब एक टॉकीज़ में मैनेजर थे। यह सिनेमा की टिकट पर चुनाव में खड़े हो गए। सूट, बूट, हैट, चश्मा, टाई पहन कर जब यह नुक्कड़ सभा में भाषण देते तो फ़िल्म का दृश्य निर्मित कर देते। माईक हाथ में लेकर झूम-झूम कर कहते – आज कहेंगे दिल का फ़साना जान भी ले ले चाहे ज़माना। रूलिंग पार्टी से कहते – ये पब्लिक है ये सब जानती है। अपने संबोधन में जनता को समझाते कि अभी आप के पास एक से बढ़ एक एक्टर आएँगे और डायलाग झाड़ेंगे, इनकी ओवर एक्टिंग को खारिज कर देना। उनके दर्द भरे गीतों पर ध्यान नहीं देना ये सब पटकथा है सच्चाई नहीं। मेरे को वोट दीजिए मैंने पर्दे के पीछे बहुत काम कर लिया अब मैं भी मुख्य भूमिका में आना चाहता हूँ। मेरे को आप लोग इतनी बड़ी तादात में वोट देने आना कि पोलिंग बूथ वह टाकीज़ लगे, जहाँ सुपर स्टार की नई फ़िल्म लगी हो जिसका आज पहले दिन का पहला शो है।

चुनाव का जो टिकट प्यारेलाल ने लिया था सब ने उसकी प्रशंसा की और कहा यही सब से उपयुक्त पार्टी का टिकट है। प्यारे लाल चिड़िया घर की टिकट पर चुनाव लड़ रहे थे। उन्होंने चुनावी सभा में कहा – यहाँ सब अपनी-अपनी बोली बोल रहे है। कोई दहाड़ रहा है कोई चिंघाड़ रहा है। याद रखिये हाथी के दाँत की तरह इनके खाने के दाँत और हैं दिखाने के और हैं। कौम के लिए कुर्बानी देने का वक्त आएगा तो सब को साँप सूँघ जाएगा। तोते की तरह आँख फेर लेंगे। दुम दबा कर भागेगे। याद रखियेगा इनका आगा शेर जैसा और पीछा भेड़ जैसा है।

टिकट और उम्मीदवारों की भीड़ में एक प्रत्याशी अलग ही अंदाज़ बिखेर रहे हैं। यह जनाब कहते हैं मैं न अपने को अच्छा कहता हूँ न दूसरे को बुरा। मैं किसी से वोट देने की अपील भी नहीं करता हूँ। आप को वोट देने का मन नहीं है तो मत दो। मैं भी चुनाव में खड़ा होकर किस्मत आज़मा रहा हूँ। जीत गए तो सौभाग्य, हार गए तो हार गए। यह श्रीमान लाटरी की टिकट पर चुनाव लड़ रहे हैं।

000

फार्म IV

समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा 19-डी के अंतर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण (देखें नियम 8)।

पत्रिका का नाम : विभोम स्वर

1. प्रकाशन का स्थान : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

2. प्रकाशन की अवधि : त्रैमासिक

3. मुद्रक का नाम : ज़ुबैर शेख़।
पता : शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एमपी नगर, भोपाल, मप्र 462011
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. प्रकाशक का नाम : पंकज कुमार पुरोहित।
पता : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

5. संपादक का नाम : पंकज सुबीर।
पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. उन व्यक्तियों के नाम / पते जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं। स्वामी का नाम : पंकज कुमार पुरोहित। पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

मैं, पंकज कुमार पुरोहित, घोषणा करता हूँ कि यहाँ दिए गए तथ्य मेरी संपूर्ण जानकारी और विश्वास के मुताबिक सत्य हैं।

दिनांक 20 मार्च 2021

हस्ताक्षर पंकज कुमार पुरोहित

(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

कविताएँ

महेश कुमार केशरी की कविताएँ

भीतर बैठा आदमी..

बचपन में हमें ज़ोर देकर
बोलने के लिए प्रेरित किया
जाता है

और हम पहचानने लगते हैं
बोलकर वर्णों, को, क से
कलम ख, से खरगोश..

वर्ण के बाद अक्षर से
साबका होता है, नदी,
पेंड़, पहाड़, झील, दरिया,
धीरे- धीरे हम सब समझने
और, बोलने
लगते हैं...

एक ख़ास उम्र तक हमें यह
सिखाया जाता है, कि जो,
कुछ बोलना है उससे पहले
सौ बार सोचो क्योंकि तीर -
कमान से और बात ज़ुबान
से निकलने के बाद
कभी वापस नहीं होते.. !

अफसोस इस बात का रहता है
कि उस वक्त जब हमें यह समझाया
जाता है कि क्या बोलना है..?
और कितना बोलना है उस वक्त
हमें यह बात समझ नहीं आती
और, इसे हम मज़ाक में
उड़ा देते हैं

लेकिन, एक खास उम्र में
पहुँच कर
धीरे-धीरे कम बोलने की
पड़ने लगती है..आदत

ऐसा नहीं है कि आदमी के अंदर
बोलने की चाह नहीं उठती
या वह बोला नहीं सकता

लेकिन, वह बोलने की सोचता
है, तभी उसका हाथ पकड़ लेता
है, उसके ही अंदर बैठा
कोई एक आदमी ..!

और, वह चाहकर भी नज़रअंदाज़
करता जाता है सामने वाली की बात..

000

श्रम का शोर

निकल पड़ा है मज़दूरों
का झुँड मिल से छुट्टी के
बाद और टुनटुनाती
हुई साइकिलों की घंटियाँ
का शोर एक संगीत पैदा कर
रहा है, जैसे किसी झरने का
मद्धिम शोर..

धान रोपती स्त्रियाँ
बातें करते -करते
आपस में हँसती हैं
खिलखिलाकर तो
बजने लगता है
एक संगीत
चहुँ दिशाओं में..

हल - गैंता- कुदाल चलाता
किसान करता है जब
ठक-ठक की आवाज़
तो, बजने लगता है,
धरती के भीतर कोई संगीत
और, धरती बिखेरती है,
अपनी मुस्कुराहट में अन्न
के दाने..

पत्थर तोड़ता मज़दूर
जब हथौड़े से ठाँय-ठाँय
करता है, तब उसके
भीतर बजता है कोई संगीत
और आकार लेने लगता है
उसका श्रम पसीना
बनकर

और, जब कोई शिल्पकार
पत्थर को तराश रहा होता
है, अपनी छैनी- हथौड़ी से
तब भी होती है मद्धिम - मद्धिम आवाज़
और, आकर लेने
लगती है कोई आकृति
और उसके मन में
बजने लगता है एक संगीत
कुछ नया गढ़ने का

कल - कारखानों से निकलने
वाली मशीनों का शोर
भी एक लयबद्ध संगीत की तरह
बजता है कहीं मज़दूरों
के भीतर..
क्योंकि,
यही श्रम देता है
मुँह को निवाला, रहने को
छत..
और, एक बेहतर कल

श्रम का शोर
एक संगीत की तरह
बजता है, हमारे भीतर
और, दुनिया को बनाता है
सुंदर.. अतीव सुंदर...

000

श्री बालाजी स्पोर्ट्स सेंटर, मेघदूत मार्केट
फुसरो, बोकारो झारखंड -829144
मोबाइल- 9031991875
ईमेल- keshrimahesh322@gmail.com

नमिता गुप्ता "मनसी"की कविताएँ

जबकि तुमने बचाए रखा मनुष्यता को !

सुनो कविताओं..
जबकि
हिम्मत बँधाने की बजाय
दहशतों के कारनामे
गिना रहे थे लोग,
तुमने प्रेम से सहलाये कंधे
मनुष्यता के,
तुमने
उखड़ती साँसों को बचाया
सांत्वनाओं के ऑक्सीजन से !!

जबकि
हम बंद रहे
अपने ही घर में,
तुमने खुलेआम
जारी रखी
सभी से वार्तालापें मन की
और नहीं डगमगाने दिया
भीतर का सकारात्मक रुझान
किसी भी कीमत पर !!

सुनो कविताओं..
जबकि
हर कहीं गिनी जा रही हैं
सिर्फ संख्याएँ ही,
तुमने
कहीं-न-कहीं बचाए रखा
मनुष्यता को
सही से !!
000

अब ज़रूरत नहीं है मुझे "ट्वीटर" की....

प्रतिदिन..
नन्हीं-नन्हीं कुछ चिड़ियाएँ
चुपके से प्रवेश कर जाती हैं
मेरी कविताओं में !!

शुरूआत में कुछ सहमी सी थी
कुछ डर भी था,
पर अब इतनी चहकती हैं कि
कविताएँ भी हँसती-खेलती रहती हैं
सारा दिन !!

वे आसमान नापती उड़ती हैं..
बतियाती हैं पेड़ों से,
दिन-भर के सारे किस्से-कहानियाँ
सब सुना देती हैं,
और..ले आती हैं तिनके घोंसले के लिए !!

मैं चाहती हूँ
वे आती रहें रोज़ इसी तरह
मेरी कविताओं में,
ताकि, आसमान भी भरा रहे
चहचहाहट से उनकी !!
सुनो, अब "ट्वीटर" की ज़रूरत नहीं है
मुझे !!
000

तब तुम एक कविता लिख लेना !!

जब सालने लगें तुम्हें
तुम्हारी ही अबोली पीड़ाएँ,
तब तुम एक कविता लिख लेना !!

जब छले जाओ तुम
अपनों ही से
शब्दों से जी भर कह देना,
तब तुम एक कविता लिख लेना !!

जब टूटे-बिखरे हों सब पल
आँसू साथ न दे पाएँ
और रिक्त हृदय रोना चाहे,
तब तुम एक कविता लिख लेना !!

जब न कुछ "कहना-सुनना" हो
अनबन हो चाहे कितनी भी,
रूठों को समझा देना
तब तुम एक कविता लिख लेना !!
000

अपनी-अपनी जगह....

क्या फ़र्क पड़ता है
इस त्रासदी का शिकार
आज मैं हूँ या कल.. तुम,

हनन तो मनुष्यता का ही हुआ न,
कैसे हुआ..
क्यों.. किसके लिए..
यह किसकी ज़िम्मेदारी..
सवाल सारे ही बेमानी हैं अब,

भले ही यह दौर संक्रमण का है
इलाज जारी है,
संक्रमित शरीर है या आत्मा
फिलहाल असमंजस में हैं
सारी मशीनें,

नहीं पता कि
प्रार्थनाएँ अधिक स्वार्थी हो गई हैं
या ईश्वर,

पर हाँ..
कोई और रास्ता ही नहीं रहा अब
सिवाय एक दूसरे को ताकने के,

ईश्वर और मनुष्य
दोनों ही अवाक् से खड़े हैं
अपनी-अपनी जगह
आरोपों-प्रत्यारोपों के साथ !!
000

नमिता गुप्ता, द्वारा अरविन्द कुमार गुप्ता,
H/No 161, आर्य नगर, सूरज कुंड रोड,
मेरठ, यू पी -250002
मोबाइल- 8077531992
ईमेल- namitagupta2873@gmail.com

ममता त्यागी की कविताएँ

मौन

मौन !
कितना आसान सा लगता है
सुनने में
कितना शांत सा लगता है कहने में
शोर शराबे से दूर रहना
कुछ भी न बोलना
भीड़ में रहकर भी अकेले हो जाना
क्या आसान है
मौन रह जाना ?
नहीं !
मौन रह जाना
इतना भी सरल नहीं होता
न जाने कितना
हलाहल पीकर
न जाने कितना कुछ अनदेखा कर
मन के भीतर उठते
झंझावात को
कुचलकर
भीतर ही भीतर दहकते
ज्वालामुखी को
दबाकर
उसकी तपिश को सहकर
और फिर भी
मुस्कराकर
कभी-कभी
मौन होना पड़ता है
कभी समय मौन रहने को कहता है
तो कभी परिस्थितियाँ
मौन कर देती हैं
इस तरह
मन में उठते गिरते ज्वार को दबाकर
कुछ कहने को बेचैन मन पर
अंकुश लगाकर
जीवन जीना पड़ता है
पर मौन सदैव मौन नहीं रह पाता
शायद समय आने पर
या फिर
ज़िंदगी की ठोकर खाकर
मौन मुखर हो ही जाता है
और फिर शब्दों का झरना
आवेग से बह निकलता है
हर बाँध को तोड़कर
हर बंधन को त्याग कर
किनारे पीछे छोड़कर
आगे बढ़ जाता है
और तब
मौन-मौन नहीं रहता
मुखर हो ही जाता है !
000

बिखराव

रोज़ बिखर जाती हूँ
टूट जाती हूँ
फिर तिनका-तिनका बटोर कर
सहेजती हूँ
अपने ही वजूद को
तैयार करती हूँ
ख़ुद को
टूट कर बिखरने
और फिर से
जुड़ने के क्रम के लिए
एक समय था
जब
दूर से आते हुए
मेरे सामने से
गुज़रते हुए
दृष्टि नीचे किए
तुम गुज़र जाते थे
और मेरी चाहत
दम तोड़ती
आह भरती
एक नज़र को तरसती
खड़ी निहारती रह जाती थी
काश एक बार
नज़र उठा कर
देख ही लिया होता
कुछ कह दिया होता
तो आज
ज़िंदगी का
नज़ारा ही
कुछ और होता !!
000

तेरा मेरा रिश्ता

मैं लहर तेरी
तू साहिल मेरा
बस इतना सा
हम दोनों का रिश्ता है
तुझे छूकर आने की तमन्ना
आरज़ू है मेरी
मुझे बाँहों में भरना
सपना है तेरा
पल भर को मिलते हैं
मिलते ही बिछड़ जाते हैं
बस यही प्रारब्ध है हमारा
फिर मिलने की
आरज़ू जगाते हैं
कोशिश करते हैं
इंतज़ार करते हैं
उम्र
बस यूँ ही गुज़ार देते हैं
मैं कुछ भी नहीं तेरी
तू सब कुछ है मेरा
मैं लहर हूँ तेरी
और तू साहिल है मेरा
बस
इतना सा ही तो रिश्ता है !!
000

ममता त्यागी
411 बारयर्ली ड्राइव, एपैक्स-27523, नॉर्थ कैरोलाइना
मोबाइल- 984-218-6178
ईमेल- mamta.t80@gmail.com

अनिल प्रभा कुमार की कविताएँ

रिश्ते

रिश्ते
सिर्फ़ कोर्ट–कचहरी में ही
नहीं ख़त्म होते
बहुत पहले ही
वे मर चुके होते हैं
सजे हुए घरों
खिंची हुई मुस्कानों
ख़त्म हो चुकी बातों
और औपचारिकता की
बर्फ़ीली सिल्ली के नीचे
साँसों को रुक-रुक कर खींचते
कोशिश करते
ताकि थोड़ी और खिंच जाए ज़िंदगी।
आदत हो जाती है
इन रिश्तों की।
पता ही नहीं चलता
कब सब बातों के बावजूद
उनकी देह पड़ जाती है नीली
फिर भी छोड़ नहीं पाते
बन्दरिया के मरे बच्चे की तरह।
कोर्ट–कचहरी में रिश्ते
ख़त्म नहीं होते
वहाँ तो सिर्फ़
उनके अन्तिम संस्कार होते हैं।
000

प्रवासी

वह बहाना ढूँढ़ता है
घर आने का
बहाने तो बहुत मिले
फिर ठिकाना ढूँढ़ता है
आकर रहने का
ठिकाने भी पैसे देकर
मिल जाते
पर वह घर ढूँढ़ता है
जहाँ अपने हों।
ख़ून के रिश्ते हैं भी
कहने को।
उन अपनों की नज़रें
बदल चुकी हैं
उसी के घर में रहते हुए
जिसकी क़ीमत
करोड़ों में पहुँच चुकी है।
भौतिकतावादी देश से
आने वाले को
क्या मतलब यहाँ से
वहीं रहे तड़ी पार
डर है कहीं आकर
कोर्ट- कचहरी न करे
हक़ न माँगे
हक़ तो वह माँगता है
ज़मीन और दौलत का नहीं
प्यार का, विश्वास का
वह भी नहीं
तो ठगा खड़ा है
अब वह बहाना ढूँढ़ता है
अपने को बहलाने का।
000

प्रेम कविता

सोचा था
आज प्यार की कविता लिखूँगी
जिसमें एक ख़ास गंध होगी
उस फूल की
जो कोई लड़का
पहली बार
पसीने से भीगी हथेलियों से
उस लड़की को देता है
जिसने उसे सपनों के
इन्द्रधनुष पकड़ाए थे।
कविता की रंगत में
उस प्रेमी की आँखों की नमी होगी
जो पहली बार प्यार करता है
फिर उस लड़की की आँखों में तैरते
अनगिनत रंग भरूँगी
जो प्यार ही में
डूबने- मरने के सपने देखती
ख़ुद ब ख़ुद प्यार बन जाती है।
सोचा था आज
उसी प्यार की कविता लिखूँगी।

प्यार की कविता
कागज़ पर उतरते –उतरते
रंग बदलने लगती है
स्याही से खून छलछला आता है
धुएँ से काली
होती जाती है लिखाई
शब्द सिसकने लगते हैं
धूँ धूँ घर-बाहर जल रहा है
नफ़रत की आग से
मैं सब अनदेखा, अनसुना कर
आगे बढ़ना चाहती हूँ

मुझे प्रेम कविता लिखने दो
गिड़गिड़ाती हूँ
न कागज़ न क़लम
न हवा न रोशनी
कोई साथ नहीं देता
सब नाराज़ हैं
यहाँ तक कि
मेरी रूह भी
इजाज़त नहीं देती
मैं देखती रहती हूँ बस
उस स्याह,
ख़ून से लथपथ
वक्त के काले सफ़े को।
और मैने सोचा था
आज एक प्रेम कविता लिखूँगी।
000

अनिल प्रभा कुमार
119 ऑसेज रोड, वेन, न्यू जर्सी 07470.
यू एस ए
मोबाइल- 973-628-1324
ईमेल- Aksk414@hotmail.com

मलिक राजकुमार की कविताएँ

वेंटीलेटर

उम्र दराज़ होना प्राकृतिक है
शरीर देने लगा जवाब
आँख दाँत कान हृदय अंग
माँगने लगे हिसाब

घर परिवार बच्चों के लिए
धीरे-धीरे होने लगा बेकार
अपने में सिमटते जाना
बन गया अब कारोबार

सूखने लगी जब ज़िंदगी
फ़िक्र सताने लगी अपनी
दुनिया जहान में हर कोई
फ़िक्र करता अपनी-अपनी

अँधेरे समय में रौशनी का
लैंप जला गया एक बच्चा
छह साल का मेरा नवासा
मेरा दोस्त बन गया अच्छा

हमारे पास ढेरों बातें हैं
एक दूसरे के लिए नई- पुरानी
बता डालते हैं खुल कर
अपनी-अपनी ज़ुबानी

बचपन की लहर में तैरता
कभी पापा कभी नाना बुलाता
अपनी ज़रूरतों की पूरी
लम्बी चौड़ी फेहरिस्त सुनाता

स्वादिष्ट हैं उसकी शरारतें
ख़ुद अपने मुँह से सुनाता
कहाँ-कहाँ की ग़लती
ख़ुद अपने मुँह से बताता

फायर मैन कभी इंजीनियर
रोबोट कभी रॉकेट बनाएगा
स्पेस की सैर पर जाएगा
तो मुझे साथ ले जाएगा

आप बूढ़े हड्डियाँ कमज़ोर
कुछ नहीं होने दूँगा
आपका ध्यान रखूँगा
चोट नहीं लगने दूँगा

उसकी टटकी बातें सुन
खुश हो जाता हूँ मैं
मृत्यु के सपने से जाग
होश में आ जाता हूँ मैं
व्यस्तताओं से पाते ही समय
आ जाता है पास सिमट कर
मैं जीने लगता हूँ ऐसे, जैसे
मिल गया हो वेंटीलेटर

000

वह लड़की

सूरज की किरण के साथ
सामने आ जाती है
सुनहरे रंगत वाली लड़की
जो कल्पना में रहती है
मेरे माथे को चूम
कपोलों को सहला कर
अपलक चेहरा निहार
हँसती है खिलखिला कर

जब बर्फ की सफ़ेद चादर
दूर पहाड़ों पर बिछती है
बर्फ के गोले बना कर
मुझ पर तब फेंकती है
निशाना लगने पर वो
ज़ोर से खिलखिलाती है
निशाना चूकने पर वो
एकदम उदास हो जाती है

समंदर के किनारे देखा
उसे लहर के साथ तैरते
मेरे पैरों के नीचे की रेत
अपने हाथों से समेटते

बहुत भाता है उसे तब
मेरा असंतुलित हो जाना
उसकी बाँहों में लिपटे
समंदर में खिंचा चला जाना

निस्तब्ध ज्योत्सना में
सोता हूँ जब नदी किनारे
पसर जाती मेरे शरीर पर
ले जाती नींद के द्वारे

नहीं देखा उसे रू-ब-रू
कभी भी अपने आसपास
बस बना ही रहे यह भ्रम
नहीं पाली मिलने की आस

000

मलिक राजकुमार, A 1 /28 मिआँवली नगर, दिल्ली- 110087
मोबाइल- 9810116001
ईमेल-malikrajkumar55@gmail.com

लेखकों से अनुरोध

सभी सम्माननीय लेखकों से संपादक मंडल का विनम्र अनुरोध है कि पत्रिका में प्रकाशन हेतु केवल अपनी मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। वह रचनाएँ जो सोशल मीडिया के किसी मंच जैसे फ़ेसबुक, व्हाट्सएप आदि पर प्रकाशित हो चुकी हैं, उन्हें पत्रिका में प्रकाशन हेतु नहीं भेजें। इस प्रकार की रचनाओं को हम प्रकाशित नहीं करेंगे। साथ ही यह भी देखा गया है कि कुछ रचनाकार अपनी पूर्व में अन्य किसी पत्रिका में प्रकाशित रचनाएँ भी विभोम-स्वर में प्रकाशन के लिए भेज रहे हैं, इस प्रकार की रचनाएँ न भेजें। अपनी मौलिक तथा अप्रकाशित रचनाएँ ही पत्रिका में प्रकाशन के लिए भेजें। आपका सहयोग हमें पत्रिका को और बेहतर बनाने में मदद करेगा, धन्यवाद।

-सादर संपादक मंडल

भाषांतर

अनुवाद- भूपेंद्र त्यागी

ग्रेस नोल क्रोवैल
(1877-1969)
एंजेला मॉर्गन
(1875-1957)
माया एंजेलो
(1928-2014)
मैक्स एरमन
(1872-1945)

भूपेंद्र त्यागी
202, एच-15, प्रेस एन्क्लेव, प्रतीक्षा नगर,
सायन (पूर्व), मुंबई- 400022
मोबाइल- 9869176433/9225119138
ईमेल- bhuvtyagi@gmail.com

गुज़र जाएगा यह अँधियारा भी
ग्रेस नोल क्रोवैल

ओ मन मेरे, कह बार-बार
गुज़र जाएगा यह अँधियारा भी
गहरे दुख भी, सघन शोक भी
रह नहीं सकते कयामत तक
आशा किरण दिखे शायद कल।

गुज़र जाएगा यह अँधियारा भी
हवा हो जाएगा इसका दुस्साहस
थम जाएगा, डूबते सूरज संग थमी हवा सा
आश्वस्त और शांत होकर पाओगे चैन
भुलाकर इस बुरे सपन को।

बारंबार दोहराओ इसको
ओ मेरे मन, हो जाओ निर्भय
गुज़र जाएगा यह अँधियारा भी
जैसे गुज़रे तमाम दु:स्वप्न अतीत में
जैसे फना हुए तमाम दर्द-ओ-दुख सबके।

रात के तारों और भोर के सूरज सा लाजिम
झूमती घास के संगीत सा सच्चा
तमाम निराशाओं को धता बता
गुज़र ही जाएगा यह अँधियारा भी।

000

युद्ध के बावजूद
एंजेला मॉर्गन

युद्ध के बावजूद, मृत्यु के बावजूद,
मनुष्य के तमाम कष्टों के बावजूद,
मेरे भीतर कुछ हँसता और गाता है
और मेरा मन इसे ख़ूब सराहता है।
युद्ध के बावजूद, नफरत के बावजूद
बकाइन खिल रहे हैं मेरे द्वार पर,
ट्यूलिप झर रहे हैं आगे राह पर
युद्ध के बावजूद, रोष के बावजूद।
'साहस!' का सुबह को महिमामंडन,
'आनंद' के व्याख्यान का आलंबन,
और जब मुझे देख मुस्कराते फूल

खिल-खिल जाता मन सब कुछ भूल।
समंदर पर लगता झूमते बादलों का मेला,
चमकती लहरें मुझे बुलाने का करतीं खेला
भले हो मरीचिका, पर कोई बात नहीं,
जगह-जगह पर, हर एक जगह पर
निराशा को पीछे छोड़ ही देती आशा।
चाहे गरजें बंदूकें या फिर दहाड़ें तोपें,
खिलते हैं बगीचे, जिनमें गुलाब हों रोपे,
दमकेगी ज़रूर मेरी आत्मा हर हाल में
उसी मशाल पर जहाँ से आए खसखस।
जहाँ सुबह की वेदी हो जाती शफ्फाक
चाँदी के कलश उठाएँ लिली अपने माथ
युद्ध के बावजूद, शर्मो-हया के बावजूद।
और मेरे कान में आती है फुसफुसाहट,
'दु:स्वप्न से जागो! देखो और विचारो
कि नश्वर है जीवन, लेकिन परमानंद है
युद्ध के बावजूद, मृत्यु के बावजूद!'

000

फिर भी उठूँगी मैं
माया एंजेलो

आप मुझे खारिज कर सकते हो इतिहास से
अपने कड़वे और विकृत झूठों से,

आप उछाल सकते हो कीचड़ मुझ पर
लेकिन फिर भी, उठूंगी मैं धूल की तरह।
क्या मेरी ज़िंदादिली परेशान करती है
आपको?
आख़िर क्यों डूबे हो आप उदासी में?
क्योंकि मेरी चाल है अलमस्त मानों मेरे
पास हो खजाना कुबेर का
मेरे घर पर लगे हों दौलत के अंबार।
चाँद की तरह और सूरज की तरह,
ज्वार की निश्चितता के साथ,
उमड़ती-घुमड़ती उम्मीदों पर सवार हो,
फिर भी उठूँगी मैं।
क्या आप चाहते थे निराश देखना मुझको?
झुका हो जिसका सिर और नीची हों नज़रें?
आँसुओं की तरह नीचे गिर रहे हों कंधे
जिसके।
आर्तनाद से हो चुकी हो ज़ार-ज़ार जो।

क्या मेरे अभिमान से ठेस पहुँचती है
आपको?
आप अपने दिल पर तो नहीं लेते इसको
क्योंकि मैं लगाती हूँ ठहाके मानों मेरे पास
हों सोने की खानें
मानों मेरे घर के पिछवाड़े उनसे निकलता
हो सोना।
अपने शब्दों से आप भेद सकते हो मुझको,
अपनी आँखों से आप काट सकते हो
मुझको,
अपनी नफरत से कर सकते हो कत्ल मेरा,
लेकिन फिर भी उठूँगी मैं हवा की तरह।
क्या मेरी कमनीयता करती है परेशान
आपको?
क्या आपको अचरज होता है इस पर
कि मैं करती हूँ नृत्य मानों जड़ें हों हीरे
मेरी जंघाओं के संधिस्थल पर?
शर्मसार इतिहास की झोंपड़ियों से
उठूंगी मैं
दर्द से जन्में अतीत के गर्भ से
उठूंगी मैं
काला सागर हूँ मैं उछलती लहरों वाला
असीम,
हर ज्वार से हूँ जूझती, मुश्किलों को बूझती।
आतंक और भय की रातों को पीछे छोड़कर
उठूँगी मैं
स्फटिक से खिले एक भोर में विभोर
उठूँगी मैं

पूर्वजों की दी हुई नियामतों पर सवार हो,
हर गुलाम का मैं सपना हूँ, आशा हर
गुलाम की।
उठूँगी मैं
उठूँगी मैं
उठूँगी मैं।

000

मनोकामनाएँ
(डेसिडराटा)
मैक्स एरमन

शोर और जल्दबाजी में चलो शांत भाव से,
रखो याद कि मौन में संभव है बेपनाह शांति।
जितना संभव हो बिना कभी झुके हुए
सभी से रखो रिश्ते जो खुशगवार हों।
आराम से और साफ-साफ सच अपना बयान
करो;
दूसरे क्या कहते हैं उनको भी सुनो सदा,
मूर्ख और अज्ञानी की भी;
होती अपनी कहानी है।

चीखते और आक्रामक लोगों से कन्नी काट
लो,
वे तो देते हैं आत्मा को ही कष्ट सदा।
अगर दूसरों से अपनी तुलना करो,
तो आ सकती है बेचारगी और कटुता;
क्योंकि दूसरे लोग
आपसे कभी छोटे होंगे और कभी होंगे बड़े
भी।
लुत्फ लो अपनी उपलब्धियों और योजनाओं
का भी।
अपने करियर में रखो रुचि, विनम्रता को छोड़ो
मत;
वक्त के साथ नसीब बदला, तो पूँजी होगी यही
बस।
कारोबार करो, तो रखो सावधानी भी;
छल-कपट से आख़िर भरी है दुनिया यह।
गुणों को अनदेखा कभी न करना;
बहुत से लोग ऊँचे आदर्शों पर मरते हैं;
और जीवन में हर कहीं साहस रहे भरा।
असल में जो हो, वही रहो, वही रहो।
ख़ासकर दिखावटी स्नेह कभी करना मत।
कोई प्रेम करे, तो रूखे कभी बनना मत;
सभी तमाम रूखेपन और मोहभंग
होते हैं घास की मानिंद बारहमासी।
वक्त से सदा ही लेते रहो सीख,
जवानी के जोश को रखना सहेजकर।
आत्मा की शक्ति को पोसो, जो बचा ले
दुर्भाग्य से।
भयावह कल्पनाओं से कष्ट मत पालो कोई।

थकान और अकेलेपन से
जनमते हैं डर कई।
भरे-पूरे अनुशासन से परे,
अपने लिए कोमलता झरे।
'आप संतान हो ब्रह्मांड की,
पेड़ों और सितारों से कम नहीं;
अधिकार यहाँ रहने का आपका।
कौन जाने आप जानो या नहीं,
नि:संदेह खुल रहा ब्रह्मांड जैसा खुलना
चाहिए।'
इसलिए परमेश्वर से रखो
शांत भाव सदा,
जैसी भी छवि हो उसकी मन में आपके,
और कितना भी श्रम करो, कितनी भी पालो
कामनाएँ,
जीवन के शोर-शराबे में आत्मा से शांत भाव
रखो।
कितने भी हों दिखावे, काम बेमन के और
सपने टूटे हुए,
दुनिया की ख़ूबसूरती में है
नहीं कमी कोई।
जोश से भरे रहो।
खुशियों में लगे रहो।

000

ग़ज़लें

अनिरुद्ध सिन्हा

वही रोज़ खिच-खिच नई एक शिकायत
है मुश्किल बदलना पड़ोसी की आदत
सज़ा देने वाला खता तो समझता
न फिर इस भरोसे की होती फ़ज़ीहत
उजाले करे कुछ ज़रूरत नहीं थी
किरण ने अँधेरों से ख़ुद की बग़ावत
बिखरते हुए ज़र्द पत्तों से पूछो
हुई धूप की या हवा की शरारत
नहीं दर्द की है दवा बाद इसके
चलो आज़माते हैं दौरे- मुहब्बत

000

शाम जैसे घनी हो गई
चुप की महवर में वो खो गई
गुम हुई थाह की खोज में
बात अपनी उधर जो गई
सच की शाख़ों में फल झूठ के
बीज कैसा सदी बो गई
बर्फ़-सी जम गई शर्म तब
देह जब अधखुली हो गई
तेरे लब की वो हल्की हँसी
दाग़ जितने थे,सब धो गई

000

जब पता ही नहीं लिखा क्या है
उस लिखे पर तू सोचता क्या है
घर न आने की ली कसम तूने
फिर ये मुड़-मुड़ के देखता क्या है
हँस भी लेना हमारे अश्कों पर
पूछ तो लो हमें हुआ क्या है
जो न करना था सब किया हमने
और करने को अब बचा क्या है
कोई नज़रों से बस गिरा भर दे
इससे बढ़कर कोई सज़ा क्या है

000

वही चाँद तारे वही चाँदनी
इधर है अँधेरा उधर रोशनी
ये सच है उधर कुछ हुआ ही नहीं
इधर क्यों ख़बर आ रही सनसनी
पड़ोसी उसे मानिए जो करे
कभी दोस्ती तो कभी दुश्मनी
निखरता रहा सुर ग़मों का बहुत
है क्यों मुद्दतों से खुशी अनमनी
इधर रोज़ कपड़े रफ़ू ही हुए
उधर रोज़ो-शब है नई ओढनी

000

लफ़्ज़ जो अनकहा नहीं होता
वक़्त मुझसे खफ़ा नहीं होता
ये तो रिश्तों की ही ज़रूरत थी
वरना ये सिर झुका नहीं होता
नाम चाहे कोई बदल डाले
बेवफ़ा बावफ़ा नहीं होता
क्या करूँ ग़म की इस मुहब्बत को
मुझसे मिलकर जुदा नहीं होता
आग चुपके से जो लगा जाए
वो कोई दूसरा नहीं होता

000

अनिरुद्ध सिन्हा
गुलज़ार पोखर,मुंगेर (बिहार)811201
मोबाइल–7488542351
ईमेल-anirudhsinhamunger@gmail.com

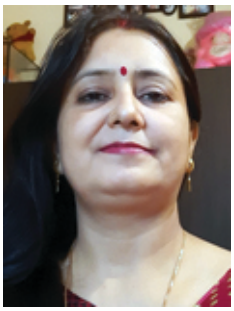

डॉ. भावना

डॉ. भावना
आद्या हॉस्पिटल
सीतामढी रोड, जीरोमाइल
मुजफ्फरपुर 842004
ईमेल- bhavna.201120@gmail.com

अपनी जीत के गीत ही गाता फिरता है
संघर्षों से आँख लड़ाता फिरता है
साँसों की लक्ष्मण - रेखा को लाँघा जब
लम्हों का क्यों बोझ उठाता फिरता है
अपने ग़म की चंद नई तस्वीरों को
पलकों में वह रोज़ छुपाता फिरता है
मुखिया का पद जीता पत्नी ने जबसे
मुखिया पति ही राज चलाता फिरता है
आओ, अपनी ज़िम्मेदारी तय कर लें
लफ़्ज़ों से क्यों शोर मचाता फिरता है
होकर वह बेचैन बहुत ही भाग गया
लेकिन घर - घर आग लगाता फिरता है
तुझको है मालूम वहाँ कुछ भी तो नहीं
सहरा में क्यों ख़ाक उड़ाता फिरता है
गीत - ग़ज़ल की लत है मिट्ठू राजा को
रोज़ फुदकता शोर मचाता फिरता है
एक किरासिन तेल बिगाड़ेगा सब - कुछ
जिसका डंका रोज़ बजाता फिरता है

000

कुछ तो लब से कहा करे कोई
मेरी खातिर दुआ करे कोई
तोड़ कर पत्थरों के सीने को
बन के दरिया बहा करे कोई
दिल लगाया है चाँदनी से अगर,
रात भर फिर जगा करे कोई
प्रेम बूँदों में ढल के जब आए
कितने दिन तक बचा करे कोई
छोड़ कर चल दिया शहर उनका
बेख़बर हो, रहा करे कोई !
खार राहों का फिर न चुभ जाए
बाखबर हो चला करे कोई
उम्र भर हम किया करें सज्दा
यूँ ही खुल कर हँसा करे कोई

000

टूट न जाए डर लगता है
सहमा-सहमा घर लगता है
ऐसी करवट बदली रुत ने
हर मौसम खंजर लगता है
चेहरे को देखूँ भी क्या मैं
इन्सां है, सुन्दर लगता है
कान न होते दीवारों के
तर्क ज़रा हटकर लगता है
भागम - भाग मची कुछ ऐसी
एक - सा घर - बाहर लगता है
रात कहानी कहने लगती
जब छत पर बिस्तर लगता है

000

गीत

डॉ. अरुण तिवारी गोपाल के गीत

रामरती की दुल्हन

रामरती की दुल्हन काटे
चढ़े क्वाँर की धान
बरसाती जमुना सी,
जूड़ा पूरा खोले है।
फसल काटती फ़सल
फसल से जादा डोले है।
हिरनी सहमें, मेड़ पर खड़ा
ताक रहा शैतान...

धान नहीं वो खून पसीना
नुनने आई है।
बिटिया का गौना,
अम्मा की यही दवाई है।
नहीं मिले मज़दूर
अकेले जुटी लगाए जान...

कोंछे से ही पोंछ पसीना,
बिजना कर लेती।
छांह हमारी दुश्मन
हमको कहाँ छांह देती। ।
हँसे पीठ पर दबा
पेट है कितना बेईमान...

बूढ़ा बाल रंगे भौजी
कहकर खीसें बाये।
सरके बिस्तर की बातों के
नश्तर सरकाये।
रतीराम को दूर भेज
मंगवाए बीड़ी पान...

ooo

आँगन की गौरैया

आँगन की गौरैया
क्या केवल गौरैया है
लू की दैया दैया में
मन की पुरवैया है

हर उत्सव अम्मा के गीतों
अपने संग नची
संस्कृति की सहिदानी
थामे सच्ची रानी है
घर की अमरौती की
सदा मनौती मानी है
आओ चलें मनाने
वो पुरखों की नानी है
धरती की सीता बिटिया है,
राम रमैया है
आँगन की गौरैया...

कैसी-कैसी आँगन की
दीवारें गिर जातीं,
सगुनौती के अक्षत चोंच में
ले जब गाती है
बन्दूकों के शंखों को
पंखों में छिपा लेती
फुदक,फुदक त्योहारों की
बाँसुरी सुनाती है
बाहर सभी दिशा की तीरथ,
घर की मैया है
आँगन की गौरैया...

काँधे पर खंजर ले
गाँव हो गए कस्बाई
दिल जंगल-जंगल मन
झीलों में काई काई
नन्ना जाने क्यों बरगदी
छाँव है सौदाई
उसकी रामायण में
क्यों बनवास बड़ा भाई
द्वारे की गैया,
आँगन की तुलसी मैया है
आँगन की गौरैया...

ooo

सभ्यताएँ खिलखिलाएँ

काल कोरों की गटों में,
नियति ने करखे भरे हैं,
हैं अरुण हम तो चलें
हर अंश से अंशुल उगाएँ !
सभ्यताएँ खिलखिलाएँ

इस तरफ चन्दन बनों में
उठ रहा कैसा धुँआ है।
फूल घाटी में वहाँ क्यों
आग का अन्धा कुआँ है।
बीच में लेटी नदी है ढीढ
वधु,सोचे नहीं कुछ?
चलो सबके दर्द समझें,
मन मिलाएँ, कुल बनाएँ!
सभ्यताएँ खिलखिलाएँ

हैं सभी के दर्द पर्वत,
और दुख की खाइयाँ हैं।
पैर की कब सोचतीं,
अब ख़ुद बिवाईं काइयाँ हैं।
आपदा में क्यों मदद के
पाँव के विश्वास टूटें,
प्रार्थना के हाथ से,
संवेदना के पुल बनाएँ
सभ्यताएँ खिलखिलाएँ

गीत के गोपाल हैं?
तो कंस जैसे क्यों दिखें?
हैं सृजन?तो फिर कहो,
विध्वंस जैसे क्यों दिखें?
आँगनों की भौजियों के
चटपटीले स्वाद हेरो
देवरों,झोरो टिकोरे,
फिर चलो,अमचुल सुखाएँ
सभ्यताएँ खिलखिलाएँ

ooo

डॉ. अरुण तिवारी गोपाल
117/69,तुलसीनगर काकादेव, कानपुर नगर, उत्तर प्रदेश-208025
मोबाइल- 8299455530
ईमेल- runtiwarigopal@gmail.com

वरिष्ठ प्रवासी साहित्यकार

पंकज सुबीर
पी. सी. लैब, शॉप नंबर 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001
मोबाइल- 9977855399
ईमेल- subeerin@gmail.com

सबका समय कभी न कभी आता ही है। लेकिन उस समय के आने की प्रतीक्षा करनी पड़ती है। मगर कभी-कभी ऐसा भी होता है कि जब समय आता है, उसका लाभ उनको नहीं मिलता जो वास्तव में उसके हक़दार होते हैं, बल्कि उनको मिल जाता है जो दुकानदार होते हैं। जैसे इस समय इंटरनेट का समय चल रहा है। यह समय तकनीक के कारण नहीं आया है, बल्कि यह कोरोना के कारण आया है। सब कुछ ऑनलाइन हो गया है। ऐसे में आयोजनों के लिए किसी को बुलाने की ज़रूरत नहीं है बल्कि उसे केवल ऑनलाइन ही बुलाने से काम चल रहा है। चूँकि गोष्ठियाँ, संगोष्ठियाँ सब ऑनलाइन हो रही हैं, इसलिए आयोजकों की निकल पड़ी है। अंतर्राष्ट्रीय शब्द लगाने के लिए अब सोचना बिलकुल ही नहीं पड़ रहा है। बस आपके संपर्क में भारत से बाहर रह रहा कोई भी व्यक्ति हो (लेखक होना ज़रूरी नहीं है) और आप अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी कर सकते हैं। इन दिनों जब अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठियों के, वेबिनारों के आमंत्रण पत्र आते हैं, तो नाम देख कर हैरत में पड़ जाता हूँ। जो नाम अभी तक सुने भी नहीं हैं, वे मुख्य वक्ता या अध्यक्षता करते हुए दिखाई देते हैं। पता चलता है कि इन्होंने कोरोना के सामय लॉकडाउन के दौरान एक-दो कविताएँ लिख दी थीं। सोशल मीडिया पर प्रकाशित भी हो गईं, और बस फिर क्या था, हो गए लेखक। कुछ नाम परिचित भी दिखाई देते हैं, मगर यह नाम लेखन के कारण परिचित नहीं होते हैं, यह दुकानदारी के कारण परिचित होते हैं। नाम तो यह बड़े होते हैं, मगर लिखने के नाम पर कुछ नहीं होता इनके पास। लेकिन बस ख़ास बात यह होती है कि यह वरिष्ठ प्रवासी साहित्यकार कहलाते हैं। वरिष्ठ तो अवश्य हैं, लेकिन साहित्य के नाम पर कुछ नहीं। इन दिनों अधिकांश संगोष्ठियों में यही सब नाम दिखाई देते हैं। असल में कुछ नाम तो इतने वरिष्ठ हैं कि ऐसा लगता है कि उनकी कई किताबें आ चुकी होंगी, बहुत लेखन किया होगा उन्होंने, लेकिन जब तलाशने निकलते हैं तो पता चलता है किताब तो दूर, ठीक-ठाक आठ-दस कविताएँ भी नहीं हैं उनके पास। मगर वे स्वयंघोषित साहित्यकार हैं, इसलिए इन सबकी उनको आवश्यकता है भी नहीं। वे बिना लिखे साहित्यकार हैं, तथा उम्र अधिक हो चुकी है, इसलिए वरिष्ठ तो हैं ही। वे सारे नाम जो बाक़ायदा कहानियाँ, कविताएँ, उपन्यास आदि लिख कर तथा विदेशों में हिन्दी के लिए बरसों से काम कर रहे हैं, वे इन सबमें कहीं नहीं दिखाई देते। जबकि होना तो यह था कि अब जब इंटरनेट के माध्यम से हिन्दी का वैश्वीकरण हो रहा है, तथा कोरोना का कठिन समय ऑनलाइन आयोजनों का कारण बन गया है, तब उन लोगों को सामने होना चाहिए था, जिन्होंने बरसों-बरस से हिन्दी का परचम थाम रखा है। लेकिन आयोजकों को कुछ पता ही नहीं है, उनको तो महाविद्यालय में या विश्वविद्यालय में एक संगोष्ठी या वेबिनार करना है, जिसके आगे अंतर्राष्ट्रीय लिखना है। इस अंतर्राष्ट्रीय लिखने के लिए ज़रूरी है बस कुछ देशों के नाम तथा वहाँ के प्रतिनिधि वक्ता। बस देशों के नाम लिखते जाइए और वहाँ किसी भी परिचित कंप्यूटर इंजीनियर को पकड़ कर उसका नाम वक्ता के रूप में लिख दीजिए। चूँकि वह कंप्यूटर इंजीनियर है, इसलिए ज़ाहिर सी बात है कि आधा काम तो आपका हो ही गया है। आपको तकनीक की तरफ़ से निश्चिंत हो जाना है। अब जो बाक़ी का आधा काम है, वह उतना ज़रूरी भी नहीं है। इसलिए क्योंकि इस तरह के वेबिनार या संगोष्ठी में बमुश्किल दस से पन्द्रह लोग ऑनलाइन होते हैं। जो ऑनलाइन होते हैं, वह भी अपने ऑडियो और वीडियो को ऑफ कर के अपने काम में लगे हुए होते हैं। ऐसे में अंतर्राष्ट्रीय वक्ता ने क्या कहा, यह कौन सुन रहा है। वह जो कुछ भी बोल देगा, ख़ुद ही सुन लेगा। मगर इन सबमें जो ग़लत हो रहा है, वह यह है जिन लोगों को सामने आना था, वह कहीं दिखाई ही नहीं दे रहे हैं। उनकी जगह वे लोग वक्ता बने हुए हैं, जो बस इसलिए हैं कि वे नौकरी करने विदेश गए हुए हैं...। **सादर आपका ही**

पंकज सुबीर

स्ट्राबेरी एंटरटेनमेंट क्रिएशंस, शिवना क्रिएशंस तथा ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन प्रस्तुत करते हैं

कौन सी ज़मीन अपनी

तुम लोग

Vibhom Swar ● Quarterly ● January-March 2022 ● RNI No. MPHIN/2016/70609 ● ISSN2455-9814

ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन अमेरिका द्वारा मध्यप्रदेश के सीहोर ज़िले में चलाए जा रहे आर्थिक रूप से कमज़ोर परिवार की बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण योजना के तहत स्थापित प्रशिक्षण केन्द्र पर आयोजित डिप्लोमा वितरण कार्यक्रम

बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र सीहोर पर सत्र 2019-20 का डिप्लोमा वितरण आइसैक्ट के कुलाधिपति श्री संतोष चौबे, पुलिस अधीक्षक श्री मयंक अवस्थी, समाजसेवी श्री अखिलेश राय, अति. पुलिस अधीक्षक श्री समीर यादव तथा श्रीमती नमिता राय के हाथों।

बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र सीहोर पर सत्र 2019-20 का डिप्लोमा वितरण आइसैक्ट के कुलाधिपति श्री संतोष चौबे, पुलिस अधीक्षक श्री मयंक अवस्थी, समाजसेवी श्री अखिलेश राय, अति. पुलिस अधीक्षक श्री समीर यादव तथा श्रीमती नमिता राय के हाथों।

बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र सीहोर पर सत्र 2019-20 का डिप्लोमा वितरण आइसैक्ट के कुलाधिपति श्री संतोष चौबे, पुलिस अधीक्षक श्री मयंक अवस्थी, समाजसेवी श्री अखिलेश राय, अति. पुलिस अधीक्षक श्री समीर यादव तथा श्रीमती नमिता राय के हाथों।

बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र सीहोर पर सत्र 2019-20 का डिप्लोमा वितरण आइसैक्ट के कुलाधिपति श्री संतोष चौबे, पुलिस अधीक्षक श्री मयंक अवस्थी, समाजसेवी श्री अखिलेश राय, अति. पुलिस अधीक्षक श्री समीर यादव तथा श्रीमती नमिता राय के हाथों।

If Undelivered Please Return to :
P. C. Lab, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001
Phone 07562-405545, 07562-695918, Mobile 09584425995, 07828313926, 09806162184

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक ज़ुबैर शेख़ द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।